माध्यमिक कक्षा पाठ्यक्रम

संस्कृत व्याकरण (246)

पुस्तक-3

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा-संस्थान

ए-24-25, संस्थागत क्षेत्र, सेक्टर- 62

नोएडा-201 309 (उत्तर प्रदेश)

वेबसाइट : www.nios.ac.in निर्मूल्य दूरभाष- 18001809393

National Institute of Open Schooling

A 24-25, Institutional Area, Sector-62

Noida-201309 (U.P.)

© राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान National Institute of Open Schooling

प्रथम संस्करण 2017 First Edition 2017 (Copies)

ISBN (Book 1)

ISBN (Book 2)

ISBN (Book 3)

सचिव, राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, ए-24-25, संस्थागत क्षेत्र, सेक्टर- 62 नोएडा - 201 309
(उत्तर प्रदेश) द्वारा प्रकाशित। ..... द्वारा मुद्रित।

माध्यमिक कक्षा संस्कृत व्याकरण (246)

सलाहकार समिति

प्रो. सरोज शर्मा
अध्यक्ष
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा-संस्थान
नोएडा, (उत्तर प्रदेश)-201309

डॉ. राजीव कुमार सिंह
निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा-संस्थान
नोएडा, (उत्तर प्रदेश)-201309

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

प्रो. डॉ. अर्कनाथ चौधरी (समिति अध्यक्ष)
उप-कुलपति
श्री सोमनाथ संस्कृत विश्वविद्यालय
वेरावल -362266 (गुजरात)

डॉ. नीरज कुमार भार्गव (समिति के उपाध्यक्ष)
सहायक प्राध्यापक (संस्कृताध्ययन विभाग)
रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द विश्वविद्यालय
बेलुड-मठ, हावड़ा-711 202 (प. बंगाल)

डॉ. हरि-राम-मिश्र
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

स्वामी वेदतत्त्वानन्द
प्राचार्य
रामकृष्ण मठ विवेकानन्द वेद विद्यालय
बेलुड मठ, मण्डल हावड़ा- 711 202 (प. बंगाल)

डॉ. विजेन्द्र-सिंह
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

श्रीमान् मलय-पोडे
सहायक प्राध्यापक (W.B.E.S.) (संस्कृत विभाग)
राणीबाँध सर्वकारीय महाविद्यालय
स्थानम्-राणीबाँध, मण्डलम्-बाँकुडा-722135 (प. बंगाल)

श्री सुमन्त-चौधुरी
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
सबं सजनीकान्त महाविद्यालय
पत्राचार-लुटुनिया, रक्षालय- सब
मण्डल-पश्चिम मेदिनीपुर- 721 166 (प. बंगाल)

डॉ. राम-नारायण-मीणा
सहायक निदेशक (शैक्षिक विभाग)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, उत्तर प्रदेश-201 309

पाठ्यक्रम-समन्वयक

डॉ. राम नारायण मीणा
सहायक निदेशक (शैक्षिक विभाग)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, उत्तर प्रदेश-201 309

पाठ्य विषय सामग्री निर्मित समिति

संपादक मण्डल

डॉ. नीरज कुमार भार्गव (समिति के उपाध्यक्ष)
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत अध्ययन विभाग)
रामकृष्ण मिशन विवेकानंद विश्वविद्यालय
बेलुर मठ, हावड़ा-711202 (प. बंगाल)

स्वामी वेदतत्त्वानन्द
प्राचार्य
रामकृष्ण मठ विवेकानंद वेद विद्यालय
बेलुर मठ, मण्डल-हावड़ा 711202 (प. बंगाल)

पाठ लेखक

(पाठः 1-9)
स्वामी वेदतत्त्वानन्द
प्राचार्य
रामकृष्ण मठ विवेकानन्द वेद विद्यालय
बेलुड-मठ, हावड़ा-711 202 (प. बंगाल)

(पाठः 10-14)
श्रीमान् जयदेवदिण्डा
अनुसन्धाता (संस्कृताध्ययन विभाग)
रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द विश्वविद्यालय
मण्डल-हावड़ा-711 202 (प.वङ्गम्)

(पाठः 15-18)
श्रीमान् सुमन्त चौधरी
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
सबं सजनीकान्त महाविद्यालय
पत्रालय- लुटुनिया, रक्षालय- सबं
मण्डल- पश्चिम मेदिनीपुर-721 166 (प. बंगाल)

(पाठः 19-25)
डॉ. नीरज कुमार भार्गव
सहायक प्राध्यापक (संस्कृताध्ययन विभाग)
रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द विश्वविद्यालय
बेलुड-मठ, हावड़ा-711 202 (प. बंगाल)

(पाठः 26-29)
श्रीमान् राहुलगाजि
अनुसन्धाता (संस्कृत विभाग)
यादवपुर विश्वविद्यालय
कलिकाता-700 032 (प. बंगाल)

अनुवादक मण्डल

डॉ. राम नारायण मीणा
सहायक निदेशक (शैक्षिक विभाग)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, उत्तर प्रदेश-201 309

डॉ. विजेन्द्र सिंह
सहायक प्रो.
संस्कृत एवं उच्च शिक्षा संस्थान,
जे.एन.यू. नई दिल्ली

श्री आशुतोष मिश्रा
प्र. प्रधानाचार्य, रा.उ.मा. विद्यालय
मूसाखाड़, चन्दौली, उ.प्र.

श्री पुनीत त्रिपाठी
वरिष्ठ कार्यकारी अधिकारी
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, उत्तर प्रदेश-201 309

श्री सुभाष बिश्नोई
अनुसंधाता,
संस्कृत एवं उच्च शिक्षा संस्थान,
जे.एन.यू. नई दिल्ली

रेखा चित्राङ्कन व मुख पृष्ठ चित्रण

स्वामी हररूपानन्द
रामकृष्ण मिशन, बेलुड मठ, मण्डल-हावड़ा-711 202 (प. बंगाल)

आप से दो बातें

अध्यक्षीय सन्देश

प्रिय विद्यार्थी,

'भारतीय ज्ञान परम्परा' इस पाठ्यक्रम के अध्ययन के लिए आपका हार्दिक स्वागत है।

भारत अति प्राचीन और अति विशाल है। भारत का वैदिक वाङ्मय भी उतना ही प्राचीन, प्रशंसनीय और महान है। सृष्टिकर्ता भगवान् ही भारतीयों के सम्पूर्ण विद्याओं के प्रेरक है, ऐसा सिद्धांत शास्त्रों में प्राप्त होता है। भारत के अच्छे विद्वान, सामान्य जनमानस तथा अन्य ज्ञानी लोगों का प्राचीन काल में आदान-प्रदान का माध्यम संस्कृत भाषा ही थी ऐसा सभी को ज्ञात है। इतने लम्बे काल में भारत के इतिहास में जो शास्त्र लिखे गए, जो चिंतन उत्पन्न हुए, जो भाव प्रकट हुए वे सभी संस्कृत भाषा के भण्डार में निबद्ध हैं। इस भण्डार का आकार कितना, भाव कितने गंभीर, मूल्य कितना अधिक इसका निर्धारण करने में कोई भी समर्थ नहीं है। प्राचीन काल में भारतीय क्या-क्या पढ़ते थे, वो एक श्लोक के माध्यम से प्रकट होता है-

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः।
पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश॥ (वायुपुराणम् 61.78)

इस श्लोक में चौदह प्रकार की विद्याएँ बताई गई हैं। चार वेद (और चार उपवेद, छः वेदाङ्, मीमांसा (पूर्वोत्तरमीमांस), न्याय (आन्वीक्षिकी) पुराण (अठारह मुख्य पुराण व उपपुराण) धर्मशास्त्र (स्मृति) ये चौदह विद्या कहलाते हैं। अनेक काव्य और बहुत शास्त्र हैं इन सभी विद्याओं का प्रवाह जल के समान ज्ञान प्रदान करने वाला प्रगति करने वाला और वृद्धि करने वाला लम्बे समय से चल रहा है। समाज के कल्याण के लिए भारत के विद्या दान परम्परा में गुरुकुलों में आध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक, आयुर्वेद, राजनीति, दण्डनीति, काव्य, काव्यशास्त्र और अन्य बहुत से शास्त्र पढ़ते-पढ़ाते थे।

विद्या के शिक्षण के लिए ब्रह्मचारी परिवार को छोड़कर गुरुकुल में ब्रह्मचर्याश्रम को धारण कर जीवन बिताते थे और इन विद्याओं में परंपरागत होते थे। इन विद्याओं में आज भी कुछ पारंगत लोग हैं। प्राकृतिक परिवर्तन के कारण, विदेशी आक्रमण के कारण, स्वदेश में हो रही उठा-पटक इत्यादि अनेक कारणों से पहले जैसा अध्ययन-अध्यापन की परम्परा अब छूटती जा रही है। इन पाठ्यक्रमों की परीक्षा प्रमाणपत्र इत्यादि आधुनिक शिक्षण पद्धति के द्वारा कुछ राज्यों में होता है, परंतु बहुत से राज्यों में नहीं होता है। अतः इन प्राचीन शास्त्रों के अध्ययन, परीक्षण और प्रमाणीकरण का होना आवश्यक है। इसे ध्यान में रखकर यह पाठ्यक्रम राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के द्वारा प्रारम्भ किया गया है। लोगों के कल्याण के लिए जितना ज्ञान आवश्यक है वैसा ज्ञान इन शास्त्रों कल्याण दृष्टि से कल्याणकारी हों। किसी को कोई दुख प्राप्त नहीं हो, कोई किसी को दुःख नहीं दे, इस प्रकार अत्यंत उदार उद्देश्य को ध्यान में रखकर 'भारतीय ज्ञान परम्परा' इस नाम से इस पाठ्यक्रम की रचना की गई है। विज्ञान शरीरारोग्य का चिंतन करता है, कला विषय मनोविज्ञान को तथा मनोविज्ञान आध्यात्मिक विज्ञान का पोषण करता है। विज्ञान साधना स्वरूप और सुखोपभोग साध्य है। अतः निःसंदेह रूप से कहा जा सकता है कि कला विषय शाखा विज्ञान से भी श्रेष्ठ है। लोग कला को छोड़कर विज्ञान से सुख नहीं प्राप्त कर सकते हैं परंतु विज्ञान को छोड़कर कला से सुख को अवश्य प्राप्त कर सकते हैं।

यह संस्कृत व्याकरण का पाठ्यक्रम छात्रानुकूल, ज्ञानवर्धक, लक्ष्यसाधक और पुरुषार्थ साधक है ऐसा मेरा मानना है।

इस पाठ्यक्रम के निर्माण में जिन हिताभिलाषी, विद्वान, उपदेष्टा, पाठलेखक, त्रुटिसंशोधक और मुद्रणकर्ता ने साक्षात् या परोक्षरूप से सहायता की, उनको संस्थान पक्ष से हार्दिक कृतज्ञता ज्ञपित करते हैं, रामकृष्ण मिशन-विवेकानंद विश्वविद्यालय के कुलपति श्रीमान् स्वामी आत्मप्रियानन्द जी का विशेष रूप से धन्यवाद जिनकी अनुकूलता और प्रेरणा के बिना इस कार्य की परिसमाप्ति दुष्कर थी।

इस पाठ्यक्रम के अध्येताओं का विद्या से कल्याण हो, सफल हो, विद्वान हो, सज्जन हो, देशभक्त हो, समाज सेवक हो ऐसी हमारी हार्दिक इच्छा है।

अध्यक्ष
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

आप से दो बातें

निदेशकीय वाक्

प्रिय पाठक,

'भारतीय ज्ञान परम्परा' पाठ्यक्रम को पढ़ने की इच्छा से उत्साहित भारतीय ज्ञान परम्परा के अनुरागी और उपासकों का हार्दिक स्वागत करते हैं। अत्यधिक हर्ष का विषय है, की गुरुकुलों में पढ़ाये जाने वाला पाठ्यक्रम हमारे राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के पाठ्यक्रम में भी सम्मिलित किया गया है। आशा है कि लम्बे समय से हमारी संस्कृति से जो दूरी थी वह अब समाप्त हो जाएगी। हिन्दू, जैन, बौद्धों के धार्मिक, आध्यात्मिक और काव्यादि वाङ्मय प्रायः संस्कृत में लिखा हुआ है। इस 24 करोड़ मनुष्यों के प्रिय विषयों की भूमिका के माध्यम से प्रस्तुत प्रवेश योग्यता के द्वारा और मन को प्रसन्न करने के लिए माध्यमिक स्तर और उच्चतर माध्यमिक स्तर में कुछ विषय पाठ के माध्यम से सम्मिलित किए गए हैं। जैसे आंग्ल, हिन्दी आदि भाषा ज्ञान के बिना उस भाषा के लिखे गए माध्यमिक स्तरीय ग्रंथ पढ़ने में और समझने में सक्षम नहीं हो सकते हैं, वैसे ही यहाँ पर प्रारम्भिक संस्कृत को नहीं जानते तो इस पाठ्यक्रम को जानने में समर्थ नहीं हो सकते हैं। अतः प्रारम्भिक संस्कृत तथा हिन्दी भाषा के जानकार छात्र यहाँ इस पाठ्यक्रम के अध्ययन के अधिकारी हैं ऐसा जानना चाहिए।

गुरुकुलों में अध्ययन करने वाले छात्र आठवीं कक्षा तक जितना अपनी परंपरा से अध्ययन करें। नौंवीं, दसवीं, कक्षा और ग्यारहवीं तथा बारहवीं कक्षा तक भारतीय ज्ञान परम्परा के इस पाठ्यक्रम का निष्ठा से नियमित अध्ययन करें। इस पाठ्यक्रम से विद्यार्थी उच्च शिक्षा के लिए योग्य होंगे।

संस्कृत के विभिन्न शास्त्रों में किया गया कठिन परिश्रम विद्वान्, प्राध्यापक, शिक्षक और शिक्षाविद् इस पाठ्यक्रम का प्रारूप रचना में, विषय निर्धारण के लिए विषय परिमाण निर्धारण में विषय प्रकट करने का भाषा स्तर निर्णय में और विषय पाठ लिखने में संलग्न हैं। अतः इस पाठ्यक्रम का सस्तर उन्नत होना है।

संस्कृत व्याकरण की यह स्वाध्याय सामग्री आपके लिए पर्याप्त सुबोध रुचिकर आनन्दरस को देने वाली, सौभाग्य देने वाली धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, उपयोगी रहेगी ऐसी हम आशा करते हैं। इस पाठ्यक्रम का प्रधान लक्ष्य है कि भारतीय ज्ञान परम्परा का शैक्षणिक क्षेत्रों में विशिष्ट और योग्य स्थान स्वीकृत होना चाहिए। वह लक्ष्य इस पाठ्यक्रम का प्रधान लक्ष्य है की भारतीय ज्ञान परम्परा का शैक्षणिक क्षेत्रों में विशिष्ट और योग्य स्थान स्वीकृत होना चाहिए। वह लक्ष्य इस पाठ्यक्रम के माध्यम से पूर्ण होगा, ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है। पाठक अध्ययनकाल में यदि मानते हैं कि इस अध्ययन सामग्री में पाठ के सार में जहाँ संशोधन, परिवर्तन और परिवर्धन संस्कार चाहते हैं, उन सभी के प्रस्तावों का हम स्वागत करते हैं। इस पाठ्यक्रम को फिर भी और अधिक प्रभावी, उपयोगी और सरल बनाने में आपके साथ हम हमेशा तत्पर हैं। सभी अध्येताओं के अध्ययन में सफलता और जीवन में सफलता के लिए और कृतकृत्य के लिए हमारे आशीर्वचन-

किं बाहुना विस्तरेण। अस्माकं गौरववाणीं जगति विरलाम् सर्वविद्याया लक्ष्यभूताम् एव उद्धरामि॥

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्।
दुर्जनः सज्जनो भूयात् सज्जनः शान्तिमाप्नुयात्।
शान्तो मुच्येत बन्धेभ्यो मुक्तश्चान्यान् विमोचयेत्॥
स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया।
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे आवेश्यतां नो मतिरप्य हैतुकी॥

निदेशक

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

आप से दो बातें

समन्वयक वचन

प्रिय जिज्ञासुओं,

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु सह वीर्य करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

परम्परा को आधार मानकर यह प्रार्थना कि हमारा अध्ययन विघ्नों से रहित हो। अज्ञान का नाश करने वाला तेजस्वि हो। द्वेष भावना का नाश हो। विद्या लाभ के द्वारा सभी कष्टों की शान्ति हो।

भारतीय ज्ञान परम्परा इस पाठ्यक्रम के अङ्गभूत यह पाठ्यक्रम उच्चतर माध्यमिक कक्षा के लिए निर्धारित किया गया है। इस पाठ्यक्रम की अध्ययन सामग्री आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए मैं परम हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ। जो सरल संस्कृत तथा हिन्दी भाषा को जानता है, वह इस अध्ययन में समर्थ है।

संस्कृत व्याकरण का अध्ययन स्तर के अनुसार होता है। इसलिए स्तरों के प्रत्येक पर्व का आरोहण क्रम के अनुसार ही होना चाहिए। अतः पाणिनीय अष्टाध्यायी का विद्वानों ने भिन्न क्रमानुसार व्याख्या किया है। यहाँ भी उसी प्रक्रिया का क्रम है। उसी क्रम को स्वीकार कर यह अध्ययन सामग्री सोपान, पर्व आदि के क्रम में निर्मित है। एक भाग माध्यमिक और अन्य भाग उच्चतर माध्यमिक कक्षा में है। इससे पाणिनीय तंत्र में प्रवेश के लिए छात्र की योग्यता बढ़ती है।

माध्यमिक कक्षा में दिया हुआ पाणिनीय व्याकरण विषय भी अत्यंत उपकारक है। यह सामग्री पाणिनीय व्याकरण के श्रद्धा सहित अध्ययन में प्रवेश के लिए और मन को शांति देने वाली है। इस ग्रंथ के आकार पर नहीं जाना चाहिए और न इससे भय होना चाहिए अपितु गम्भीर रूप से अध्ययन करना चाहिए।

सम्पूर्ण पाठ्य पुस्तक तीन भागों में विभक्त है। इसके अध्ययन से छात्र पाणिनीय व्याकरण के मूलभूत ज्ञान को प्राप्त करेंगे।

पाठक पाठों को अच्छी तरह से पढ़कर पाठ में आए प्रश्नों के उत्तरों पर स्वयं विचार कर अंत में दिए हुए प्रश्नों के उत्तरों को देखें, और उन उत्तरों को अपने उत्तरों से मिलाएं। प्रत्येक पत्र में दिए हुए रिक्त स्थान पर टिप्पणी करना चाहिए। पाठ के अंत में दिए प्रश्नों के उत्तरों का निर्माण करके परीक्षा के लिए तैयार हो जाएँ। अध्ययन काल में किसी भी कठिनता का अनुभव करते हैं, तो अध्ययन केन्द्र में किसी भी समय जाकर के समस्या के समाधान के लिए आचार्य के समीप जाएँ। या राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के साथ ई-पत्र द्वारा सम्पर्क करें। वेबसाइट: www.nios.ac.in इस प्रकार से है।

ये पाठ्य विषय आपके ज्ञान को बढ़ाए, परीक्षा में सफलता को प्राप्त करवाए, रुचि बढ़ाए, मनोरथ पूर्ण करे, ऐसी कामना करते हैं।

अज्ञानान्धकारस्य नाशाय ज्ञानज्योतिषः दर्शनाय च इयं में हार्दिकी प्रार्थना

ॐ असतो मा सद् गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मामृतं गमय॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

भवत्कल्याणकामी

पाठ्यक्रम समन्वयक

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

अपने पाठ कैसे पढ़ें!

संस्कृत व्याकरण माध्यमिक स्तर की इस पाठ्य सामग्री को विशेष रूप से आपकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए निर्मित किया गया है। आप स्वतंत्र रूप से स्वयं पढ़ सकें इसलिए इसे एक प्रारूप में ढाला गया है। निम्नलिखित संकेत आपको सामग्री का सर्वोत्तम उपयोग करने का तरीका बताएंगे। दिए गए पाठों को कैसे पढ़ना है आइए, जानें

पाठ का शीर्षक : इसे पढ़ते ही आप अनुमान लगा सकते हैं कि पाठ में क्या दिया जा रहा है। इसे पढ़िए।

भूमिका : यह भाग आपको पूर्व जानकारी से जोड़ेगा और दिए गए पाठ की सामग्री से परिचित कराएगा। इसे ध्यानपूर्वक पढ़िए।

उद्देश्य : प्रस्तुत पाठ को पढ़ने के बाद आप इस पाठ के उद्देश्यों को प्राप्त करने में समर्थ हो जाएंगे। इन्हें याद कर लीजिए।

पाठगत प्रश्न : इसमें एक शब्द अथवा एक वाक्य में पूछे गए प्रश्न हैं तथा वस्तुनिष्ठ प्रश्न हैं। ये प्रश्न पढ़ी हुई इकाई पर आधारित है इनका उत्तर आपको देते रहना है। इसी से आपकी प्रगति की जाँच होगी। ये सवाल हल करते समय आप हाथ में पेंसिल रखिए और जल्दी-जल्दी सवालों के समाधान ढूँढ़ते रहिए और अपने उत्तरों की जाँच पाठ के अंत में दी गई उत्तरमाला से मिलाइए। उत्तर ठीक न होने पर इकाई को पुनः पढ़िए।

आपने क्या सीखा : यह पूरे पाठ का संक्षिप्त रूप है- कहीं यह बिंदुओं के रूप में है, कहीं आरेख के रूप में तो कहीं प्रवाह चार्ट के रूप में। इन मुख्य बिंदुओं का स्मरण कीजिए। यदि आप कुछ अपने मतलब की मिलती-जुलती नई बातें जोड़ना चाहते हैं तो उन्हें भी वहीं बढ़ा सकते हैं।

पाठांत प्रश्न : पाठ के अंत में दिए गए लघु उत्तरीय तथा दीर्घ उत्तरीय प्रश्न हैं। इन्हें आप अलग पृष्ठों पर लिखकर अभ्यास कीजिए। यदि चाहें तो अध्ययन केन्द्र पर अपने शिक्षक या किसी उचित व्यक्ति को दिखा भी सकते हैं और उन पर नए विचार ले सकते हैं।

उत्तरमाला : आपको पहले ही बताया जा चुका है इसमें पाठगत प्रश्नों और क्रियाकलापों के उत्तर दिए जाते हैं। अपने उत्तरों की जाँच इस सूची से कीजिए।

पुस्तक-1

संज्ञा परिभाषा

1. व्याकरण परिचय
2. संज्ञा प्रकरण-१
3. संज्ञा प्रकरण-२
4. संज्ञा प्रकरण-३
5. परिभाषा प्रकरण

सन्धि प्रकरण

6. अच् सन्धि में यण्-अयवायावादि सन्धि
7. अच् सन्धि में एकादेश व प्रकृतिभाव
8. हल् सन्धि में रुत्व व श्चुत्वादि सन्धि
9. हल् सन्धि में अनुस्वार सन्धि व विसर्ग सन्धि

पुस्तक-2

सुबन्त प्रकरण

10. अजन्त पुंलिङ्ग में अदन्त शब्द रूप
11. अजन्त पुंलिङ्ग में अदन्तशब्द व सर्वनाम के रूप
12. अजन्त पुंलिङ्ग में इकारादि शब्दों के रूप
13. अजन्त स्त्रीलिङ्ग में रमा व नदी के शब्द रूप
14. अजन्त नपुंसकलिङ्ग
15. हलन्त प्रकरण में लिह्-दुह् इत्यादि शब्दों के रूप
16. हलन्त प्रकरण में इदम् राजन् इत्यादि शब्दों के रूप
17. हलन्त प्रकरण में तत् इत्यादि शब्दों के रूप
18. हलन्त प्रकरण में महत् इत्यादि शब्दों के रूप

पुस्तक-3

कारक विभक्त्यर्थ प्रकरण

19. कारक सामान्य परिचय, प्रथमा कारक विभक्ति
20. द्वितीया कारक विभक्ति-1
21. द्वितीया कारक विभक्ति-2
22. कारक विभक्ति में तृतीया व चतुर्थी
23. कारक विभक्ति में पञ्चमी, षष्ठी व सप्तमी
24. उपपद विभक्ति में द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी
25. उपपद विभक्ति षष्ठी और सप्तमी

कृदन्त प्रकरण

26. कृदन्त प्रकरण
27. पूर्वकृदन्त प्रकरण-1
28. पूर्वकृदन्त प्रकरण-2
29. उत्तरकृदन्त प्रकरण

उपपद विभक्त्यर्थ प्रकरण

उपपद विभक्ति में द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी व पञ्चमी विभक्ति।

संस्कृत व्याकरण

माध्यमिक कक्षा

तृतीय स्वाध्याय सोपान

क्रम. सं.	विषय सूची	पृष्ठ संख्या
	कारक विभक्त्यर्थ प्रकरण	
19.	कारक सामान्य परिचय व प्रथमा विभक्ति	1-14
20.	द्वितीया कारक विभक्ति-1	15-24
21.	द्वितीया कारक विभक्ति-2	25-36
22.	कारक विभक्ति-तृतीया और चतुर्थी विभक्ति	37-46
23.	कारक विभक्ति में पञ्चमी षष्ठी व सप्तमी विभक्ति	47-62
	उप पद विभक्ति प्रकरण	
24.	उप पद विभक्ति में द्वितीया तृतीया चतुर्थी और पञ्चमी विभक्ति	63-78
25.	उप पद विभक्ति में षष्ठी और सप्तमी विभक्ति	79-92
	कृदन्त प्रकरण	
26.	कृत्य प्रकरण	93-106
27.	पूर्व कृदन्त-1	107-120
28.	पूर्व कृदन्त-2	121-134
29.	उत्तर कृदन्तम्	135-156
	सूत्र सूची	
	पाठ्यक्रम का विवरण	
	प्रश्न पत्र प्रारूप	
	प्रश्न पत्र प्रतिमा	
	प्रश्न पत्र प्रतिमा की उत्तरमाला	

19

कारक सामान्य परिचय व प्रथमा विभक्ति

ध्यान दें:

इस जगत में कोई क्षण मात्र भी निष्क्रिय नहीं रहता है। गीता में कहा भी है ''न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्'' इति। इस प्रकार जीव सदैव क्रियारत रहते हैं। क्रिया कारक के अधीन होती है। राजा गां हस्तेन विप्राय गोष्ठात् गङ्गातीरे ददाति। यहां इस वाक्य में जैसे दान क्रिया के प्रति राजा कर्ता, गाय कर्म, हस्त करण, विप्र सम्प्रदान, गोष्ठ अपादानम् और गङ्गातीर अधिकरण है। यहां दान क्रिया कर्तादि कारकाधीन है। क्योंकि उस कारक के अभाव में दान क्रिया नहीं हो सकती है। इसी तरह अन्यत्रापि क्रिया कारकाधीन होती है। इस तरह जिज्ञासा होती है कि कारक क्या होता है जिसके अधीन क्रिया होती है। अत: प्रारम्भ में कारक का सामान्य स्वरूप प्रतिपादित किया जाता है। संस्कृत भाषा में कारकों के बोध के लिये प्रथमा द्वितीया इत्यादि सात विभक्तियां होती हैं। उनमें प्रथम प्रथमा विभक्ति कहां होती है यह प्रतिपादित करते हैं।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे-

- कारक स्वरूप व कारक भेद को जान पाने में;
- विभक्ति स्वरूप व विभक्ति भेद को जान पाने में;
- धात्वर्थ व प्रातिपदिकार्थ को जान पाने में;
- प्रथमा विभक्ति कहां-कहां होती है यह जान पाने में;
- वाक्यों में प्रथमा विभक्ति के शुद्ध प्रयोग कर पाने में।

कारक सामान्य परिचय

कृञ् इस धातु से ण्वुल्तृचौ (3.1.133) इस सूत्र से कर्त्ता अर्थ में ण्वुल्-प्रत्यय करने पर व अनुबन्धलोप करने पर कृ वु इस स्थिति में युवोरनाकौ इस सूत्र से वु के स्थान पर अक आदेश होने पर अचो ञ्णिति (7.2.115) इस सूत्र के द्वारा ऋकार के स्थान पर आर् यह वृद्धि होने पर कारक यह शब्द सिद्ध होता है। इस कारक शब्द का अर्थ होता है करने वाला। करोति इस पद का यहां जनयति यह अर्थ

पाठ-19

कारक सामान्य परिचय व प्रथमा विभक्ति

ध्यान दें:

होता है। इस प्रकार जो करता है अर्थात जो उत्पन्न करता है वह कारक कहलाता है। क्या उत्पन्न करता है ऐसी जिज्ञासा में क्रिया पद का अध्याहार किया जाता है। अत: जो क्रिया को उत्पन्न करता है वह कारक कहलाता है, अर्थात् जो क्रिया का जनक है वह कारक है। अत: क्रियाजनकत्वं कारकत्वम् यह परिभाषा व्यवस्थित होती है। यहां जनक का अर्थ कारण से है,अत: क्रिया का जो कारण है वह कारक है यह लक्षण फलित होता है। और कारण वह होता है जो कार्य से पूर्व में नियत रूप से विद्यमान रहता है। इस प्रकार क्रिया से नियत पूर्ववृत्ति वाला कारक होता है ऐसा कारक का निर्गत लक्षण सिद्ध होता है। वे कारक- कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण ये छ: हैं। इन छ: कारकों में क्रिया नियत पूर्ववृत्ति वाली कैसे है तो उसे निरूपित करते हैं। चैत्रेण गम्यते यहां गमन क्रिया के पूर्व में नियम से चैत्र है, अत: चैत्र की गमन क्रिया से पूर्व यदि चैत्र नहीं है तो गमन क्रिया ही सम्भव नहीं होगी। अत: गमन क्रिया का नियत पूर्ववृत्ति वाला चैत्र गमन क्रिया के प्रति कारक है। और वही गमन क्रिया के प्रति कर्ता भी है, इस प्रकार चैत्र कर्ता कारक है। इसी तरह- चैत्रेण पच्यते, लिख्यते पठ्यते, इत्यादि वाक्यों में सर्वत्र समझना चाहिये। चैत्र: ग्रामं गच्छति इस वाक्य में ग्राम भी गमन क्रिया का नियत पूर्ववृत्ति वाला है, क्योंकि गमन क्रिया के पूर्व ग्राम के अभाव होने पर कोई भी ग्राम जाने को समर्थ नहीं होगा, इसलिये ग्राम भी गमन क्रिया नियत पूर्ववृत्ति वाला होने के कारण कारक है, और गमन क्रिया के प्रति कोई कर्म है अत: ग्राम कर्म कारक कहलाया। ऐसे ही चैत्र: रथेन गच्छति यहां रथ भी गमन क्रिया का नियत पूर्ववृत्ति है, क्योंकि गमन से पूर्व रथ के अभाव होने रथ के द्वारा गमन सम्भव नहीं था, इसलिये रथ का भी कारकत्व सिद्ध होता है। और रथ गमन के प्रति करण है ऐसा करके रथ करण कारक कहलाएगा। इसी प्रकार चैत्र: विप्राय धनं ददाति यहां पर विप्र भी दान क्रिया के पूर्व में है। क्योंकि दान क्रिया के पूर्व विप्र के अभाव होने पर विप्र को कोई भी कुछ भी नहीं दे सकता। अत: दान क्रिया का नियत पूर्ववृत्ति विप्र होने के कारणा विप्र भी कारक है और वह दान के प्रति सम्प्रदान भी है। अत: विप्र सम्प्रदान कारक कहलाया। वृक्षात् पत्रं पतति यहां पतन क्रिया के पूर्व में भी वृक्ष है, क्योंकि पतन से पूर्व वृक्ष के अभाव होने पर वृक्ष से पतन सम्भव नहीं, अत: पतन क्रिया के नियत पूर्ववृत्ति वाला वृक्ष पतन क्रिया के प्रति कारक है। और वह पतन के प्रति अपादान है। अत: वृक्ष अपादान कारक कहलाएगा। इसी तरह चैत्र: स्थाल्यां तण्डुलं पचति यहां पाक क्रिया के पूर्व में स्थाली है। क्योंकि पाक से पूर्व स्थाली के अभाव में स्थाली में कोई भी पाक क्रिया नहीं कर सकता। इसलिये पाक क्रिया के नियत पूर्ववृत्ति वाली स्थाली पाक क्रिया के प्रति कारक है। और वह पाक के प्रति अधिकरण है, अत: स्थाली अधिकरण कारक कहलाएगा। परन्तु ब्राह्मणस्य पुत्रेण गम्यते यहां गमन के प्रति ब्राह्मण के पूर्व वृत्तित्व सम्भव होते हुए भी नियत पूर्ववृत्तित्व नहीं है। क्योंकि ब्राह्मण के मरने के बाद भी ब्राह्मण के पुत्र के द्वारा जाया जा सकता है। इसलिए गमनादि क्रिया के प्रति सम्बन्ध के नियत पूर्व वृत्तित्व के अभाव के कारण सम्बन्ध का कारकत्व नहीं है। इस प्रकार कारक छ: हैं यह सिद्ध होता है।

पुन: उक्त अनुक्त भेद से सभी कारक द्विविध होते हैं। इस प्रकार कारक बारह प्रकार होते हैं यह सिद्ध होता है। वे बारह इस तरह हैं - उक्त कर्ता, अनुक्त कर्ता। उक्त कर्म, अनुक्त कर्म। उक्त करण, अनुक्त करण। उक्त सम्प्रदान, अनुक्त सम्प्रदान। उक्त अपादान अनुक्त अपादान। उक्त अधिकरण, अनुक्त अधिकरण।

जैसा कि इस कारिका में निरूपित है

कर्ता कर्माथ करणं सम्प्रदानं तथैव च।
अपादानाधिकरणे कारकाणि षडेव हि॥
उक्तानुक्तया द्वेधा कारकाणि भवन्ति षट्।
उक्ते तु प्रथमैव स्यादनुक्ते तु यथाक्रमम्॥

नीचे तालिका में ये कारक प्रदर्शित हैं।

उक्त कर्ता	अनुक्त कर्ता
उक्त कर्म	अनुक्त कर्म
उक्त करण	अनुक्त करण
उक्त सम्प्रदान	अनुक्त सम्प्रदान
उक्त अपादान	अनुक्त अपादान
उक्त अधिकरण	अनुक्त अधिकरण

1. विभक्ति सामान्य परिचय

भगवान पाणिनि ने विभक्ति संज्ञा के विधान के लिये 'विभक्तिश्च' यह सूत्र बनाया। इस सूत्र का अर्थ होता है सुप् व तिङ् विभक्ति संज्ञक होते हैं। इसलिये सुपों की व तिङों की विभक्ति संज्ञा है ऐसा ज्ञान हमें होता है। वहां सुप् कहने से 'सु औ जस्' इत्यादि 21 प्रत्ययों का ग्रहण होता है। तिङ् इस प्रत्याहार से 'तिप् तस् झि' इत्यादि 18 प्रत्ययों का ग्रहण होता है। इसलिए 21 सुप्प्रत्यय व 18 तिङ् प्रत्यय विभक्ति संज्ञक होते हैं यह फलित हुआ। यहां इस पाठ में केवल सुप्प्रत्ययों के विषय में ही विचार करते हैं न कि तिङ् प्रत्ययों के विषय में ऐसा जानना चाहिए। लोक में सुप्-प्रत्यय ही विभक्ति प्रत्यय हैं ऐसा प्रसिद्ध है। परन्तु वह प्रसिद्धि निर्मूला है। सुप्प्रत्ययों को पुनः सात विभक्तियों में विभक्त किया जाता है। वहां 'सु औ जस्' यह प्रथमा विभक्ति है। अम् औट् शस् यह द्वितीया विभक्ति। टा भ्याम् भिस् यह तृतीया विभक्ति। ङे भ्याम् भ्यस् यह चतुर्थी विभक्ति। ङसि भ्याम् भ्यस् यह पञ्चमी विभक्ति। ङस् ओस् आम् यह षष्ठी विभक्ति। ङि ओस् सुप् यह सप्तमी विभक्ति।

जैसा कि यह कारिका है

प्रथमा च द्वितीया च तृतीया च यथाक्रमम्।
चतुर्थी पञ्चमी षष्ठी सप्तमी चेति ताः क्रमात्॥

यही विभाग तालिका में सुबोध के लिये नीचे दिया जाता है।

सुप्-प्रत्यय	विभक्ति नाम
सु औ जस्	प्रथमा विभक्ति।
अम् औट् शस्	द्वितीया विभक्ति।
टा भ्याम् भिस्	तृतीया विभक्ति।
ङे भ्याम् भ्यस्	चतुर्थी विभक्ति।
ङसि भ्याम् भ्यस्	पञ्चमी विभक्ति।
ङस् ओस् आम्	षष्ठी विभक्ति।
ङि ओस् सुप्	सप्तमी विभक्ति।

पाठ-19

कारक सामान्य परिचय व प्रथमा विभक्ति

ध्यान दें:

ध्यान दें:

विभक्ति भेद- पूर्वोक्त सातों ही सुब्विभक्तियां कारक व उपपद भेद से दो प्रकार की होती हैं। कारक प्रथमा विभक्ति, उपपद प्रथमा विभक्ति। कारक द्वितीया विभक्ति, उपपद द्वितीया विभक्ति। कारक तृतीया विभक्ति, उपपद तृतीया विभक्ति। कारक चतुर्थी विभक्ति, उपपद चतुर्थी विभक्ति। कारक पञ्चमी विभक्ति, उपपद पञ्चमी विभक्ति। कारक षष्ठी विभक्ति, उपपद षष्ठी विभक्ति। कारक सप्तमी विभक्ति, उपपद सप्तमी विभक्ति।

यही विभाग तालिका में सुबोध के लिये नीचे दिया गया है।

कारक विभक्ति	उपपद विभक्ति
कारक प्रथमा विभक्ति	उपपद प्रथमा विभक्ति
कारक द्वितीया विभक्ति	उपपद द्वितीया विभक्ति
कारक तृतीया विभक्ति	उपपद तृतीया विभक्ति
कारक चतुर्थी विभक्ति	उपपद चतुर्थी विभक्ति
कारक पञ्चमी विभक्ति	उपपद पञ्चमी विभक्ति
कारक षष्ठी विभक्ति	उपपद षष्ठी विभक्ति
कारक सप्तमी विभक्ति	उपपद सप्तमी विभक्ति

2. धात्वर्थ विचार

तिङ् प्रत्यय जिससे होते हैं वह धातु कहलाती है। यथा भवति इस रूप में भू इस शब्द से तिप्प्रत्यय हुआ है। अतः भू यह संस्कृत भाषा में धातु कही गई । इन धातुओं का क्या अर्थ है? इस विषय में शास्त्रों में विचार किया गया है। प्रत्येक धातु के दो अर्थ होते हैं फल और व्यापार। जैसे गच्छति इत्यादि में गम् यह धातु है। हमारे द्वारा वाक्य प्रयोगकाल में गम् धातु का प्रयोग तब किया जाता है जब कोई अन्य स्थान को प्राप्त करने के लिये चलना प्रारम्भ करता है। 'छात्रः विद्यालयं गच्छति' इस वाक्य में छात्र विद्यालय को जाने के लिये चलना प्रारम्भ करता है। अतः हमारे द्वारा कहा जाता है कि 'छात्रः विद्यालयं गच्छति'। इस प्रकार इससे यह सिद्ध होता है कि चलन रूप अर्थ का बोध कराने के लिये गम् धातु का प्रयोग किया जाता है। अतः चलन यह गम् इस धातु का अर्थ है। चलन एक क्रिया है। और क्रिया के लिये व्याकरण शास्त्र में व्यापार शब्द का प्रयोग होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि चलन रूप व्यापार गम्-धातु का अर्थ है। इस तरह चलन क्रिया से छात्र का विद्यालय के साथ संयोग होता है। अतः चलन का फल संयोग होता है। अतः संयोग रूप फल भी गम् इस धातु का अर्थ होता है। इसलिये यहां कहा जा सकता है कि गम् इस धातु का चलन रूप व्यापार व संयोग रूप फल यह अर्थ होता है। इसी तरह जब कोई व्यक्ति पाकशाला में होता है। वह अग्नि को प्रज्ज्वलित करता है, चावलादि पदार्थों को धोता है, स्थाली को स्थापित करता है, तब हमारे द्वारा कहा जाता है कि यह व्यक्ति चावलों को पकाता है। इससे यह ज्ञात होता है कि पाक क्रिया के लिये जो अग्नि प्रज्वालनादि, तण्डुलादि पदार्थों का प्रक्षालनादि किया जाता है उसी के ही बोध के लिये हमारे द्वारा पच् इस धातु का प्रयोग किया जाता है। अतः अग्नि प्रज्वालनादि पच् इस धातु का अर्थ है और अग्नि प्रज्वालनादि क्रिया है, अतः अग्नि प्रज्वालनादि व्यापार पच् इस धातु का अर्थ है। इस प्रकार अग्नि प्रज्वालनादि व्यापार से पाक रूप फल होता है। अतः पाक रूप फल भी पच् इस धातु का अर्थ है। इसलिये यहां कहा जा सकता है कि अग्नि प्रज्वालनादि व्यापार

ध्यान दें:

और पाक रूप फल ये दोनों पच् इस धातु के अर्थ हैं। इस प्रकार प्रत्येक धातु का व्यापार व फल अर्थ होता है। वहां-वहां प्रयोगानुसार छात्रों के द्वारा स्वयंमेव विचार कर लेना चाहिये। यहां विस्तार के भय नहीं लिखा जा रहा है।

जब धातुओं का अर्थ निर्देश किया जाता है तब फलानुकूल व्यापार, संयोगानुकूल व्यापार इस तरह के वाक्य प्रयुक्त होते हैं। वहां अनुकूल शब्द का अर्थ जनक यह है। तब फलजनक व्यापार यह अर्थ सामने आता है। इसी तरह तत्र-तत्र स्थल पर समझना चाहिये।

3. प्रातिपदिकार्थ विचार

जिस शब्द से स्वादि विभक्तियां होती है वह प्रातिपदिक कहलाता है। प्रातिपदिक का क्या अर्थ होता है? विचार करने पर व्याकरणों के तीन अर्थ उपस्थित होते हैं। जाति, व्यक्ति और लिङ्ग। जैसे घट यह प्रातिपदिक है। उसकी घटत्व यह जाति है, घट यह व्यक्ति व पुंस्त्व यह लिङ्ग है ऐसे अर्थ निष्पन्न होते हैं। इसी तरह पट इत्यादि प्रातिपदिकों को भी समझना चाहिये। लक्ष्मी इस प्रातिपदिक का लक्ष्मीत्व यह जाति है, लक्ष्मी यह व्यक्ति व स्त्रीत्व यह लिङ्ग है यह अर्थ होता है। इसी तरह श्री इत्यादि प्रातिपदिकों को भी समझना चाहिये। ज्ञान इस प्रातिपदिक की ज्ञानत्व यह जाति, ज्ञान यह व्यक्ति व नपुंसकत्व यह लिङ्ग ये अर्थ होते हैं। इसी तरह धनम् इत्यादि प्रातिपदिकों को समझना चाहिये। यहां यह भी ज्ञेय है कि कुछ प्रातिपदिकों के दो लिङ्ग भी होते हैं और कुछ प्रातिपदिकों के तीन लिङ्ग भी होते हैं। कुछ प्रातिपदिकों का लिङ्ग मात्र भी अर्थ नहीं होता है।

प्रथमा विभक्ति विचार

यहां प्रथमा विभक्ति किस अर्थ में होती है व किस सूत्र से होती है इस पर विचार किया जाता है। वहां पाणिनीय व्याकरण में प्रथमा विभक्ति का विधान करने वाले दो सूत्र हैं। वे दोनों सूत्र- प्रातिपदिकार्थ लिङ्ग परिमाण वचन मात्रे प्रथमा व सम्बोधने च हैं। यहां क्रमेण दोनों की व्याख्या की जाती है-

19.1 प्रातिपदिकार्थ लिङ्ग परिमाण वचन मात्रे प्रथमा।। (2.3.46)

सूत्रार्थ- प्रातिपदिकार्थ मात्र बोधक प्रातिपदिक से स्वार्थ में प्रथमा विभक्ति होती है। प्रातिपदिकार्थ लिङ्ग मात्र बोधक प्रातिपदिक से स्वार्थ में प्रथमा विभक्ति होती है। प्रातिपदिकार्थ लिङ्ग परिमाण बोधक प्रातिपादिक से परिमाण में प्रथमा विभक्ति होती है। संख्या बोधक प्रातिपदिक से स्वार्थ में प्रथमा विभक्ति होती है।

व्याख्या- यह विधि सूत्र है। यहां सूत्र में प्रातिपदिकार्थ लिङ्ग परिमाण वचनमात्रे यह सप्तम्यन्त पद है। प्रथमा यह प्रथमान्त पद है। प्रातिपदिकार्थ लिङ्ग परिमाण वचनमात्रे यह एक समस्त पद है। यहां द्वन्द्वगर्भ तत्पुरुष समास है। इसका विग्रह इस तरह है। 'प्रातिपदिकार्थश्च लिङ्गं च परिमाणं च वचनं चेति प्रातिपदिकार्थ लिङ्ग परिमाणवचनानि। प्रातिपदिकार्थ लिङ्ग परिमाणवचनानि एव इति प्रातिपदिकार्थ लिङ्ग परिमाण वचनमात्रं तस्मिन् प्रातिपदिकार्थ लिङ्ग परिमाणवचनमात्रे'। वहां 'द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते' इस न्याय से द्वन्द्व समास के अन्त में श्रूयमाण मात्र शब्द का प्रत्येक द्वन्द्व के अवयवों के साथ सम्बन्ध होता है। तब सूत्र का अर्थ प्रातिपदिकार्थ मात्र लिङ्ग मात्र परिमाण मात्र व वचन मात्र में प्रथमा विभक्ति होती है यह वाक्य निष्पन्न होता है। यहां लिङ्ग मात्र इसके स्थान पर लिङ्ग मात्रादि क्या इस अर्थ का बोध करना चाहिए। कारण यह है कि कहीं भी लिङ्ग मात्र की प्रतीति नहीं होती है।

पाठ-19

कारक सामान्य परिचय व प्रथमा विभक्ति

ध्यान दें:

इस तरह परिमाण मात्र इसके स्थान पर भी परिमाण मात्र का आधिक्य यह अर्थ समझना चाहिये। वहां प्रथमा किस कारण से होती है ऐसी जिज्ञासा होने पर प्रातिपदिक से इस पद को सम्बद्ध करना चाहिये। क्योंकि सुप्प्रत्ययों का विधान प्रातिपदिक से ही होता है। इस तरह प्रातिपदिकार्थ मात्र में प्रातिपदिक से प्रथमा विभक्ति होती है। लिङ्ग मात्र के आधिक्य में प्रातिपदिक से प्रथमा विभक्ति होती है। परिमाण मात्र के आधिक्य में प्रातिपदिक से प्रथमा विभक्ति होती है। वचन मात्र में प्रातिपदिक से प्रथमा विभक्ति होती है ये चार वाक्य प्रतिफलित होते हैं। यहां क्रमेण सभी का नीचे विचार प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रातिपदिकार्थ मात्र में प्रातिपदिक से प्रथमा विभक्ति होती है- यहां 'प्रातिपदिकस्य अर्थः इति प्रातिपदिकार्थः' ऐसा विग्रह करने पर षष्ठी तत्पुरुष समास है। तन्मात्र में प्रातिपदिक से प्रथमा विभक्ति होती है। अर्थात् प्रातिपदिकार्थ मात्र बोधक प्रातिपदिक से प्रथमा विभक्ति होती है। वहां किस अर्थ में इस वचन से प्रथमा विभक्ति होती है तो यहां अर्थ विशेष के अनिर्देश से स्वार्थ में ही प्रथमा होती है ऐसा प्रतिफलित होता है। अतः प्रातिपदिकार्थ मात्र बोधक प्रातिपदिक से स्वार्थ में प्रथमा विभक्ति होती है यह निष्कर्ष निकलता है। वहां प्रातिपदिकार्थ क्या है तो मीमांसा शास्त्र में घटत्वादि जाति ही प्रातिपादिकार्थ होता है। नैयायिक न्याय में घटादि व्यक्ति प्रातिपदिकार्थ होता है। व्याकरण न्याय में घटत्वादि जाति घटादि व्यक्ति व पुंस्त्वादि लिङ्ग ये तीनों समुदित रूप में प्रातिपदिकार्थ होता है यह शास्त्रीय सिद्धान्त है और व्याकरण मतानुसार घटत्वादि जाति घटादि व्यक्ति व पुंस्त्वादि लिङ्ग का प्रातिपदिकार्थ पद से ग्रहण होता है। तदनन्तर प्रातिपदिकार्थ मात्र बोधक प्रातिपदिक से स्वार्थ में प्रथमा होती है इस कथन से जाति व्यक्ति लिङ्ग मात्र बोधक प्रातिपदिक से स्वार्थ में प्रथमा होगी और लिङ्ग बोधक प्रातिपदिक से भी प्रथम वाक्य से ही प्रथमा सिद्ध थी तो लिङ्ग ग्रहण किसलिये किया गया तो वह व्यर्थ है और वह लिङ्ग ग्रहण व्यर्थ होकर ज्ञापित करता है इस सूत्र में प्रातिपदिकार्थ पद से नियतोपस्थितिक प्रातिपदिक के अर्थ का ही ग्रहण होता है न कि तीनों का। जैसा कि भट्टोजिदीक्षित ने कहा है 'नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थः'। नियतोपस्थितिकः इस पद में बहुव्रीहि समास है। इसका विग्रह इस तरह है 'नियता उपस्थितिः यस्य अर्थस्य सः नियतोपस्थितिकः अर्थः'। अर्थात् जिस प्रातिपदिक से जिस अर्थ की नियमेन सर्वदा उपस्थिति होती है, वही अर्थ प्रातिपदिकार्थ होता है। यथा राम इस प्रातिपदिक से रामत्व, राम व पुंस्त्व इन तीनों अर्थों की नियमेन सर्वदा उपस्थिति होती है। इसलिये राम शब्द का रामत्व, राम व पुंस्त्व ये तीन अर्थ प्रातिपदिकार्थ के होते हैं। किन्तु तट शब्द का तटत्व, तट, पुंस्त्व, स्त्रीत्व, नपुंसकत्व ये अर्थ होते हैं। उनमें तट इस प्रातिपदिक से तटत्व व तट इन दोनों अर्थों की नियमेन उपस्थिति होती है। पुंस्त्व, स्त्रीत्व, व नपुंसकत्व इनकी तो नियमेन उपस्थिति नहीं होती है। वैसे ही 'तटः' इस विसर्ग युक्त तट प्रातिपदिक से तटत्व, तट, पुंस्त्व, इन अर्थों की उपस्थिति होती है। तटी इस ङीप्प्रत्यय युक्त तट प्रातिपदिक से तटत्व, तट और स्त्रीत्व इन अर्थों की उपस्थिति होती है। तटम् इस अम्प्रत्यय युक्त तट प्रातिपदिक से तटत्व, तट और नपुंस्कत्व इन अर्थों की उपस्थिति होती है। इस प्रकार यह सुस्पष्ट है कि पुंस्त्व, स्त्रीत्व और नपुंस्कत्व ये अर्थ तट प्रातिपदिक से नियतोपस्थित नहीं होते हैं और इस तरह तट शब्द के अर्थों में तटत्व और तट इनका ही प्रातिपदिकार्थत्व है, इनकी नियत उपस्थिति होने के कारण। न ही पुंस्त्व, स्त्रीत्व व नपुंसकत्व का प्रातिपदिकार्थत्व है क्योंकि उनकी उपस्थिति अनियत है। इस प्रकार यहां कौन सा अर्थ नियत होता है और कौन सा अनियत इस विषय में तात्पर्य रूपेण कहा जा सकता है कि नियत लिङ्ग वाले शब्दों का जाति, व्यक्ति व लिङ्ग ये तीन अर्थ नियत होते हैं। अतः नियत लिङ्ग वाले शब्दों में इस वाक्य से ही प्रथमा सिद्ध होती है। अनियत लिङ्ग वाले शुक्ल तटादि शब्दों के तो दो ही अर्थ नियत हैं जाति व व्यक्ति, किन्तु लिङ्ग रूप अर्थ तो अनियत ही है। इसलिये अनियत लिङ्ग शुक्लादि शब्दों का वाच्य लिङ्ग प्रातिपदिकार्थ नहीं है। इस तरह प्रातिपदिकार्थ मात्र में प्रथमा होती है इस वाक्य से नियत लिङ्ग वाले प्रातिपदिकों से रामकृष्णादि शब्दों से व अलिङ्ग अव्ययों से ही प्रथमा होगी, किन्तु अनियतलिङ्गवाची तटादि शब्दों से प्रथमा नहीं होगी। अतः उनसे प्रथमा के विधान के लिये द्वितीय वाक्य का आरम्भ है

ध्यान दें:

यह भाव है।

लिङ्ग मात्राधिक्ये प्रातिपदिकात् प्रथमा विभक्तिः भवति- लिङ्ग मात्र के आधिक्य में प्रातिपदिक से प्रथमा विभक्ति होती है। वहां आधिक्य सापेक्ष होता है ऐसा मानने पर आधिक्य यह सुनकर ही किसकी अपेक्षा आधिक्य का ग्रहण किया जाये यह जिज्ञासा होती है। अतः यहां किसकी अपेक्षा आधिक्य ग्राह्य है तो उपस्थित प्रातिपदिकार्थ की अपेक्षा ही यहां आधिक्य स्वीकृत किया जाता है और तब प्रातिपदिकार्थ व लिङ्ग मात्र बोधक प्रातिपदिक से प्रथमा होगी यह अर्थ निष्पन्न होता है। वहां किस अर्थ में इस वचन से प्रथमा विभक्ति होती है तो यहां अर्थ विशेष के निर्देश न होने से स्वार्थ में ही प्रथमा होती है ऐसा प्रतिफलित होता है। और इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि अनियतोपस्थितिक लिङ्ग बोधक प्रातिपदिक से स्वार्थ में प्रथमा होती है यह भाव है। यथा 'तटः तटी तटम्'। यहां तट शब्द नियत उपस्थित तट व तटत्व के बोधक होते हैं और भी अनियत लिङ्ग का भी बोधक होता है इस प्रकार अनियतोपस्थितिक लिङ्ग बोधक तट इस प्रातिपदिक से इस द्वितीय वाक्य से प्रथमा सिद्ध होती है। यहां प्रथम वाक्य से तो प्रथमा नहीं हो सकती है तट शब्द के नियतोपस्थितिकार्थ मात्र के बोधकत्व के अभाव के कारण। इसी तरह 'शुक्लः शुक्ला शुक्लम्' इत्यादि में समझना चाहिये और इस वाक्य के उदाहरणों के विषय में कहा जा सकता है कि अनियत लिङ्ग अर्थात् द्विलिङ्ग व त्रिलिङ्ग शब्द इस वाक्य के उदाहरण होते हैं।

परिमाणमात्रे प्रातिपदिकात् प्रथमा विभक्तिः भवति- परिमाण बोधक प्रातिपदिक से परिमाण अर्थ में प्रथमा विभक्ति होती है यह तृतीय वाक्य का अर्थ होता है। जैसे 'द्रोणो व्रीहिः' यहां परिमाण बोधक प्रातिपदिक द्रोण है। इसलिये परिमाण अर्थ में प्रथमा विभक्ति होती है। 'व्रीहिः' यहां प्रथम वाक्य से प्रथमा विभक्ति होती है। इस तरह 'द्रोण सु व्रीहि सु' यहां द्रोण पद का अर्थ होता है द्रोण। तदुत्तर सु इस विभक्ति का अर्थ परिमाण होता है। द्रोण यह परिमाण विशेष है। इसलिये सामान्य और विशेष में अभेद होता है इस नियम से प्रकृत्यर्थ द्रोण का प्रत्ययार्थ परिमाण में अभेद सम्बन्ध से अन्वय सिद्ध होता है। अतः द्रोण इसका द्रोण से अभिन्न परिमाण यह अर्थ होता है। सुप्रत्ययार्थ के परिमाण का व्रीहि में परिच्छिन्नत्व सम्बन्ध से अन्वय होता है। ततः 'द्रोणो व्रीहिः' इसका वाक्यार्थ होता है- द्रोण से अभिन्न व परिमाण से परिच्छिन्न व्रीहि। अब 'द्रोणः व्रीहिः' यहां परिमाण बोधक द्रोण शब्द का द्रोणत्व, द्रोण, परिमाणत्व व पुंस्त्व ये अर्थ होते हैं। और वे द्रोण इस प्रातिपदिक के उच्चारित होने पर नियमेन सर्वदा उपस्थित होते हैं। अतः द्रोणत्व, द्रोण, परिमाणत्व व पुंस्त्व ये अर्थ प्रातिपदिकार्थ ही हैं। इस प्रकार परिमाण बोधक द्रोणादि शब्दों से प्रातिपदिकार्थ मात्र में प्रथमा होती है इस प्रथम वाक्य से ही प्रथमा सिद्ध थी तो सूत्र में परिमाण ग्रहण क्यों किया गया? इसके समाधान में- 'नीलः घटः' इत्यादि में दोनों ही शब्दों से प्रातिपदिकार्थ में प्रथमा है। इस प्रकार एक प्रातिपदिकार्थ का द्वितीय प्रातिपदिकार्थ में अभेद सम्बन्ध से अन्वय होता है, 'नामार्थयोरभेदान्वयः' इस नियम के बल से। ततः नील इस प्रादिपदिकार्थ का घट इस प्रातिपदिकार्थ में अभेदेनान्वय होता है, उसके बाद 'नीलः घटः' इसका नील से अभिन्न घट यह अर्थ होता है। इसी तरह 'द्रोणः व्रीहिः', यहां व्रीहि शब्द से तो प्रातिपदिकार्थ में प्रथमा है ही, द्रोण शब्द से भी प्रातिपदिकार्थ में प्रथमा के स्वीकार करने में, 'द्रोणः व्रीहिः' यहां भी उपर्युक्त नियम के बल से 'नीलः घटः' इसकी तरह द्रोण इस प्रातिपदिकार्थ का व्रीहि प्रातिपदिकार्थ में अभेदेनान्वय होना चाहिये ततः 'द्रोणः व्रीहिः' इसका द्रोण से भिन्न व्रीहि यह अर्थ होगा और वह अर्थ हमें इष्ट नहीं है। अतः परिमाण बोधक प्रातिपदिक से परिमाण अर्थ में प्रथमा होगी। अतः सूत्र में परिमाण ग्रहण किया गया यह भाव है।

वचनमात्रे प्रथमा विभक्तिः भवति- संख्या बोधक प्रातिपदिक से स्वार्थ में प्रथमा विभक्ति होती है। इस वाक्य के उदाहरण- एकः द्वौ बहवः। इस वाक्य की क्या आवश्यकता है। क्योंकि- एक शब्द का एकत्व यह अर्थ तो नियत ही है। इसी प्रकार द्विशब्द का द्वित्वरूप अर्थ नियत है। और बहुशब्द का

ध्यान दें:

बहुत्व अर्थ नियत है। अत: प्रातिपदिकार्थ मात्र में प्रथमा होती है इसी से एकादि शब्दों से प्रथमा हो सकती है और यदि कहा जाए कि ये भी अनियत लिङ्ग शब्द हैं। अत: प्रथम वाक्य से प्रथमा नहीं हो सकती है तो लिङ्ग मात्र के अधिक्य में प्रथमा होती है इस वाक्य से प्रथमा हो जायेगी। तो सूत्र में वचन ग्रहण किसलिये है यह प्रश्न है। यहां कहा जाता है- 'उक्तार्थानामप्रयोग:' इस न्याय से। इस न्याय का अर्थ- 'उक्त: अर्थ: येषां ते उक्तार्था: शब्दा:'। अर्थात् उक्तार्थ शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिये यह भाव है। और इस तरह से एक शब्द से एकत्व रूप अर्थ उक्त है। और वही सु प्रत्यय का अर्थ है। और एक शब्द से ही सुप्रत्यय का अर्थ उक्त है। अत: सुप्रत्यय उक्तार्थ है। इसलिये उसका प्रयोग नहीं होना चाहिये। इस प्रकार एक शब्द से एकवचन नहीं होगा। इस तरह द्विशब्द का अर्थ द्वित्व। और वही 'औ' इस द्विवचन का भी है। इस तरह द्विशब्द से द्विवचन का द्वित्वरूप अर्थ उक्त है, अत: द्विवचन उक्तार्थ हुआ। अत: द्विशब्द से द्विवचन नहीं होना चाहिये। इस तरह बहुशब्द का अर्थ बहुत्व है। और वही अर्थ जस् इस बहुवचन का है। तत: बहुशब्द से बहुवचन का अर्थ बहुत्व उक्त हुआ। अत: बहुवचन उक्तार्थ है। इसलिये बहुशब्द से बहुवचन नहीं होना चाहिये। अत: इन शब्दों से प्रथमा की सिद्धि के लिये वचन ग्रहण किया यह भाव है। और इस प्रकार वचन ग्रहण के बल से यहां 'उक्तार्थानामप्रयोग:' इस न्याय की प्रवृत्ति नहीं होती है ऐसा मानकर एक शब्द से एकवचन, द्विशब्द से द्विवचन और बहुशब्द से बहुवचन सिद्ध होते हैं।

निष्कर्ष- यहां संक्षेप में इस सूत्र का निष्कर्ष कहा जा सकता है कि सूत्र में चार वाक्य होते हैं। वहां प्रथम वाक्य यह होता है प्रातिपदिकार्थ मात्र में प्रथमा होती है। और इसका अर्थ होता है नियतोपस्थितिकार्थ मात्र बोधक प्रातिपदिक से स्वार्थ में प्रथमा होती है। और इस वाक्य के अलिङ्ग, अव्यय व नियतलिङ्ग रामादि शब्द उदाहरण होते हैं। द्वितीय वाक्य होता है लिङ्गमात्र के अधिक्य में प्रथमा होती है। और इसका अर्थ होता है नियतोपस्थितिक लिङ्ग मात्र बोधक प्रातिपदिक से स्वार्थ में प्रथमा होती है। और इस वाक्य के अनियतलिङ्ग शब्द उदाहरण होते हैं। तृतीय वाक्य बनता है परिमाण मात्र में प्रथमा होती है। और इसका वाक्यार्थ होता है नियतोपस्थितिक लिङ्ग व परिमाण मात्र बोधक प्रातिपदिक से परिमाणार्थ में प्रथमा विभक्ति होती है। और इसके उदाहरण परिमाण बोधक शब्द होते हैं। चतुर्थ वाक्य बनता है वचन मात्र में प्रथमा होती है। और इस वाक्य का अर्थ होता है संख्या बोधक प्रातिपदिक से स्वार्थ में प्रथमा विभक्ति होती है। इस वाक्य के उदाहरण संख्या बोधक एक: द्वौ बहव: इत्यादि शब्द होते हैं।

19.2 सम्बोधने च ॥ (3.3.47)

सूत्रार्थ- प्रातिपदिक से सम्बोधन अर्थ में प्रथमा होती है।

व्याख्या- यह विधि सूत्र है। सम्बोधने यह सप्तम्यन्त पद है, च यह अव्यय पद है, प्रथमा यह प्रथमान्त पद यहां अनुवर्तित किया जाता है। इस प्रकार सूत्रार्थ होता है सम्बोधन में विद्यमान प्रातिपदिक से प्रथमा विभक्ति होती है। अथवा प्रातिपदिक से सम्बोधन अर्थ में प्रथमा विभक्ति होती है। वहां सम्बोधन क्या है तो अभिमुखी करके बतलाना। अर्थात् जब कोई व्यक्ति किसी भी व्यक्ति को स्वयं की ओर अभिमुखी करके कुछ बोध करवाना चाहता है तब ही सम्बोधन विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे भक्त कहता है- 'भो राम मां पाहि'। यहां अन्यत्र प्रवृत्त राम को स्वयं की ओर अभिमुखी करके भक्त स्वरक्षण को ज्ञापित करता है अत: राम के लिये उसने सम्बोधन किया है। और इस प्रकार सम्बोधन में यहां प्रथमा हुई है। ऐसे ही अन्यत्र भी समझना चाहिये।

जैसे कि ये पद्य हैं-

ध्यान दें:

सम्बोधनविशेषार्थे प्रथमा नामतो भवेत्।
हे राम हे हरे विष्णो सम्बोधनपदं ततः॥
सम्बोधनेऽपि प्रथमा विभक्तिर्भवति ध्रुवम्।
यथा हे राम हे रामौ हे रामाः इत्यनुक्रमात्॥
हे शब्देन विनापि स्यात् क्वचिदन्तेऽपि हे भवेत्।
यथा राम प्रसीद त्वं राम हे त्वां भजाम्यहम्॥

निम्न पद्य में सम्बोधन विभक्ति के प्रयोग का प्राचुर्य है-

अथ विश्वेश विश्वात्मन् विश्वमूर्ते स्वकेषु मे।
स्नेहपाशमिमं छिन्धि दृढं पाण्डुषु वृष्णिषु॥

4. उक्तानुक्त विचार

प्रथमा विभक्ति कहां होती है इस विषय में सामान्य नियम है कि उक्त अर्थ में प्रथमा विभक्ति होती है। अर्थात् उक्त कर्ता में प्रथमा विभक्ति होती है। उक्त कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है। उक्त करण में प्रथमा विभक्ति होती है। उक्त सम्प्रदान में प्रथमा विभक्ति होती है। उक्त अपादान में प्रथमा विभक्ति होती है। उक्त अधिकरण में प्रथमा विभक्ति होती है। उक्त सम्बन्ध में प्रथमा विभक्ति होती है।

उक्त व अभिहित ये दोनों शब्द समानार्थक हैं। इसी प्रकार अनुक्त व अनभिहित ये दोनों शब्द समानार्थक हैं। विभक्ति के विधानकाल में उक्त अनुक्त का ज्ञान परमावश्यक होता है। इसलिये सामान्य रूप से कौन उक्त होता है व कौन अनुक्त होता है यह प्रतिपादित किया जाता है। यहां यह समझ लेना चाहिये कि उक्त व अनुक्त की व्यवस्था तिङ्प्रत्ययों, कृत्प्रत्ययों, समास व तद्धित से होती है। परन्तु प्रकृत विषय में तिङ्प्रत्यय व कृत्प्रत्यय द्वारा उक्तानुक्त की व्यवस्था कैसे होती है यह प्रतिपादित किया जाता है। समास से व तद्धित से जो उक्तानुक्त व्यवस्था होती है वह यहां प्रतिपादित नहीं की जाती है।

1. तिङ् प्रत्यय द्वारा उक्तानुक्त व्यवस्था विचार

जिस अर्थ में कोई तिङ्प्रत्यय होता है वह अर्थ उक्त होता है। और जिस अर्थ में कोई तिङ्प्रत्यय नहीं होता है वह अर्थ अनुक्त होता है। जैसे ''राजा गङ्गातीरे गोष्ठात् धेनुं हस्तेन विप्राय ददाति'' यहां दा इस धातु का कर्ता अर्थ में तिङ्प्रत्यय है। अतः कर्ता उक्त है। अतः कर्ता में प्रथमा विभक्ति है। परन्तु कर्म करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण ये सब अनुक्त हैं। अतः कर्म में द्वितीया विभक्ति करण में तृतीया विभक्ति सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति अपादान में पञ्चमी विभक्ति और अधिकरण में सप्तमी विभक्ति होती है। इसी प्रकार ''राज्ञा गङ्गातीरे गोष्ठात् धेनुः हस्तेन विप्राय दीयते'' यहां दा धातु के कर्म अर्थ में तिङ्प्रत्यय है। अतः कर्म उक्त है किन्तु कर्ता करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण अनुक्त हैं। इससे उक्त कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है। अनुक्त कर्ता में तृतीया विभक्ति होती है। अनुक्त करण में तृतीया विभक्ति, अनुक्त सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति, अनुक्त अपादान में पञ्चमी विभक्ति, अनुक्त अधिकरण में सप्तमी विभक्ति होती है। 'चैत्रेण सुप्यते' यहां स्वप् इस धातु से भाव अर्थ तिङ्प्रत्यय है। अतः भाव उक्त है। कर्ता अनुक्त है। और इस प्रकार अनुक्त कर्ता में तृतीया विभक्ति होती है। और यहां तिङ्प्रत्ययों के विषय में कहा जा सकता है कि तिङ्प्रत्ययों के द्वारा कर्ता उक्त होता है। कर्म उक्त होता है भाव उक्त होता है। अत एव जब कर्ता उक्त होता है तब यह कर्तृवाच्य कहलाता है। जब कर्म उक्त होता है तब यह कर्मवाच्य कहलाता है। जब भाव उक्त होता है तब यह भाववाच्य कहलाता है।

ध्यान दें:

जैसा कि कारिका है-

कर्तरि प्रथमा यत्र द्वितीयाऽथ च कर्मणि।

कर्तृ वाच्यं भवेत् तत्तु क्रिया कर्त्रनुसारिणी॥

अन्वयार्थः- जहां प्रयोग में कर्ता में प्रथमा होती है व कर्म में द्वितीया दिखाई दे, वहां क्रिया का वचन व पुरुष कर्ता के अनुसार होता है वह कर्तृ (तिङ के द्वारा) वाच्य कहलाता है।

कर्मणि प्रथमा यत्र तृतीयाऽथ च कर्तरि।

कर्म वाच्यं भवेत् तत्तु क्रिया कर्मानुसारिणी॥

अन्वयार्थः- जहां प्रयोग में कर्म में प्रथमा होती है व कर्ता में तृतीया दिखाई दे, वहां क्रिया का वचन व पुरुष कर्म के अनुसार होता है वह कर्म (तिङ के द्वारा) वाच्य कहलाता है।

भाववाच्य में क्रिया को कहा जाता है न कर्ता को न ही कर्म को।

तत्र कर्ता तृतीयायां क्रिया भावानुसारिणी॥

अन्वयार्थः- जहां प्रयोग में तिङ् भाव को कहता है, न कर्ता और न ही कर्म को कहता है, वहां तिङ् के द्वारा भाव उक्त होता है। और कर्ता में तृतीया दिखाई देती है। क्रिया का वचन एकवचन ही होगा व पुरुष भी प्रथम पुरुष ही होता है। तब ही लोगों के द्वारा भाव वाच्य यह कहा जाता है।

(यहां यह अवधेय है कि कर्तृवाच्य कर्मवाच्य व भाववाच्य ये शब्द समास से सिद्ध नहीं होते हैं। फिर साम्प्रतिक लोग भ्रम के कारण इन शब्दों का बाहुल्य से प्रयोग करते हैं। उस स्थल पर कर्ता में प्रयोग, उक्तकर्ता में प्रयोग इत्यादि रूप से सिद्ध करना चाहिए।)

2. कृत्प्रत्यय के द्वारा उक्तानुक्त व्यवस्था विचार

जिस अर्थ में जब कोई प्रत्यय होता है तब वह अर्थ उक्त होता है। और जिस अर्थ में कोई प्रत्यय नहीं होता है वह अर्थ अनुक्त होता है। यथा ''राजा गङ्गातीरे गोष्ठात् धेनुं हस्तेन विप्राय दत्तवान्'' यहां दा इस धातु से कर्ता अर्थ में क्तवतु प्रत्यय है। अतः कर्ता उक्त है। कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण ये सब अनुक्त हैं। अतः उक्त कर्ता में तो प्रथमा विभक्ति ही है। किन्तु कर्म में द्वितीया विभक्ति, करण में तृतीया विभक्ति, सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति, अपादान में पञ्चमी विभक्ति और अधिकरण में सप्तमी विभक्ति होती है। एवमेव ''राज्ञा गङ्गातीरे गोष्ठात् धेनुः हस्तेन विप्राय दत्ता'' यहां दा धातु से कर्म अर्थ में क्तप्रत्यय है। अतः कर्म उक्त है किन्तु कर्ता, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण अनुक्त हैं। और उससे उक्त कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है, अनुक्त कर्ता में तृतीया विभक्ति होती है, अनुक्त करण में तृतीया विभक्ति, अनुक्त सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति, अनुक्त अपादान में पञ्चमी विभक्ति, और अनुक्त अधिकरण में सप्तमी विभक्ति होती है। इसी प्रकार 'छात्रैः गतम्' यहां भाव अर्थ में प्रत्यय है। अतः भाव तो उक्त है ही। कर्ता अनुक्त है। अतः अनुक्त कर्ता में तृतीया विभक्ति होती है। कृत्-प्रत्ययों से करणादि अर्थ भी उक्त होते हैं। परन्तु वह यहां नहीं कहा गया है। वह कृत्प्रकरण में द्रष्टव्य है।

पाठगत प्रश्न

यहां कुछ पाठगत प्रश्न दिये जा रहे हैं।

1. कारक का क्या लक्षण है?

2. कारक कितने होते हैं?
3. सुप्विभक्तियां कितनी होती हैं?
4. धातु के कितने अर्थ होते हैं और वे कौन-कौन से होते हैं?
5. प्रातिपदिकार्थ लिङ्ग परिमाणवचनानि यहां क्या समास है?
6. प्रातिपदिकार्थ क्या है?
7. प्रातिपदिकार्थ मात्र का क्या उदाहरण है?
8. लिङ्गाधिक्य का क्या उदाहरण है?
9. परिमाणमात्र का क्या उदाहरण है?
10. वचन मात्र का क्या उदाहरण है?
11. सम्बोधने च इस सूत्र का क्या उदाहरण है?

पाठसार

यहां पाठ में कारक का सामान्य लक्षण बताया गया। और वह क्रिया जनकत्व है। और वे कारक छः होते हैं। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण। पुनः उक्त व अनुक्त भेद से बारह भेद वर्णित किये गये। वहां उक्त कारक मात्र में प्रथमा विभक्ति होती है यह हमेशा ही जानना चाहिये। सभी धातुओं के दो अर्थ होते हैं फल और व्यापार। प्रत्येक प्रातिपदिकों के तीन अर्थ होते हैं- जाति, व्यक्ति, और लिङ्ग। प्रातिपदिकार्थ लिङ्ग परिमाणवचनमात्रे प्रथमा इस सूत्र में प्रातिपदिकार्थपद से नियतोपस्थितक अर्थ का ग्रहण करना चाहिये। और सम्बोधन सम्मुखी करके बताना, यह इस पाठ का सार है।

सत्य वचन ही मनुष्य का उत्तम आभूषण है लज्जा और कमर क्षीणता नारी का उत्तम अलंकार है। विद्या और क्षमा ब्राह्मण का उत्तम आभूषण है। और सत् चरित्रता ही सभी मनुष्य का उत्तम आभूषण होता है। हाथ के अलंकार धारण करने से, सौन्दर्य बढ़ाने के लिए कान्ति विशिष्ट हारादि अंलकारों के धारण करने से, शरीर पर चन्दनादि का लेपन करने से, केशों में फूल धारण से कोई भी व्यक्ति भूषित नहीं होता है। सुन्दर सुसंस्कृत वाणी ही सबको भूषित करती है। वाणी रूप आभूषण ही क्षीण न होने वाला आभूषण है। व्यक्तियों का सौन्दर्य ही उनका अंलकार होता है। और उनके सौन्दर्य के अलंकार उनके गुण होते हैं। एवं उन गुणों का अलंकार ज्ञान होता है। उसी प्रकार उसके ज्ञान का अलंकार क्षमा होती है। जिस व्यक्ति को साहित्य शास्त्र, संगीत विषयक और कला विषयक कोई भी ज्ञान नहीं है, वह तो पूँछ और सींग से रहित साक्षात् पशु के समान ही होता है। वह पशु समान व्यक्ति मनुष्य रूप धारण करने से पशु के समान तिनका नहीं खाता है, इसलिए पशु भोजन के लिए अधिक तिनके प्राप्त करते हैं। यह तो पशुओं का महान भाग्य ही है। जिस प्रदेश में कोई भी विद्वान व्यक्ति नहीं है, वहाँ तो मन्द बुद्धि व्यक्ति भी सबका प्रशंसनीय होता है। जैसे रेगिस्तान आदि में कोई भी बड़ा वृक्ष नहीं है, इसलिए वहाँ उपस्थित कण्टक वृक्ष भी बड़े वृक्ष जैसे गणना किया जाता है।

ध्यान दें:

पाठ-19

कारक सामान्य परिचय व प्रथमा विभक्ति

ध्यान दें:

योग्यतावर्धन

नीचे कुछ अत्यन्त सुबोध व रम्य पद्य दिये गये हैं और वे विरल ही हैं। कहीं एक स्थान पर तत्काल नहीं मिलते हैं। अनेकों ग्रन्थान्तरों से निकाल कर यहां प्रदत्त हैं। इन्हें ध्यान से पढ़ना चाहिए। उनमें एक-एक शब्द का सभी विभक्तियों में प्रयोग देखा जाता है। यथा प्रथम पद्य में राम शब्द का सातों विभक्तियों में प्रयोग है। अत: सभी श्लोकों में से इस प्रकार के पदों को खोजकर व पृथक करके लिखें। और उनका विभक्ति निर्णय करें। और कौन-कौन सा कारक किस-किस पद्य से ज्ञात होता है वह भी यथा शक्ति समझना चाहिये और इस प्रकार वह कारक उक्त है या अनुक्त यह भी अवधेय है।

रामो राजमणि: सदा विजयते रामं रमेशं भजे

रामेणाभिहता निशाचरचमू रामाय तस्मै नम:।

रामान्नास्ति परायणं परतरं रामस्य दासोऽस्म्यहम्

रामे चित्तलय: सदा भवतु मे भो राम मामुद्धर॥1॥

श्रीराम: शरणं समस्तजगतां रामं विना का गती

रामेण प्रतिहन्यते कलिमलं रामाय कार्यं नम:।

रामात् त्रस्यति कालभीमभुजगो रामस्य सर्वं वशे

रामे भक्तिरखण्डिता भवतु मे राम त्वमेवाश्रय:॥2॥

कृष्णो रक्षतु मां चराचरगुरु: कृष्णं नमस्याम्यहम्

कृष्णेनामरशत्रवो विनिहता: कृष्णाय तस्मै नम:।

कृष्णादेव समुत्थितं जगदिदं कृष्णस्य दासोऽस्म्यहम्

कृष्णे भक्तिरचञ्चलाऽस्तु भगवन् हे कृष्ण तुभ्यं नम:॥3॥

रामो मेऽभिहितं करोतु सततं रामं भजे सादरम्

रामेणापहतं समस्तदुरितं रामाय दत्तं धनम्।

रामान्मुक्तिरभीप्सिता सरभसं रामस्य दासोऽस्म्यहम्

रामे रञ्जतु मे मन: करुणया भो राम मां पालय॥4॥

श्रीमाता शरणं समस्तजगतां श्रीमातरं संनुम:।

श्रीमात्रा प्रतिहन्यते कलिमलं मात्रे नम: कोटिश:।

मातुस्त्रस्यति कालभीमभुजगो मातुश्च सर्वं वशे

भक्तिर्मातरि मे भवेदविचला मातस्त्वमेवाश्रय:॥5॥

गुरुरेव गतिः गुरुमेव भजेगुरुणैव सहास्मि नमो गुरवे।

न गुरोः परमं शिशुरस्मि गुरोः मतिरस्तु गुरौ मम पाहि गुरो॥

वृक्षस्तिष्ठति कानने कुसुमिते वृक्षं लताः संश्रिताः।

वृक्षेणाभिहता गजा निपतिता वृक्षाय देयं जलम्॥

वृक्षादानय मञ्जरीं कुसुमितां वृक्षस्य शाखोन्नता।

वृक्षे नीडमिदं कृतं शकुनिना हे वृक्ष किं पश्यसि॥

वीरः सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो वीरं बुधाः संश्रिता

वीरेणाभिहतः स्वकर्मनिचयो वीराय नित्यं नमः॥

वीरात्तीर्थमिदं प्रवृत्तमतुलं वीरस्य घोरं तपः

वीरे श्रीधृतिकीर्तिकान्तिनिचयः श्रीवीर भद्रं दिश॥

पाठान्त प्रश्न

यहां स्वाध्याय परीक्षोपयोगी प्रश्न दिए जाते हैं।

1. कारक सामान्य के स्वरूप को प्रतिपादित कीजिए।
2. कारक स्वरूप व उसके भेदों को बताइए।
3. विभक्ति स्वरूप व विभक्ति भेदों को प्रतिपादित कीजिए।
4. धात्वर्थ व प्रातिपदिकार्थ को प्रतिपादित कीजिए।
5. प्रातिपदिकार्थ लिङ्ग परिमाण वचनमात्रे प्रथमा इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
6. प्रातिपदिकार्थ लिङ्ग परिमाण वचन मात्रे प्रथमा इस सूत्र में लिङ् ग्रहण का फल लिखिए।
7. प्रातिपदिकार्थ लिङ्ग परिमाण वचनमात्रे प्रथमा इस सूत्र में परिमाण ग्रहण का फल लिखिए।
8. प्रातिपदिकार्थ लिङ्ग परिमाण वचनमात्रे प्रथमा इस सूत्र में वचन ग्रहण का फल लिखिए।
9. सम्बोधने च इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
10. उक्तानुक्त व्यवस्था कैसे होती है यह प्रतिपादित कीजिए।

पाठगत प्रश्नोत्तर

1. क्रियाजनकत्वं कारकत्वम्।
2. कारक छः होते हैं।
3. सात सुब्विभक्तियां होती हैं।
4. प्रत्येक धातु के दो अर्थ होते हैं। व्यापार और फल।
5. इतरेतर योग द्वन्द्व समास है।

पाठ-19

कारक सामान्य परिचय व प्रथमा विभक्ति

ध्यान दें:

ध्यान दें:

6. नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थः।
7. रामः श्रीः ज्ञानम् इत्यादि नियत लिङ्ग शब्द हैं।
8. तटः तटी तटम् इत्यादि अनियत लिङ्ग शब्द हैं।
9. द्रोणो व्रीहिः।
10. एकः द्वौ बहवः।
11. हे राम।

ध्यान दें:

20

द्वितीया कारक विभक्ति-1

पूर्व पाठ में हमारे द्वारा पढ़ा गया कि छः कारक होते हैं। उन छः कारकों में कर्म कारक भी अन्यतम कारक होता है। उसके स्वरूप के ज्ञान के लिये भगवान् पाणिनि के द्वारा अनेक सूत्र बनाये गये। उनमें 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म, तथायुक्तं चानीप्सितम्, अधिशीङ्स्थासां कर्म, उपान्वध्याङ्वसः' ये सूत्र भी हैं। इन सूत्रों का यहां व्याख्यान प्रस्तुत किया जा रहा है। सुप्विभक्तियां सात होती हैं। वहां द्वितीया विभक्ति कहां होती है और कौन से सूत्र से होती है यह प्रस्तुत किया जाता है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे-

- कर्म संज्ञा किसकी होती है यह जान पाने में;
- वाक्यों में क्या कर्म कारक है यह जान पाने में;
- वाक्य रचना के समय कर्म में द्वितीया का सम्यक् प्रयोग कर पाने में;
- सूत्र का अर्थ कैसे किया जाता है यह जान पाने में;
- विशेष स्थल पर आधार में भी कर्म कैसे होता है यह जान पाने में;
- सूत्रार्थ के उदाहरण में समन्वय जानकर स्वयं समन्वय करने में सक्षम होंगे।

20.1 कर्तुरीप्सिततमं कर्म॥ (2.4.49)

सूत्रार्थ- कर्तृवृत्ति व्यापारजन्य फल का आश्रय कारक संज्ञक होता हुआ कर्म संज्ञक होता है।

सूत्रावतरण- छात्रः ग्रामं गच्छति, छात्रः ग्रामं त्यजति, बालः तण्डुलं खादति, इत्यादि प्रयोगों में ग्राम और तण्डुल की कर्म संज्ञा है ऐसा व्यवहार होता है। परन्तु ग्राम व तण्डुल कर्म कैसे हैं। किसके द्वारा ग्राम की और तण्डुल की कर्म संज्ञा की इस प्रकार के प्रश्न लोगों के मन में उत्पन्न होते हैं। तब इन प्रश्नों के समाधान के लिये भगवान् पाणिनि ने कर्म संज्ञा विधायक सूत्र बनाया और वह सूत्र 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' यह है। इसका यहां व्याख्यान किया जाता है।

पाठ-20

द्वितीया कारक विभक्ति-1

ध्यान दें:

सूत्र व्याख्या- यह संज्ञा सूत्र है। यह सूत्र कारक संज्ञा व कर्म संज्ञा करता है। इस सूत्र में तीन पद हैं। कर्तु: यह षष्ठी एकवचनान्त पद है। ईप्सिततमम् यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। कर्म यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। कारकम् इसका अधिकार यहां आता है। ईप्सिततमम् इसका व्यापारजन्य फलाश्रय यह अर्थ है।

सूत्रार्थ विचार- कर्ता का ईप्सिततम कारकसंज्ञक होता हुआ कर्मसंज्ञक होता है यह वाक्य योजना है। ईप्सिततमम् इसका व्यापारजन्य फलाश्रय यह अर्थ है। यहां व्यापार कर्तृवृत्ति है। एवं वृत्तित्व व्यापार में। अत: कर्ता के व्यापार में वृत्तित्व सम्बन्ध से अन्वय होता है और तब सूत्रार्थ होता है कर्तृवृत्ति व्यापारजन्य फल का आश्रय कारकसंज्ञक होता हुआ कर्मसंज्ञक होता है।

उदाहरण- छात्र: ग्रामं गच्छति। छात्र: ग्रामं त्यजति। बाल: तण्डुलं खादति।

सूत्रार्थ समन्वय- छात्र: ग्रामं गच्छति। छात्र: गृहं त्यजति। बाल: तण्डुलं खादति। इन तीनों उदाहरणों में सूत्रार्थ का समन्वय करते हैं।

छात्र: ग्रामं गच्छति। यहां वाक्य में ग्राम कर्म है। वहीं अर्थ का समन्वय किया जाता है। वहां समन्वय से पूर्व यह ज्ञेय है कि प्रत्येक धातु के दो अर्थ होते हैं फल और व्यापार। और भी व्यापार से फल उत्पन्न भी होता है। और व्यापार कर्तृवृत्ति कर्ता पर अश्रित होता है। इस प्रकार प्रकृत वाक्य में गम् यह धातु है। उसका अर्थ है- गमन रूप व्यापार व संयोग रूप फल। वहां इस वाक्य में कर्ता है छात्र और छात्र में गमन रूप व्यापार है अत: छात्र रूप जो कर्ता, उसकी वृत्ति व्यापार गमन रूप व्यापार है। उस प्रकार के गमन रूप व्यापार से संयोग उत्पन्न होता है। अत: छात्र रूप कर्ता की वृत्ति गमन रूप व्यापार से उत्पन्न होता है संयोग और उस प्रकार का संयोग ग्राम में है। अत: संयोग का आश्रय ग्राम है। अर्थात् छात्र रूप कर्ता की वृत्ति गमन रूप व्यापार को उत्पन्न करने वाला संयोग रूप फल का आश्रय ग्राम होता है और इस प्रकार 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' इस सूत्र से ग्राम की कारक संज्ञा होकर कर्म संज्ञा होती है। तदनन्तर 'कर्मणि द्वितीया' इस सूत्र से द्वितीया विभक्ति होती है। इससे 'छात्र: ग्रामं गच्छति' यह वाक्य सिद्ध होता है।

छात्र: ग्रामं त्यजति। यहां वाक्य में ग्राम कर्म है। वहीं अर्थ का समन्वय किया जाता है। वहां समन्वय से पूर्व यह ज्ञेय है कि प्रत्येक धातु के दो अर्थ होते हैं फल और व्यापार और भी व्यापार से फल उत्पन्न भी होता है। और व्यापार कर्तृवृत्ति कर्ता पर अश्रित होता है। इस प्रकार प्रकृत वाक्य में त्यज् यह धातु है। उसका अर्थ है- गमन रूप व्यापार व विभाग रूप फल। वहां इस वाक्य में कर्ता है छात्र और छात्र में गमन रूप व्यापार है अत: छात्र रूप जो कर्ता, उसकी वृत्ति व्यापार गमन रूप व्यापार है। उस प्रकार के गमन रूप व्यापार से विभाग उत्पन्न होता है। अत: छात्र रूप कर्ता की वृत्ति गमन रूप व्यापार से उत्पन्न होता है विभाग और उस प्रकार का विभाग ग्राम में है। अत: विभाग का आश्रय ग्राम है। अर्थात् छात्र रूप कर्ता की वृत्ति गमन रूप व्यापार को उत्पन्न करने वाला संयोग रूप फल का आश्रय ग्राम होता है। और इस प्रकार 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' इस सूत्र से ग्राम की कारक संज्ञा होकर कर्म संज्ञा होती है। तदनन्तर 'कर्मणि द्वितीया' इस सूत्र से द्वितीया विभक्ति होती है। इससे 'छात्र: ग्रामं त्यजति' यह वाक्य सिद्ध होता है।

ध्यान दें:

27.2 तथायुक्तं चानीप्सितम्।। (1.4.50)

सूत्रार्थ- कर्ता की वृत्ति व्यापार से उत्पन्न फल का आश्रयभूत द्वेष्य वा उदासीन कारकसंज्ञक होता हुआ कर्मसंज्ञक होता है।

सूत्रावतरण- 'चैत्रः ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति' इस प्रयोग में ग्राम कर्म है। और तृण भी कर्म है। वहां ग्राम की कर्म संज्ञा तो कर्तुरीप्सिततमं कर्म इस सूत्र से होती है यह हमने पढ़ा। किन्तु तृण की कर्म संज्ञा कर्तुरीप्सिततमं कर्म इस सूत्र से नहीं हो सकती है क्योंकि तृण अनीप्सित है। तो तृण की कर्म संज्ञा कैसे सम्भव है, और कौन से सूत्र से होती है यह प्रश्न मन में आता है। तब इस प्रश्न के समाधान के लिये भगवान् पाणिनि ने कर्म संज्ञा विधायक द्वितीय सूत्र को बनाया। और वह सूत्र 'तथायुक्तं चानीप्सितम्' यह है और उसका यहां व्याख्यान किया जाता है।

सूत्र व्याख्या- यह संज्ञा सूत्र है। यह सूत्र कारक संज्ञा व कर्म संज्ञा करता है। इस सूत्र में तीन पद हैं। तथायुक्तम् यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। च यह अव्ययपद है। अनीप्सितम् यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' इस सूत्र से कर्म इस प्रथमान्त पद की अनुवत्ति आती है। कारकम् इसका अधिकार यहां आता है। यहां तथायुक्तम् इसका कर्तृवृत्ति व्यापारजन्य फलाश्रय यह अर्थ है। अनीप्सितम् इसका द्वेष्य व उदासीन यह अर्थ है।

सूत्रार्थ विचार- तथायुक्त व अनीप्सत कारक कर्मसंज्ञक होता है यह वाक्य योजना है। वहां तथायुक्तम् इसका कर्ता की वृत्ति व्यापार द्वारा उत्पन्न फल का आश्रयः यह अर्थ है। अनीप्सितम् इसका द्वेष्य वा उदासीन अर्थ है। और इस तरह सूत्रार्थ होता है- कर्ता की वृत्ति व्यापार से उत्पन्न फल का आश्रयभूत द्वेष्य या उदासीन कारकसंज्ञक होते हुए कर्मसंज्ञक होता है।

उदाहरणम्-चैत्र- ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति। मैत्रः ओदनं भुञ्जानो विषं भुङ्क्ते।

सूत्रार्थ समन्वय- चैत्रः ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति। मैत्रः ओदनं भुञ्जानो विषं भुङ्क्ते। इन दोनों उदाहरणों के सूत्रार्थ का समन्वय किया जाता है।

चैत्रः ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति। यहां ग्राम की कर्म संज्ञा 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' इस सूत्र से होती है। और तृण की कर्मसंज्ञा प्रकृत सूत्र से होती है। और इस प्रकार तृण में इस लक्षण का समन्वय करना चाहिये। जैसा कि प्रकृत धातु स्पृशि धातु और उसका अर्थ तृणादि संयोग के अनुकूल हस्तसञ्चालनादिरूप व्यापार। वहां हस्तसञ्चालनादि व्यापारजन्य तृणादिसंयोगरूप फल, और उसका आश्रयभूत तृण है। और वह उदासीन होने के कारण अनीप्सित भी है। क्योंकि चैत्र अपनी इच्छा से तो तृण का स्पर्श नहीं करता है, अपितु ग्राम के प्रति गमन काल में मार्ग में विद्यमानतृणों के साथ अनायास स्पर्श हो जाता है। इसलिये चैत्र की ग्राम के प्रति गमन की इच्छा है न कि तृणों को स्पर्श करने में। अतः ग्राम तो ईप्सित है, किन्तु तृण अनीप्सित है। अतः तृणों पूर्व सूत्र से कर्म संज्ञा नहीं प्राप्त थी। इसलिये इस सूत्र से होती है यह भाव है। तदनन्तर 'कर्मणि द्वितीया' इस सूत्र से द्वितीया विभक्ति होती है। इससे चैत्रः ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति यह वाक्य सिद्ध होता है।

मैत्रः ओदनं भुञ्जानो विषं भुङ्क्ते। यहां ओदन की कर्म संज्ञा 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' इस सूत्र से होती है। और विष की कर्म संज्ञा प्रकृत सूत्र से होती है। और इस प्रकार विष में इस लक्षण का समन्वय करना चाहिये। जैसा कि प्रकृत धातु भुजिधातु और उसका अर्थ प्रधानभूतव्यापार गलबिल के नीचे संयोगानुकूल व्यापार व तत्प्रयोज्य फल गलबिल के निचले भाग से संयोग रूप फल, उसका आश्रयभूत विष है और वह उदासीन होने के कारण अनीप्सित भी है इसलिये इस सूत्र से कर्म संज्ञा होती है यह

ध्यान दें:

भाव है। तदनन्तर 'कर्मणि द्वितीया' इस सूत्र से द्वितीया विभक्ति होती है। इससे 'मैत्रः ओदनं भुञ्जानो विषं भुङ्क्ते' यह वाक्य सिद्ध होता है।

उपर्युक्त दोनों सूत्रों के अर्थ प्रकाशक पद्य नीचे हैं -

कर्ता निजक्रियाद्वारो यत्प्राप्तुं यतते क्वचित्।
तदेव कर्म बोद्धव्यं द्वितीया कर्मणि सदा॥

अनुक्ते कर्मणि भवेत् द्वितीया सा तु दृश्यते।
रामं रामौ च रामांश्च भजाम्यहमहर्निशम्॥

ग्रामं गच्छति सः भृत्यः मालां ग्रथ्नाति बालिका।
केशान् बध्नाति सा कन्या द्वितीयाऽत्रास्ति कर्मणि॥

ईप्सिताच्च द्वितीया स्यात् तथैवानीप्सितादपि।
क्रियया ईप्सितं कर्म तथैवानीप्सितं भवेत्॥

ओदनं दधि भुञ्जानो विषं भुङ्क्ते प्रयुज्यते।
ग्रामं गच्छन् जनः कोऽपि तृणं स्पृशति कथ्यते॥

20.3 अधिशीङ्स्थासां कर्म॥ (1.4.46)

सूत्रार्थ- अधिपूर्वक -शीङ् -धातु का, अधिपूर्वक स्थाधातु का अधिपूर्वक -आस् -धातु के प्रयोग में आधार कारकसंज्ञक होता हुआ कर्मसंज्ञक होता है।

सूत्रावतरण- 'हरिः वैकुण्ठम् अधिशेते' इत्यादि में शीङ् इस धातु के अकर्मक होने के कारण वैकुण्ठ की कर्म संज्ञा नहीं हो सकती है। और किस तरह प्रोक्त प्रयोग में वैकुण्ठ की कर्म संज्ञा होती है इस प्रश्न के समाधान के लिये भगवान् पाणिनि ने कर्म संज्ञा विधायक दूसरा सूत्र बनाया। और वह सूत्र 'अधिशीङ्स्थासां कर्म' है। उसका यहां व्याख्यान किया जाता है।

सूत्र व्याख्या- यह संज्ञा सूत्र है। यह सूत्र कारक संज्ञा व कर्म संज्ञा करता है। इस सूत्र में दो पद हैं। अधिशीङ्स्थासाम् यह षष्ठी बहुवचनान्त पद है। कर्म यह प्रथमान्त पद है। आधारोऽधिकरणम् इस सूत्र से आधार इस पद की यहां अनुवृत्ति आ रही है। कारकम् इसका अधिकार यहां आ रहा है। यहां अधिशीङ्स्थासाम् यह पद समस्त है, और इसका विग्रह होता है- शीङ् च स्था च आस् च इति शीङ्स्थासः। अधिः पूर्वः येषां ते अधिपूर्वाः। अधिपूर्वाः च ते शीङ्स्थासः इति अधिशीङ्स्थासः। तेषाम् अधिशीङ्स्थासाम्। द्वन्द्वादौ श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते इस न्याय से द्वन्द्व के आदि में श्रूयमाण अधिशब्द का प्रत्येक द्वन्द्व के अवयव के साथ सम्बन्ध होता है। और इस तरह इस पद का अर्थ होता है अधिपूर्वकशीङ्धातु, अधिपूर्वकस्थाधातु अधिपूर्वक-आस्-धातु।

सूत्रार्थ विचार- अधिपूर्वकशीङ्धातु का अधिपूर्वकस्थाधातु का अधिपूर्वक आस् धातु का आधार कारकसंज्ञक होता हुआ कर्मसंज्ञक होता है यह वाक्य योजना है। यहां प्रयोग में इसका इस पद का अध्याहार किया जाता है। और इस तरह सूत्रार्थ होता है अधिपूर्वकशीङ्धातु का, अधिपूर्वकस्थाधातु का अधिपूर्वक आस् धातु के प्रयोग में आधार कारकसंज्ञक होता हुआ कर्मसंज्ञक होता है।

ध्यान दें:

उदाहरण- हरिः वैकुण्ठम् अधिशेते। हरः कैलासम् अधितिष्ठति। इन्द्रः स्वर्गम् अध्यास्ते।

सूत्रार्थ समन्वय हरिः वैकुण्ठम् अधिशेते। इस वाक्य में वैकुण्ठ कर्म है। अतः वहीं सूत्रार्थ का समन्वय किया जाता है। जब उपसर्ग रहित शीङ् धातु का प्रयोग किया जाता है तब 'हरिः वैकुण्ठे शेते' यह प्रयोग होता है। क्योंकि जहां शयन किया जाता है वह शयन का आधार होता है। उससे 'आधारोऽधिकरणम्' इस सूत्र से उसकी अधिकरण संज्ञा होती है। तदनन्तर 'सप्तम्यधिकरणे च' इस सूत्र से वहां सप्तमी होती है। अत एव 'चैत्रः कटे शेते' इत्यादि प्रयोग होते हैं। किन्तु प्रकृत वाक्य में अधिपूर्वक शीङ् धातु का प्रयोग है। अतः शयन के आधार वैकुण्ठ की प्राप्त अधिकरणसंज्ञा को बाध कर 'अधिशीङ्स्थासां कर्म' इस सूत्र से कर्म संज्ञा होती है। और उससे वहां द्वितीया होती है। ततः 'हरिः वैकुण्ठम् अधिशेते' यह प्रयोगः सिद्ध होता है।

हरः कैलासम् अधितिष्ठति। इस वाक्य में कैलास कर्म है। अतः वहीं सूत्रार्थ का समन्वय किया जाता है। जब उपसर्ग रहित स्था धातु का प्रयोग किया जाता है तब 'हरः कैलासे तिष्ठति' यह प्रयोग बनता है। क्योंकि जहां निवास किया जाता है वह निवास का आधार होता है। उससे 'आधारोऽधिकरणम्' इस सूत्र से उसकी अधिकरण संज्ञा होती है। तदनन्तर 'सप्तम्यधिकरणे च' इस सूत्र से वहां सप्तमी होती है। अत एव 'चैत्रः कटे तिष्ठति' इत्यादि प्रयोग होते हैं। किन्तु प्रकृत वाक्य में अधिपूर्वक स्था धातु का प्रयोग है। अतः निवास के आधार कैलास की प्राप्त अधिकरण संज्ञा को बाध कर 'अधिशीङ्स्थासां कर्म' इस सूत्र से कर्म संज्ञा होती है। और उससे वहां द्वितीया होती है। ततः 'हरः कैलासमधितिष्ठति' यह प्रयोगः सिद्ध होता है।

इन्द्रः स्वर्गम् अध्यास्ते। इस वाक्य में स्वर्ग कर्म है। अतः वहीं सूत्रार्थ का समन्वय किया जाता है। जब उपसर्ग रहित आस् धातु का प्रयोग किया जाता है तब 'इन्द्रः स्वर्गे आस्ते' यह प्रयोग बनता है। क्योंकि जहां निवास किया जाता है वह निवास का आधार होता है। उससे 'आधारोऽधिकरणम्' इस सूत्र से उसकी अधिकरण संज्ञा होती है। तदनन्तर 'सप्तम्यधिकरणे च' इस सूत्र से वहां सप्तमी होती है। अत एव 'चैत्रः कटे आस्ते' इत्यादि प्रयोग होते हैं। किन्तु प्रकृत वाक्य में अधिपूर्वक आस् धातु का प्रयोग है। अतः निवास के आधार स्वर्ग की प्राप्त अधिकरण संज्ञा को बाध कर 'अधिशीङ्स्थासां कर्म' इस सूत्र से कर्म संज्ञा होती है। और उससे वहां द्वितीया होती है। ततः 'इन्द्रः स्वर्गमध्यास्ते' यह प्रयोगः सिद्ध होता है।

जैसा कि कारिकाएं हैं -

अधिपूर्वकशीङ्स्थासामाधारः कर्मसंज्ञकः।

अधिशेतेऽधितिष्ठति अध्यास्ते वैकुण्ठं हरिः॥

अधिपूर्वाणां शीङ्स्थासामाधारः कर्म तद्यथा।

अधिशेते वनं रामोऽध्यास्ते चाप्यधितिष्ठति॥

20.4 उपान्वध्याङ्वसः॥ (1.4.48)

सूत्रार्थ उपपूर्वक-वस् का अनुपूर्वक-वस् का अधिपूर्वक-वस् का आङ्पूर्वक-वस् के प्रयोग में जो आधार है वह कारकसंज्ञक होता हुआ कर्मसंज्ञक होता है।

सूत्रावतरण हरिः वैकुण्ठम् उपवस्ति इत्यादि में वस् इस धातु के अकर्मक होने के कारण वैकुण्ठ की कर्म संज्ञा नहीं हो सकती है। और किस तरह प्रोक्त प्रयोग में वैकुण्ठ की कर्म संज्ञा होती है इस प्रश्न

ध्यान दें:

के समाधान के लिये भगवान् पाणिनि ने कर्म संज्ञा विधायक दूसरा सूत्र बनाया। और वह सूत्र 'उपान्वध्याङ्वसः' है। उसका यहां व्याख्यान किया जाता है।

सूत्र व्याख्या यह संज्ञा सूत्र है। यह सूत्र कारक संज्ञा व कर्म संज्ञा करता है। इस सूत्र में एक ही पद है। उपान्वध्याङ्वसः यह षष्ठी एकवचनान्त पद है। यहां अधिशीङ्स्थासां कर्म इस सूत्र से कर्म इस पद की यहां अनुवृत्ति आ रही है। आधारोऽधिकरणम् इस सूत्र से आधार इस पद की अनुवृत्ति आ रही है। कारकम् इसका अधिकार यहां आ रहा है। यहां उपान्वध्याङ्वसः यह पद समस्त है और इसका विग्रह होता है- उपश्च अनुश्च आङ्च इति उपान्वध्याङः। उपान्वध्याङः पूर्वाः यस्य सः उपान्वध्याङ्पूर्वः। उपान्वध्याङ्पूर्वः चासौ वस् चेति उपान्वध्याङ्वस्। तस्य उपान्वध्याङ्वसः। द्वन्द्वादौ श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते इस न्याय से द्वन्द्व के आदि में श्रूयमाण वस् शब्द का प्रत्येक द्वन्द्व के अवयव के साथ सम्बन्ध होता है। और इस तरह इस पद का अर्थ होता है उपपूर्वकवस् धातु, अनुपूर्वकवस् धातु अधिपूर्वक वस् धातु आङपूर्वकवस् धातु।

सूत्रार्थ विचार- उपपूर्वकवस्, अनुपूर्वकवस्, अधिपूर्वकवस्, आङ्पूर्वकवस् धातु के आधार की कारक संज्ञा होते हुए कर्म संज्ञा होती है यह वाक्य योजना है। यहां प्रयोग में इसका इस पद का अध्याहार किया जाता है। और उससे सूत्रार्थ होता है उपपूर्वकवस्, अनुपूर्वकवस्, अधिपूर्वकवस् वा आङ्पूर्वकवस् धातु के प्रयोग में आधार कारकसंज्ञक व कर्मसंज्ञक होता है।

उदाहरण- हरिः वैकुण्ठम् उपवसति। हरः कैलासम् अनुवसति।

इन्द्रः स्वर्गम् अधिवसति। कृष्णः गोलोकम् अधिवसति।

सूत्रार्थ समन्वय हरिः वैकुण्ठम् उपवसति। इस वाक्य में वैकुण्ठ कर्म है। अतः वहीं सूत्रार्थ का समन्वय किया जाता है। जब उपसर्ग रहित वस् धातु का प्रयोग किया जाता है तब 'हरिः वैकुण्ठे वसति' यह प्रयोग होता है। क्योंकि जहां निवास किया जाता है वह निवास का आधार होता है। उससे 'आधारोऽधिकरणम्' इस सूत्र से उसकी अधिकरण संज्ञा होती है। तदनन्तर 'सप्तम्यधिकरणे च' इस सूत्र से वहां सप्तमी होती है। अत एव 'चैत्रः ग्रामे वसति' इत्यादि प्रयोग होते हैं। किन्तु प्रकृत वाक्य में उपपूर्वक वस् धातु का प्रयोग है। अतः निवास के आधार वैकुण्ठ की प्राप्त अधिकरण संज्ञा को बाध कर 'उपान्वध्याङ्वसः' इस सूत्र से कर्म संज्ञा होती है। और उससे वहां द्वितीया होती है। ततः 'हरिः वैकुण्ठम् उपवसति' यह प्रयोगः सिद्ध होता है।

हरः कैलासम् अनुवसति। इस वाक्य में कैलास कर्म है। अतः वहीं सूत्रार्थ का समन्वय किया जाता है। जब उपसर्ग रहित वस् धातु का प्रयोग किया जाता है तब 'हरः कैलासे वसति' यह प्रयोग बनता है। क्योंकि जहां निवास किया जाता है वह निवास का आधार होता है। उससे 'आधारोऽधिकरणम्' इस सूत्र से उसकी अधिकरण संज्ञा होती है। तदनन्तर 'सप्तम्यधिकरणे च' इस सूत्र से वहां सप्तमी होती है। अतएव 'चैत्रः ग्रामे वसति' इत्यादि प्रयोग होते हैं। किन्तु प्रकृत वाक्य में अनुपूर्वक वस् धातु का प्रयोग है। अतः निवास के आधार कैलास की प्राप्त अधिकरण संज्ञा को बाध कर 'उपान्वध्याङ्वसः' इस सूत्र से कर्म संज्ञा होती है और उससे वहां द्वितीया होती है। ततः 'हरः कैलासम् अनुवसति' यह प्रयोगः सिद्ध होता है।

इन्द्रः स्वर्गम् अधिवसति। इस वाक्य में स्वर्ग कर्म है। अतः वहीं सूत्रार्थ का समन्वय किया जाता है। जब उपसर्ग रहित वस् धातु का प्रयोग किया जाता है तब 'इन्द्रः स्वर्गे आस्ते' यह प्रयोग बनता है। क्योंकि जहां निवास किया जाता है वह निवास का आधार होता है। उससे 'आधारोऽधिकरणम्' इस सूत्र से उसकी अधिकरण संज्ञा होती है। तदनन्तर 'सप्तम्यधिकरणे च' इस सूत्र से वहां सप्तमी होती है। अतएव

ध्यान दें:

'चैत्रः ग्रामे वसति' इत्यादि प्रयोग होते हैं। किन्तु प्रकृत वाक्य में अधिपूर्वक वस् धातु का प्रयोग है। अतः निवास के आधार स्वर्ग की प्राप्त अधिकरण संज्ञा को बाध कर 'उपान्वध्याङ्वसः' इस सूत्र से कर्म संज्ञा होती है और उससे वहां द्वितीया होती है। ततः 'इन्द्रः स्वर्गम् अधिवसति' यह प्रयोगः सिद्ध होता है।

कृष्णः गोलोकम् आवसति। इस वाक्य में गोलोक कर्म है। अतः वहीं सूत्रार्थ का समन्वय किया जाता है। जब उपसर्ग रहित वस् धातु का प्रयोग किया जाता है तब 'कृष्णः गोलोके वसति' यह प्रयोग बनता है। क्योंकि जहां निवास किया जाता है वह निवास का आधार होता है। उससे 'आधारोऽधिकरणम्' इस सूत्र से उसकी अधिकरण संज्ञा होती है। तदनन्तर 'सप्तम्यधिकरणे च' इस सूत्र से वहां सप्तमी होती है। अतएव 'चैत्रः ग्रामे वसति' इत्यादि प्रयोग होते हैं। किन्तु प्रकृत वाक्य में आङ्पूर्वक वस् धातु का प्रयोग है। अतः निवास के आधार गोलोक की प्राप्त अधिकरण संज्ञा को बाध कर 'उपान्वध्याङ्वसः' इस सूत्र से कर्म संज्ञा होती है। और उससे वहां द्वितीया होती है। ततः 'कृष्णः गोलोकम् आवसति' यह प्रयोगः सिद्ध होता है।

20.5 कर्मणि द्वितीया।। (2.3.2)

सूत्रार्थ- अनुक्त कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है।

सूत्रावतरण- वहां प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी ये सात विभक्तियां होती हैं। वहां इनमें द्वितीया किस अर्थ में होती है यह प्रतिपादित करने के लिये 'कर्मणि द्वितीया' यह सूत्र भगवान् पाणिनि ने बनाया।

सूत्र व्याख्या- यह विधि सूत्र है। यह सूत्र द्वितीया का विधान करता है। इस सूत्र में दो पद हैं। कर्मणि यह सप्तमी एकवचनान्त पद है। द्वितीया यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। अनभिहिते यह अधिकार यहां आ रहा है। यहां कर्मणि इसका कर्म अर्थ में यह अर्थ है। द्वितीया इसका द्वितीया विभक्ति यह अर्थ है। अनभिहिते इसका अनुक्त यह अर्थ है। जिस अर्थ में कोई प्रत्ययादि होता है वह अर्थ उक्त होता है। और जिस अर्थ में कोई प्रत्ययादि नहीं होता है, वह अर्थ अनुक्त होता है और यहां किसके द्वारा अनुक्त है ऐसी जिज्ञासा होने पर कहा जाता है- तिङ, कृत, तद्धित और समास के द्वारा अनुक्त।

सूत्रार्थ विचार- अनभिहित कर्म में द्वितीया होती है यह वाक्य योजना है। यहां अनभिहिते इसका अर्थ अनुक्त यह है। कर्मणि इसका कर्म अर्थ में यह अर्थ है। द्वितीया इसका द्वितीया विभक्ति यह अर्थ है। अतः सूत्रार्थ होता है अनुक्त कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है।

उदाहरणम् चैत्रः ग्रामं गच्छति। मैत्रः तण्डुलं पचति। छात्रः पत्रं लिखति।

सूत्रार्थ समन्वय चैत्रः ग्रामं गच्छति। मैत्रः तण्डुलं पचति। छात्रः पत्रं लिखति। इन तीनों उदाहरणों में सूत्रार्थ का समन्वय किया जाता है।

चैत्रः ग्रामं गच्छति। इस वाक्य में ग्राम कर्म है। और वह अनुक्त है। क्योंकि गम् -धातु का कर्ता विधान हुआ है, अतः यहां तिङ के द्वारा कर्ता अभिहित है, उक्त है और कर्म अनुक्त है। अतः अनुक्त कर्म ग्राम में 'कर्मणि द्वितीया' इस सूत्र से द्वितीया विभक्ति होती है।

मैत्रः तण्डुलं पचति। इस वाक्य में तण्डुल कर्म है। और वह अनुक्त है। क्योंकि पच् -धातु के तिङ् का कर्ता में विधान हुआ है, अतः यहां तिङ के द्वारा कर्ता अभिहित है, उक्त है। और कर्म अनुक्त है। अतः अनुक्त कर्म तण्डुल में 'कर्मणि द्वितीया' इस सूत्र से द्वितीया विभक्ति होती है।

पाठ-20

द्वितीया कारक विभक्ति-1

ध्यान दें:

छात्रः पत्रं लिखति। इस वाक्य में पत्र कर्म है। और वह अनुक्त है। क्योंकि लिख्-धातु के तिङ् का कर्ता में विधान हुआ है, अतः यहां तिङ के द्वारा कर्ता अभिहित है, उक्त है। और कर्म अनुक्त है। अतः अनुक्त कर्म पत्र में 'कर्मणि द्वितीया' इस सूत्र से द्वितीया विभक्ति होती है।

चैत्रः ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति। इस वाक्य में पत्र कर्म है, और तृण भी कर्म है और वे दोनों ही अनुक्त हैं। क्योंकि स्पृश्-धातु के तिङ् का कर्ता में विधान हुआ है, अतः यहां तिङ के द्वारा कर्ता अभिहित है, उक्त है। और दोनों कर्म अनुक्त है। अतः अनुक्त कर्म ग्राम व तृण में 'कर्मणि द्वितीया' इस सूत्र से द्वितीया विभक्ति होती है।

रामः ओदनं भुञ्जानो विषं भुङ्क्ते। इस वाक्य में ओदन कर्म है, और विष भी कर्म है और वे दोनों ही अनुक्त हैं क्योंकि भुज्-धातु के तिङ् का कर्ता में विधान हुआ है, अतः यहां तिङ के द्वारा कर्ता अभिहित है, उक्त है। और दोनों कर्म अनुक्त है। अतः अनुक्त कर्म ओदन व विष में 'कर्मणि द्वितीया' इस सूत्र से द्वितीया विभक्ति होती है।

पाठ सार

धातु का अर्थ है फल और व्यापार। इस पाठ में 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' यह सूत्र, और 'तथायुक्तं चानीप्सितम्' यह सूत्र भी पढ़ा गया। वहां दोनों ही सूत्रों के द्वारा धातु के अर्थ फल के आश्रय की ही कर्म संज्ञा होती है। परन्तु 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' यह सूत्र उसी की कर्म संज्ञा करता है जो धातु का अर्थ फल का आश्रय भी हो और इच्छा का उद्देश्य भी हो। 'तथायुक्तं चानीप्सितम्' यह सूत्र तो जो धातु का अर्थ फल का आश्रय होता है और जो इच्छा का अनुद्देश्य होता है, उसकी कर्म संज्ञा करता है। यह दोनों सूत्रों के मध्य का भेद है। 'अधिशीङ्स्थासां कर्म' इस सूत्र से और 'उपान्वध्याङ्वसः' इस सूत्र से आधार की कर्म संज्ञा होती है। उसके बाद 'कर्मणि द्वितीया' यह सूत्र आता है और इस सूत्र से अनभिहित कर्म में द्वितीया विभक्ति की जाती है। कर्मणि द्वितीया इस सूत्र में कर्मपद से कर्मसंज्ञक का ग्रहण बोध्य है। अतः जब जिस किसी से भी सूत्र से किसी की कर्म संज्ञा होती है तब 'कर्मणि द्वितीया' इस सूत्र से कर्म वाचाक शब्द से द्वितीया विभक्ति की जाती है। अभिहित कर्म में तो प्रथमा विभक्ति ही होती है।

पाठगत प्रश्न

1. कर्तुरीप्सिततमं कर्म यह सूत्र क्या करता है?
2. तथायुक्तं चानीप्सितम् यह सूत्र क्या करता है?
3. ईप्सिततमम् इस पद का क्या अर्थ है?
4. तथायुक्तम् इस पद का क्या अर्थ है?
5. गम् इस धातु का क्या अर्थ है?
6. अनुक्त कर्म में कौन-सी विभक्ति होती है और उक्त कर्म में कौन-सी विभक्ति होती है?
7. शीङ्स्थासः इस पद में कौन-सा समास है और क्या विग्रह है?
8. उपान्वध्याङः इस पद में कौन-सा समास है और क्या विग्रह है?

9. उपान्ध्याङ्वसः इसका एक उदाहरण लिखिए?
10. अधिशीङ् -स्थासां कर्म इसका एक उदाहरण लिखिए।
11. हरः कैलासम् अनुवसति इस वाक्य में स्वर्ग की कर्म संज्ञा किस सूत्र से हुई?
12. इन्द्रः स्वर्गम् अध्यास्ते इस वाक्य में स्वर्ग की कर्म संज्ञा किस सूत्र से हुई?

पाठान्त प्रश्न

1. कर्तुरीप्सिततमं कर्म इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
2. तथायुक्तं चानीप्सितम् इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
3. अधिशीङ्स्थासां कर्म इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
4. उपान्वध्याङ्वसः इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
5. छात्रः ग्रामं गच्छति इस प्रयोग की सिद्धि कीजिए।
6. छात्रः ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति इस प्रयोग की सिद्धि कीजिए।
7. हरिः वैकुण्ठम् अधिशीते इस प्रयोग की सिद्धि कीजिए।
8. हरिः वैकुण्ठम् उपवसति इस प्रयोग की सिद्धि कीजिए।
9. कर्मणि द्वितीया इस सूत्र का व्याख्यान कीजिए।
10. हरिः वैकुण्ठम् आवसति इस प्रयोग की सिद्धि कीजिए।

पाठगत प्रश्नोत्तर

1. कर्तुरीप्सिततमं कर्म यह सूत्र कर्म संज्ञा करता है।
2. तथायुक्तं चानीप्सितम् यह सूत्र कर्म संज्ञा करता है।
3. ईप्सिततमम् इस पद का व्यापारजन्य फल का आश्रय यह अर्थ है।
4. तथायुक्तम् इस पद का कर्तृवृत्ति व्यापारजन्य फलाश्रय यह अर्थ है।
5. गम् इस धातु का गति यह अर्थ है।
6. अनुक्त कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। उक्त कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है।
7. शीङ्स्थासः इस पद में इतरेतरयोग द्वन्द्व समास है। और इसका विग्रह शीङ् च स्था च आस् इति इति शीङ्स्थासः।
8. उपान्वध्याङः इस पद में इतरेतरयोग द्वन्द्व समास है। और इसका विग्रह उपश्च अनुश्च आङ् च इति उपान्वध्याङः।
9. हरिः वैकुण्ठम् उपवसति। हरः कैलासम् अनुवसति। इन्द्रः स्वर्गम् अधिवसति। कृष्णः गोलोकम् आवसति।

ध्यान दें:

पाठ-20

द्वितीया कारक विभक्ति-1

ध्यान दें:

10. हरिः वैकुण्ठम् अधिशेते। हरः कैलासम् अधितिष्ठति। इन्द्रः स्वर्गम् अध्यास्ते।
11. उपान्ध्याङ्वसः।
12. अधिशीङ् -स्थासां कर्म।

ध्यान दें:

21

द्वितीया कारक विभक्ति-2

संस्कृत भाषा में छः कारक होते हैं। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण। इनमें कर्म क्या होता है यह प्रतिपादित करने के लिये भगवान् पाणिनि ने कुछ कर्म संज्ञा विधायक सूत्र बनाए। कुछ कर्म संज्ञा विधायक सूत्रों का व्याख्यान द्वितीय पाठ में कर दिया गया। अब यहां अकथितं च, गति बुद्धि प्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ इन दोनों सूत्रों की व्याख्या की जाती है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे-

- अकथितं च इस सूत्र के आशय को जान पाने में;
- द्विकर्मक धातुएं कौन-सी हैं जान पाने में;
- द्विकर्मक धातु युक्त वाक्यों का सही प्रयोग कर पाने में;
- द्विकर्मक धातुओं में गौण कर्म क्या है और प्रधान कर्म क्या है यह निर्णय कर पाने में;
- जब द्विकर्मक धातु से कर्म में प्रत्यय का विधान होता है तब कौन-सा कर्म उक्त होता है यह जान पाने में;
- ण्यन्तधातु वाले वाक्यों में कर्म संज्ञा किसकी होती है यह जान पाने में;
- गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ इसका सूत्रार्थ जान पाने में सक्षम होंगे

21.1 अकथितं च॥ (1.4.51)

सूत्रार्थ- अपादानत्वादि के विशेष रूप से अविवक्षित कारक दुह्यादि सोलह धातुओं के मुख्य कर्म के साथ सम्बद्ध कारकसंज्ञक होता हुआ कर्मसंज्ञक होता है।

सूत्रावतरण- संस्कृत भाषा में छः कारक होते हैं। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और

पाठ-21

द्वितीया कारक विभक्ति-2

ध्यान दें:

अधिकरण। इनमें से कोई भी कारक तत् तत् कारक से यदि अविवक्षित होता है वह कर्म कैसे होता है यह प्रतिपादित करने के लिये 'अकथितं च' यह सूत्र भगवान् पाणिनि ने बनाया।

सूत्र व्याख्या यह संज्ञा सूत्र है। यह सूत्र कारक संज्ञा व कर्म संज्ञा करता है। इस सूत्र में दो पद हैं। अकथितम् यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। च यह अव्यय पद है। कारकम् इसका अधिकार यहां आता है। अकथितम् इसका अविवक्षित यह अर्थ है।

सूत्रार्थ विचार अकथित कारक कर्मसंज्ञक होता है यह वाक्य योजना है। यहां अकथितम् इसका अविवक्षित यह अर्थ है। तब यह जिज्ञासा होती है कि किस रूप से अविवक्षित। तब प्रकरण वश यहां अपादानादि से विशेष रूप से अविवक्षित यह स्वीकार किया जाता है। फिर इस सूत्र से हर किसी की कर्म संज्ञा नहीं की जाती है, अपितु जो अविवक्षित है उसी की कर्म संज्ञा होती है और भी दुह् प्रपूरणे, टुयाचृ याच्ञायाम्, डुपचष् पाके, दण्ड दण्डनिपातने, रुधिरआवरणे, प्रच्छ् ज्ञीप्सायाम्, चिञ् चयने, ब्रुञ् व्यक्तायां वाचि, शासु अनुशिष्टौ, जि अभिभवे, मन्थ विलोडने, मुष स्तेये, णीञ् प्रापणे, हृञ् हरणे, कृष विलेखने, वह प्रापणे इन धतुओं व इनके अर्थों को कहने वाली धातुओं के मुख्य कर्म के साथ सम्बद्ध हों तो उसी की ही इस सूत्र से कर्म संज्ञा की जाती है। और इस तरह सूत्रार्थ प्रतिफलित होता है- अपादानत्वादि से विशेष रूप से अविवक्षित होता हुआ जो दुहादि सोलह धातुओं व उनके वाच्य के मुख्य कर्म से सम्बद्ध होता है वह भी कारक संज्ञक होता हुआ कर्म संज्ञक होता है।

यहां यह विशेष है- 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' इस सूत्र से जिसकी कर्म संज्ञा होती है वही मुख्य कर्म कहलाता है। 'अकथितं च' सूत्र से जिसकी कर्म संज्ञा होती है वह गौण कर्म कहलाता है। पुनः यहां यह भी जानना चाहिए- अविवक्षा दो प्रकार की होती है प्राप्ति पूर्विका और अप्राप्ति पूर्विका।

उदाहरण गोपः गां पयः दोग्धि। वामनः बलिं वसुधां याचते। विनीतः अविनीतं विनयं याचते। पाचकः तण्डुलान् ओदनं पचति। राजा गर्गान् शतं दण्डयति। गोपः व्रजं गाम् अवरुणद्धि। पथिकः माणवकं पन्थानं पृच्छति। बालकः वृक्षं फलानि अवचिनोति। गुरुः शिष्यं धर्मं ब्रुते। गुरुः शिष्यं धर्मं शास्ति। देवदत्तः यज्ञदत्तं शतं जयति। देवः क्षीरनिधिं सुधां मथ्नाति। चौरः देवदत्तं शतं मुष्णाति। गोपः ग्रामम् अजां नयति। गोपः ग्रामम् अजां हरति। गोपः ग्रामम् अजां कृषति। गोपः ग्रामम् अजां वहति।

सूत्रार्थ समन्वय गोपः गां पयः दोग्धि। यहां वाक्य में दुहिधातु का प्रयोग है। गोपः कर्ता है। पयः मुख्य कर्म है। गौः गौणकर्म है। यह वाक्य की स्थिति है। गौणकर्म ही इस सूत्र का लक्ष्य है। अतः वहीं सूत्रार्थ का समन्वय प्रस्तुत किया जाता है।

जैसा कि यहां वाक्य में दुहि धातु का विभागानुकूल व्यापार यह अर्थ है। और इस तरह विभागानुकूल व्यापार गोप में है अतः व्यापार का आश्रय होने के कारण वह कर्ता है। विभाग रूप फल पय में है। अतः फल का आश्रय होने के कारण उसकी 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' इस सूत्र से कर्म संज्ञा होती है। पुनः दोहन से पय का गाय से विभाग हो गया। विभाग का आश्रय होने के कारण गो की अपादान संज्ञा होती है। यहीं जब अपादानभूत गो की अपादानत्व के रूप में अविवक्षा की जाती है तब गो की अपादानत्वादि रूप में अविवक्षित होती है। और भी दुहिधातु का वाच्यक्रिया के मुख्य कर्म पयस के साथ गो सम्बद्ध भी है। अतः गो की 'अकथितं च' इस सूत्र से कर्म संज्ञा होती है। और कर्मत्व होने के कारण वहां द्वितीया होती है। उससे 'गोपः गां पयः दोग्धि' यह वाक्य सिद्ध होता है। और जब अपादानत्वादि रूप से अविवक्षा नहीं की जाती है तब अपादान संज्ञा ही होती है। ततः अपादान में पञ्चमी होती है और उससे 'गोपः गोः पयः दोग्धि' यह वाक्य भी सिद्ध होता है।

वामनः बलिं वसुधां याचते। यहां वाक्य में याचिधातु का प्रयोग है। वामन कर्ता है। वसुधा मुख्य

ध्यान दें:

कर्म है। बलि गौणकर्म है। यह वाक्य की स्थिति है। गौण कर्म ही इस सूत्र का लक्ष्य है। अत: वहीं सूत्रार्थ का समन्वय प्रस्तुत किया जाता है।

जैसा कि यहां वाक्य में याचि धातु का याचनानुकूल व्यापार यह अर्थ है। और इस तरह याचनानुकूल व्यापार वामन में है अत: व्यापार का आश्रय होने के कारण वह कर्ता है। याचना रूप फल वसुधा में है। अत: फल का आश्रय होने के कारण उसकी 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' इस सूत्र से कर्म संज्ञा होती है। बलि के तो कारक होने पर भी कोई विशिष्ट अपादानादि संज्ञा प्राप्त नहीं थी। अत: वहां 'नटस्य गाथां शृणोति' इस वाक्य की तरह षष्ठी प्राप्त थी। और इस तरह बलि का अपादानत्वादि विशेष रूप से सर्वथा अप्राप्ति पूर्विका अविवक्षा है। और इस प्रकार याचि धातु का वाच्य क्रिया के मुख्य कर्म वसुधा के साथ सम्बद्ध भी है। अत: गो की 'अकथितं च' इस सूत्र से कर्म संज्ञा होती है। और कर्मत्व होने के कारण वहां द्वितीया होती है। उससे 'वामन: बलिं वसुधां याचते' यह वाक्य सिद्ध होता है।

माता तण्डुलान् ओदनं पचति। यहां वाक्य में पचि धातु का प्रयोग है। माता कर्ता है। ओदनमु मुख्य कर्म है। तण्डुल गौण कर्म है। यह वाक्य की स्थिति है। गौण कर्म ही इस सूत्र का लक्ष्य है। अत: वहीं सूत्रार्थ का समन्वय प्रस्तुत किया जाता है।

तथाहि- यहां पचि धातु का पाकानुकूल व्यापार यह अर्थ है। इस तरह के व्यापार की आश्रय माता है। अत: वह कर्ता है। पाकरूप फल का आश्रय होने के कारण ओदन की 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' इस सूत्र से कर्म संज्ञा होती है। और तण्डुल ओदन के पाक में प्रकृष्ट रूप से उपकारक है। अत: 'साध कतमं करणम्' इस सूत्र से उसकी करण संज्ञा प्राप्त होती है। उसी की जब करणत्वादि विशेष रूप से अविवक्षा की जाती है तब वह करणत्वादि विशेष रूप से अविवक्षित होता है। और इस प्रकार पचिधातु वाच्य क्रिया का मुख्य कर्म के साथ सम्बन्ध भी है। अत: 'अकथितं च' इस सूत्र से तण्डुल की कर्म संज्ञा होती है। उससे वहां भी द्वितीया होती है। तत: 'माता तण्डुलान् ओदनं पचति' यह वाक्य सिद्ध होता है।

राजा गर्गान् शतं दण्डयति। यहां वाक्य में दण्ड धातु का प्रयोग है। राजा कर्ता है। शत मुख्य कर्म है। गर्ग गौण कर्म है। यह वाक्य की स्थिति है। गौण कर्म ही इस सूत्र का लक्ष्य है। अत: वहीं सूत्रार्थ का समन्वय प्रस्तुत किया जाता है।

तथाहि- यहां दण्ड धातु का ग्रहणानुकूल व्यापार यह अर्थ है। इस तरह के व्यापार का आश्रय राजा है। अत वह कर्ता है। ग्रहण रूप फल का आश्रय होने के कारण शत की 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' इस सूत्र से कर्म संज्ञा होती है। जब राजा गर्गों से सौ का आदान करता है तब गर्गों से सौ का विभाग भी होता है। अत: विभाग का आश्रय होने के कारण गर्गों की अपादान संज्ञा प्राप्त है। किन्तु जब अपादानत्व की अविवक्षा की जाती है तब वह अपादानत्व के रूप में अविवक्षित होता है। और इस प्रकार वे गर्ग शतरूप मुख्य कर्म के साथ सम्बन्ध भी है। अत: 'अकथितं च' इस सूत्र से गर्ग की कर्म संज्ञा होती है। उससे वहां भी द्वितीया होती है। तत: 'राजा गर्गान् शतं दण्डयति' यह वाक्य सिद्ध होता है।

गोप: व्रजं गाम् अवरुणद्धि। यहां वाक्य में रुधि धातु का प्रयोग है। गोप कर्ता है। गौ मुख्य कर्म है। व्रज गौण कर्म है। यह वाक्य की स्थिति है। गौण कर्म ही इस सूत्र का लक्ष्य है। अत: वहीं सूत्रार्थ का समन्वय प्रस्तुत किया जाता है।

तथाहि- यहां रुध्-धातु का निर्गम-प्रतिबन्धक चिरस्थित्यनुकूल बन्धनादिरूप व्यापार यह अर्थ है। इस तरह के व्यापार का आश्रय गोप है। अत: वह कर्ता है। गमन-प्रतिबन्धक चिरस्थित्यनुकूल बन्ध नादिरूप जो व्यापार उसके द्वारा उत्पन्न गमन का प्रतिबन्धक-चिरस्थिति रूप फल का आश्रय होने के

ध्यान दें:

कारण गो की 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' इस सूत्र से कर्म संज्ञा होती है। व्रज की तो कर्म के द्वारा फल का आश्रय होने के कारण अधिकरण संज्ञा प्राप्त है। किन्तु जब अधिकरणत्व के रूप में अविवक्षा की जाती है तब वह अधिकरणत्व के रूप से अविवक्षित होता है। और भी वह गोरूप मुख्य कर्म के साथ सम्बद्ध भी है। अत: व्रज की 'अकथितं च' इस प्रकृत सूत्र से कर्म संज्ञा होती है। उससे वहां भी द्वितीया होती है। तत: 'गोप: व्रजं गाम् अवरुणद्धि' यह वाक्य सिद्ध होता है।

पथिक: माणवकं पन्थानं पृच्छति। यहां वाक्य में पृच्छ धातु का प्रयोग है। पथिक कर्ता है। पन्था मुख्य कर्म है। माणवक गौण कर्म है। यह वाक्य की स्थिति है। गौण कर्म ही इस सूत्र का लक्ष्य है। अत: वहीं सूत्रार्थ का समन्वय प्रस्तुत किया जाता है।

तथाहि- यहां प्रच्छिधातु का जिज्ञासा का विषयभूत अर्थ ज्ञानानुकूल व्यापार यह अर्थ होता है। (पथिक की जो जिज्ञासा है उसका विषय मार्ग है। उस मार्ग के ज्ञान के अनुकूल व्यापार किस मार्ग से जाना है इस प्रकार प्रश्न रूप व्यापार है।) इस प्रकार के व्यापार का आश्रय पथिक है। अत: वह कर्ता है। जिज्ञासा के विषयभूत अर्थ ज्ञान रूप फल का आश्रय होने के कारण पथ की 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' इस सूत्र से कर्म संज्ञा होती है। माणवक के कारकत्व होने पर भी कोई विशिष्ट अपादानादि संज्ञा प्राप्त नहीं थी। अत: वहां नटस्य शृणोति की तरह षष्ठी प्राप्त है। और इस प्रकार माणवक की अपादानत्वादि विशेष रूप से सर्वथा अप्राप्ति पूर्विका अविवक्षा है। इस प्रकार माणवक पृच्छ-धातु से वाच्य क्रिया का मुख्य कर्म पथ के साथ सम्बन्ध भी है। अत: माणवक की 'अकथितं च' इस प्रकृत सूत्र से कर्म संज्ञा होकर 'कर्मणि द्वितीया' इस सूत्र से द्वितीया होती है। तत: माणवकं पन्थानं पृच्छति यह प्रयोग सिद्ध होता है।

बालक: वृक्षं फलानि अवचिनोति। यहां वाक्य में चिधातु का प्रयोग है। बालक कर्ता है। फल मुख्य कर्म है। वृक्ष गौणकर्म है। यह वाक्य की स्थिति है। गौणकर्म ही इस सूत्र का लक्ष्य है। अत: वहीं सूत्रार्थ का समन्वय प्रस्तुत किया जाता है।

तथाहि- यहां चि धातु का चयनानुकूल व्यापार यह अर्थ है। इस तरह के व्यापार का आश्रय बालक है। अत: वह कर्ता है। चयन रूप फल का आश्रय होने के कारण फल की 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' इस सूत्र से कर्म संज्ञा होती है। चयन से फल का वृक्ष से विभाग होता है। विभाग का आश्रय होने के कारण वृक्ष की अपादान संज्ञा प्राप्त थी। किन्तु जब अपादानत्व के रूप में अविवक्षा की जाती है तब अपादानत्व के रूप से अविवक्षित होता है। और भी वह फलस्वरूप मुख्य कर्म के साथ सम्बद्ध भी है। अत: वृक्ष की 'अकथितं च' इस प्रकृत सूत्र से कर्म संज्ञा हो कर 'कर्मणि द्वितीया' इस सूत्र से द्वितीया होती है। तत: 'बालक: वृक्षं फलानि अवचिनोति' यह प्रयोग सिद्ध होता है।

गुरु: शिष्यं धर्मं ब्रुते। यहां वाक्य में ब्रूञ्धातु का प्रयोग है। गुरु कर्ता है। धर्म मुख्य कर्म है। शिष्य गौण कर्म है। यह वाक्य की स्थिति है। गौण कर्म ही इस सूत्र का लक्ष्य है। अत: वहीं सूत्रार्थ का समन्वय प्रस्तुत किया जाता है।

तथाहि- यहां ब्रूञ्धातु का बोधनानुकूल व्यापार यह अर्थ है। इस तरह के व्यापार का आश्रय गुरु है। अत: वह कर्ता है। बोध रूप फल का आश्रय होने के कारण धर्म की 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' इस सूत्र से कर्म संज्ञा होती है। गुरु शिष्य को कर्म से धर्म के द्वारा सम्बद्ध करना चाहता है। अत: शिष्य की 'कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्' इस सूत्र से सम्प्रदान संज्ञा प्राप्त थी। किन्तु जब सम्प्रदानत्व के रूप में अविवक्षा की जाती है तब सम्प्रदानत्व के रूप से अविवक्षित होता है। और भी वह धर्म रूप मुख्य कर्म के साथ सम्बद्ध भी है। अत: शिष्य की 'अकथितं च' इस प्रकृत सूत्र से कर्म संज्ञा होकर 'कर्मणि द्वितीया' इस सूत्र से द्वितीया होती है। तत: 'गुरु: शिष्यं धर्मं ब्रुते' यह प्रयोग सिद्ध होता है।

ध्यान दें:

गुरुः शिष्यं धर्मं शास्ति। यहां वाक्य में शासु धातु का प्रयोग है। गुरु कर्ता है। धर्म मुख्य कर्म है। शिष्य गौण कर्म है। यह वाक्य की स्थिति है। गौण कर्म ही इस सूत्र का लक्ष्य है। अतः वहीं सूत्रार्थ का समन्वय प्रस्तुत किया जाता है।

तथाहि- यहां शासु धातु का शासनानुकूल व्यापार यह अर्थ है। इस तरह के व्यापार का आश्रय गुरु है। अतः वह कर्ता है। शासन रूप फल का आश्रय होने के कारण धर्म की 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' इस सूत्र से कर्म संज्ञा होती है। गुरु शिष्य को कर्म से धर्म के द्वारा सम्बद्ध करना चाहता है। अतः शिष्य की 'कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्' इस सूत्र से सम्प्रदान संज्ञा प्राप्त थी। किन्तु जब सम्प्रदानत्व के रूप में अविवक्षा की जाती है तब सम्प्रदानत्व के रूप से अविवक्षित होता है। और भी वह धर्म रूप मुख्य कर्म के साथ सम्बद्ध भी है। अतः शिष्य की 'अकथितं च' इस प्रकृत सूत्र से कर्म संज्ञा होकर 'कर्मणि द्वितीया' इस सूत्र से द्वितीया होती है। ततः 'गुरुः शिष्यं धर्मं शास्ति' यह प्रयोग सिद्ध होता है।

देवः क्षीरनिधिं सुधां मथ्नाति। यहां वाक्य में मन्थ धातु का प्रयोग है। देव कर्ता है। सुधा मुख्य कर्म है। क्षीरनिधि गौण कर्म है। यह वाक्य की स्थिति है। गौण कर्म ही इस सूत्र का लक्ष्य है। अतः वहीं सूत्रार्थ का समन्वय प्रस्तुत किया जाता है।

तथाहि- यहां मन्थ धातु का द्रवद्रव्यगतसार का उद्भावनानुकूल व्यापार यह अर्थ है। इस तरह के व्यापार का आश्रय देव है। अतः वह कर्ता है। द्रवद्रव्यगतसार का उद्भावनानुकूल व्यापार फल का आश्रय होने के कारण सुधा की 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' इस सूत्र से कर्म संज्ञा होती है। मन्थन से सुधा का क्षीरनिधि से विभाग होता है। विभाग का आश्रय होने के कारण क्षीरनिधि की अपादान संज्ञा प्राप्त थी। किन्तु जब अपादानत्व के रूप में अविवक्षा की जाती है तब अपादानत्व के रूप से अविवक्षित होता है। और भी वह सुधा रूप मुख्य कर्म के साथ सम्बद्ध भी है। अतः क्षीरनिधि की 'अकथितं च' इस प्रकृत सूत्र से कर्म संज्ञा होकर 'कर्मणि द्वितीया' इस सूत्र से द्वितीया होती है। ततः 'देवः क्षीरनिधिं सुधां मथ्नाति' यह प्रयोग सिद्ध होता है।

चौरः देवदत्तं शतं मुष्णाति। यहां वाक्य में मुष् धातु का प्रयोग है। चौर कर्ता है। शत मुख्य कर्म है। देवदत्त गौण कर्म है। यह वाक्य की स्थिति है। गौण कर्म ही इस सूत्र का लक्ष्य है। अतः वहीं सूत्रार्थ का समन्वय प्रस्तुत किया जाता है।

तथाहि- यहां मुष् धातु का हरणानुकूल व्यापार यह अर्थ है। इस तरह के व्यापार का आश्रय चौर है। अतः वह कर्ता है। हरणानुकूल व्यापार फल का आश्रय होने के कारण शत की 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' इस सूत्र से कर्म संज्ञा होती है। शत के विश्लेषण होने में देवदत्त की अवधित्वेन अपादान संज्ञा प्राप्त थी। किन्तु जब अपादानत्व के रूप में अविवक्षा की जाती है तब अपादानत्व के रूप से अविवक्षित होता है। और भी वह शत रूप मुख्य कर्म के साथ सम्बद्ध भी है। अतः देवदत्त की 'अकथितं च' इस प्रकृत सूत्र से कर्म संज्ञा होकर 'कर्मणि द्वितीया' इस सूत्र से द्वितीया होती है। ततः 'चौरः देवदत्तं शतं मुष्णाति' यह प्रयोग सिद्ध होता है।

गोपः ग्रामम् अजां नयति। यहां वाक्य में नी धातु का प्रयोग है। गोप कर्ता है। अजा मुख्य कर्म है। ग्राम गौण कर्म है। यह वाक्य की स्थिति है। गौण कर्म ही इस सूत्र का लक्ष्य है। अतः वहीं सूत्रार्थ का समन्वय प्रस्तुत किया जाता है।

तथाहि- यहां नीधातु का देशान्तर संयोगानुकूल व्यापार यह अर्थ है। इस तरह के व्यापार का आश्रय गोप है। अतः वह कर्ता है। संयोग रूप फल का आश्रय होने के कारण अजा की 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' इस सूत्र से कर्म संज्ञा होती है। ग्राम की तो कर्म के द्वारा फल का आश्रय होने के कारण अधिकरण

ध्यान दें:

संज्ञा प्राप्त थी। किन्तु जब अधिकरणत्व के रूप में अविवक्षा की जाती है तब अधिकरणत्व के रूप से अविवक्षित होता है। और भी वह अजा रूप मुख्य कर्म के साथ सम्बद्ध भी है। अत: ग्राम की 'अकथितं च' इस प्रकृत सूत्र से कर्म संज्ञा होकर 'कर्मणि द्वितीया' इस सूत्र से द्वितीया होती है। तत: 'गोप: ग्रामम् अजां नयति' यह प्रयोग सिद्ध होता है।

गोप: ग्रामम् अजां हरति। यहां वाक्य में हृञ् धातु का प्रयोग है। गोप कर्ता है। अजा मुख्य कर्म है। ग्राम गौण कर्म है। यह वाक्य की स्थिति है। गौण कर्म ही इस सूत्र का लक्ष्य है। अत: वहीं सूत्रार्थ का समन्वय प्रस्तुत किया जाता है।

तथाहि- यहां हृञ् धातु का हरणानुकूल व्यापार यह अर्थ है। इस तरह के व्यापार का आश्रय गोप है। अत: वह कर्ता है। हरण रूप फल का आश्रय होने के कारण अजा की 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' इस सूत्र से कर्म संज्ञा होती है। ग्राम की तो कर्म के द्वारा फल का आश्रय होने के कारण अधिकरण संज्ञा प्राप्त थी। किन्तु जब अधिकरणत्व के रूप में अविवक्षा की जाती है तब अधिकरणत्व के रूप से अविवक्षित होता है। और भी वह अजा रूप मुख्य कर्म के साथ सम्बद्ध भी है। अत: ग्राम की 'अकथितं च' इस प्रकृत सूत्र से कर्म संज्ञा होकर 'कर्मणि द्वितीया' इस सूत्र से द्वितीया होती है। तत: 'गोप: ग्रामम् अजां हरति' यह प्रयोग सिद्ध होता है।

गोप: ग्रामम् अजां कर्षति। यहां वाक्य में कृष धातु का प्रयोग है। गोप कर्ता है। अजा मुख्य कर्म है। ग्राम गौण कर्म है। यह वाक्य की स्थिति है। गौण कर्म ही इस सूत्र का लक्ष्य है। अत: वहीं सूत्रार्थ का समन्वय प्रस्तुत किया जाता है।

तथाहि- यहां कृष धातु का कर्षणानुकूल व्यापार यह अर्थ है। इस तरह के व्यापार का आश्रय गोप है। अत: वह कर्ता है। कर्षण रूप फल का आश्रय होने के कारण अजा की 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' इस सूत्र से कर्म संज्ञा होती है। ग्राम की तो कर्म के द्वारा फल का आश्रय होने के कारण अधिकरण संज्ञा प्राप्त थी। किन्तु जब अधिकरणत्व के रूप में अविवक्षा की जाती है तब अधिकरणत्व के रूप से अविवक्षित होता है। और भी वह अजा रूप मुख्य कर्म के साथ सम्बद्ध भी है। अत: ग्राम की 'अकथितं च' इस प्रकृत सूत्र से कर्म संज्ञा होकर 'कर्मणि द्वितीया' इस सूत्र से द्वितीया होती है। तत: 'गोप: ग्रामम् अजां कर्षति' यह प्रयोग सिद्ध होता है।

गोप: ग्रामम् अजां वहति। यहां वाक्य में वह धातु का प्रयोग है। गोप कर्ता है। अजा मुख्य कर्म है। ग्राम गौण कर्म है। यह वाक्य की स्थिति है। गौण कर्म ही इस सूत्र का लक्ष्य है। अत: वहीं सूत्रार्थ का समन्वय प्रस्तुत किया जाता है।

तथाहि- यहां कृष धातु का वहनानुकूल व्यापार यह अर्थ है। इस तरह के व्यापार का आश्रय गोप है। अत: वह कर्ता है। वहन रूप फल का आश्रय होने के कारण अजा की 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' इस सूत्र से कर्म संज्ञा होती है। ग्राम की तो कर्म के द्वारा फल का आश्रय होने के कारण अधिकरण संज्ञा प्राप्त थी। किन्तु जब अधिकरणत्व के रूप में अविवक्षा की जाती है तब अधिकरणत्व के रूप से अविवक्षित होता है। और भी वह अजा रूप मुख्य कर्म के साथ सम्बद्ध भी है। अत: ग्राम की 'अकथितं च' इस प्रकृत सूत्र से कर्म संज्ञा होकर 'कर्मणि द्वितीया' इस सूत्र से द्वितीया होती है। तत: 'गोप: ग्रामम् अजां वहति' यह प्रयोग सिद्ध होता है।

यहां यह विशेष है- एक कर्मक धातुओं के प्रयोगकाल में 'चैत्र: ग्रामं गच्छति' इत्यादि में जब कर्म में प्रत्यय किया जाता है तब कर्म के उक्त होने के कारण प्रथमा होती है। कर्ता के अनभिहित होने के कारण तृतीया होती है। तत: 'चैत्रेण ग्राम: गम्यते' इत्यादि प्रयोग बनते हैं। परन्तु 'गोप: गां पय: दोग्धि

ध्यान दें:

' इत्यादि में द्विकर्मक धातुओं के प्रयोग काल में यदि कर्म में प्रत्यय होगा तब यहां तो दो कर्म है तो दोनों कर्म के बीच कौन-सा कर्म उक्त होगा तो कहा जाता है। कर्म दो प्रकार का होता है गौण कर्म व प्रधान कर्म। जिसकी 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' इस सूत्र से कर्म संज्ञा होती है वह प्रधान कर्म कहलाता है। और जिसकी 'अकथितं च' इस सूत्र से कर्मसंज्ञा होती है वह गौण कर्म कहलाता है। और इस प्रकार दुह्, याच्, पच्, दण्ड्, रुद्, प्रच्छ, चिञ्, ब्रूञ्, शास्, जि, मथ्, मुष् इन बारह धातुओं के गौण कर्म में कर्म प्रत्यय होता है। और णीञ्, हृ, कृष्, वह् इन चार धातुओं के प्रधान कर्म में कर्म प्रत्यय होता है।

अर्थ निबन्धना इयं संज्ञा- इस सूत्र के व्याख्यान में सोलह धातुएं द्विकर्मक हैं ऐसा प्रदर्शित किया गया है। परन्तु जिन धातुओं का अर्थ इन सोलह धातुओं के समान है, उन धातुओं का द्विकर्मकत्व होता है। उससे 'बलिं वसुधां भिक्षते' इत्यादि प्रयोग सिद्ध होते हैं।

यहां इस तालिका में दुह् आदि बारह धातुओं के कर्ता व कर्म में प्रयोग प्रदर्शित हैं-

कर्ता में प्रयोग:	**कर्म में प्रयोग**
गोप: **गां** पय: दोग्धि	गोपेन **गौ:** पय: दुह्यते
वामन: **बलिं** वसुधां याचते।	वामनेन **बलि:** वसुधां याच्यते।
पाचक: **तण्डुलान्** ओदनं पचति	पाचकेन **तण्डुला:** ओदनं पच्यन्ते।
राजा **गर्गान्** शतं दण्डयति	राज्ञा **गर्गा:** शतं दण्ड्यन्ते
कृष्ण: **व्रजं** गाम् अवरुणद्धि	कृष्णेन **व्रज:** गाम् अवरुध्यते
पथिक: **माणवकं** पन्थानं पृच्छति	पथिकेन **माणवक:** पन्थानं पृच्छ्यते
जन: **वृक्षं** फलानि अवचिनोति	जनेन **वृक्ष:** फलानि अवचीयते
गुरु: **माणवकं** धर्मं ब्रूते	गुरुणा **माणवक:** धर्मम् उच्यते
गुरु: **माणवकं** धर्मं शास्ति	गुरुणा **माणवक:** धर्मं शिष्यते

यहां तालिका में नीहृ -कृष् व वह इन चार धातुओं के कर्ता व कर्म में प्रयोग प्रदर्शित है -

कर्तरि प्रयोग:	**कर्मणि प्रयोग:**
गोप: **अजां** ग्रामं नयति	गोपेन **अजा** ग्रामं नीयते
गोप: **अजां** ग्रामं हरति	गोपेन **अजा** ग्रामं ह्रियते
गोप: **अजां** ग्रामं कृषति	गोपेन **अजा** ग्रामं कृष्यते
गोप: **अजां** ग्रामं वहति	गोपेन **अजा** ग्रामं उह्यते

ध्यान दें:

21.2 गति बुद्धि प्रत्यवसानार्थ शब्द कर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ॥ (1.4.52)

सूत्रार्थ- गत्यर्थक बुद्ध्यर्थक प्रत्यवसानार्थक शब्द कर्मक और अकर्मक धातुओं के प्रयोग में अण्यन्त अवस्था में जो कर्ता है वह ण्यन्तावस्था में कर्म संज्ञक होता है।

सूत्रावतरण- संस्कृत भाषा में छः कारक हैं। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण। इनमें कर्म क्या होता है यह प्रतिपादित करने के लिये पाणिनि मुनि ने अनेक सूत्र बनाये उनमें यह सूत्र अन्यतम है।

सूत्र व्याख्या- यह संज्ञा सूत्र है। यह सूत्र कारक संज्ञा व कर्म संज्ञा करता है। इस सूत्र में चार पद हैं। गति बुद्धि प्रत्यवसानार्थ शब्द कर्माकर्मकाणाम् यह षष्ठी बहुवचनान्त पद है। अणिकर्ता यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। स यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। णौ यह सप्तमी बहुवचनान्त पद है। गति बुद्धि प्रत्यवसानार्थ शब्द कर्माकर्मकाणाम् यह पद समस्त है। गतिश्च बुद्धिश्च प्रत्यवसानञ्च इति गतिबुद्धिप्रत्यवसानानि, यहां इतरेतर योग द्वन्द्व समास है। गति बुद्धि प्रत्यवसानानि अर्थाः येषां ते गति बुद्धि प्रत्यवसानार्थाः, यहां बहुव्रीहि समास है। शब्दः कर्म येषां ते शब्दकर्माणः, यहां बहुव्रीहि समास है। न विद्यते कर्म येषां ते अकर्मकाः, यहां भी बहुव्रीहि समास है। गति बुद्धि प्रत्यवसानार्थाश्च शब्द कर्माणश्च अकर्मकाश्च इति गति बुद्धि प्रत्यवसानार्थशब्द कर्माकर्मकाः तेषां गति बुद्धि प्रत्यवसानार्थ शब्द कर्माकर्मकाणाम् इति यहां द्वन्द्व समास है। इस तरह पद का अर्थ होता है गत्यर्थक, ज्ञानार्थक, प्रत्यवसानार्थक शब्द कर्मक व अकर्मक। यहां प्रत्यवसान शब्द का अर्थ होता है भक्षण। अणिकर्ता यह पद भी समस्त है। न णिः इति अणिः, अणेः कर्ता इति अणिकर्ता, यहां नञ्तत्पुरुषगर्भ षष्ठी तत्पुरुष समास है।

सूत्रार्थ विचार- गत्यर्थक बुद्ध्यर्थक प्रत्यवसानार्थक शब्द कर्मक और अकर्मक धातुओं के प्रयोग में अण्यन्त अवस्था में जो कर्ता है वह ण्यन्तावस्था में कारक संज्ञक होता हुआ कर्म संज्ञक होता है। यहां अणिकर्ता इसका अर्थ है णिच् प्रत्यय के न होने पर जो कर्ता होता है वही अणिकर्ता कहलाता है। णौ इसका णिच् प्रत्यय के रहने पर यह अर्थ होता है। इस प्रकार सूत्रार्थ होता है गत्यर्थक बुद्ध्यर्थक प्रत्यवसानार्थक शब्द कर्मक और अकर्मक धातुओं के प्रयोग में अण्यन्त अवस्था में जो कर्ता है वह ण्यन्तावस्था में कारक संज्ञक होता हुआ कर्म संज्ञक होता है।

उदाहरण- माता बालं विद्यालयं गमयति। गुरुः शिष्यं वेदं वेदयति। माता शिशुं तण्डुलं भोजयति। गुरुः शिष्यं वेदं पाठयति। युवा वृद्धं स्थापयति।

सूत्रार्थ समन्वय- माता बालं विद्यालयं गमयति। यह गत्यर्थक धातु युक्त उदाहरण है। इस उदाहरण की सिद्धि इस तरह होती है- यहां 'बालः विद्यालयं गच्छति' यह वाक्य है। यहां अण्यन्त गमिधातु का प्रयोग है। और उसका संयोगानुकूल व्यापार यह अर्थ होता है। संयोगानुकूल व्यापार का आश्रय होने के कारण बाल कर्ता होता है। उसके उक्त होने के कारण प्रथमा होती है। संयोग रूप फल का आश्रय होने के कारण विद्यालय कर्म होता है। और उसके अनुक्त होने के कारण द्वितीया होती है। उससे 'बालः विद्यालयं गच्छति' यह प्रयोग बनता है। और यहां बाल अण्यन्त अवस्था का कर्ता है। अतः वह अणिकर्ता है। जब गम् -धातु से णिच् -प्रत्यय हो तब इस बाल की प्रकृत सूत्र से कर्म संज्ञा होती है। ततः बाल से द्वितीया होगी। तब 'माता बालं विद्यालयं गमयति' यह प्रयोग बनता है। अर्थात् बालक विद्यालय जाता है, उसको माता प्रेरित करती है इस प्रकार 'माता बालं विद्यालयं गमयति' यह प्रयोग सिद्ध होता है।

गुरुः शिष्यं वेदं वेदयति। यह ज्ञानार्थक धातु युक्त उदाहरण है। इस उदाहरण की सिद्धि इस तरह

ध्यान दें:

होती है- यहां 'शिष्यः वेदं वेत्ति' यह वाक्य है। यहां अण्यन्त विदिधातु का प्रयोग है। और उसका ज्ञानानुकूल व्यापार यह अर्थ होता है। ज्ञानानुकूल व्यापार का आश्रय होने के कारण शिष्य कर्ता होता है। उसके उक्त होने के कारण प्रथमा होती है। ज्ञान रूप फल का आश्रय होने के कारण वेद कर्म होता है। और उसके अनुक्त होने के कारण द्वितीया होती है। उससे 'शिष्यः वेदं वेत्ति' यह प्रयोग बनता है। और यहां शिष्य अण्यन्त अवस्था का कर्ता है। अतः वह अणिकर्ता है। जब विद् -धातु से णिच् -प्रत्यय हो तब इस शिष्य की प्रकृत सूत्र से कर्म संज्ञा होती है। ततः शिष्य से द्वितीया होगी। तब 'गुरुः शिष्यं वेदं वेदयति' यह प्रयोग बनता है। अर्थात् शिष्य वेद को जानता है उसको गुरु प्रेरित करता है इस प्रकार 'गुरुः शिष्यं वेदं वेदयति' यह प्रयोग सिद्ध होता है।

माता शिशुं तण्डुलं भोजयति। यह भोजनार्थक धातु युक्त उदाहरण है। इस उदाहरण की सिद्धि इस तरह होती है - यहां 'शिशुः ओदनं भुङ्क्ते' यह वाक्य है। यहां अण्यन्त भुजि धातु का प्रयोग है। और उसका गलबिल से निचले भाग से संयोगानुकूल व्यापार यह अर्थ होता है। गलबिलाधः संयोगानुकूल व्यापार का आश्रय होने के कारण शिशु कर्ता होता है। उसके उक्त होने के कारण प्रथमा होती है। गलबिलाधः संयोगानुकूल व्यापार का आश्रय होने के कारण ओदन कर्म होता है। और उसके अनुक्त होने के कारण द्वितीया होती है। उससे 'शिशुः ओदनं भुङ्क्ते' यह प्रयोग बनता है। और यहां शिशु अण्यन्त अवस्था का कर्ता है। अतः वह अणिकर्ता है। जब भुज-धातु से णिच्-प्रत्यय हो तब इस शिशु की प्रकृत सूत्र से कर्म संज्ञा होती है। ततः शिशु से द्वितीया होगी। तब 'माता शिशुम् तण्डुलं भोजयति' यह प्रयोग बनता है। अर्थात् शिशु ओदन खाता है उसको माता प्रेरित करती है इस प्रकार 'माता शिशुम् तण्डुलं भोजयति' यह प्रयोग सिद्ध होता है।

गुरुः शिष्यं वेदं पाठयति। यह शब्द कर्मक धातु युक्त उदाहरण है। इस उदाहरण की सिद्धि इस तरह होती है- यहां 'शिष्यः वेदं पठति' यह वाक्य है। यहां अण्यन्त पठधातु का प्रयोग है। और उसका ज्ञानानुकूल व्यापार यह अर्थ होता है। ज्ञानानुकूल व्यापार का आश्रय होने के कारण शिष्य कर्ता होता है। उसके उक्त होने के कारण प्रथमा होती है। ज्ञानानुकूल व्यापार का आश्रय होने के कारण वेद कर्म होता है। और उसके अनुक्त होने के कारण द्वितीया होती है। उससे 'शिष्यः वेदं पठति' यह प्रयोग बनता है। और यहां शिष्य अण्यन्त अवस्था का कर्ता है। अतः वह अणिकर्ता है। जब पठ्-धातु से णिच्-प्रत्यय हो तब इस शिष्य की प्रकृत सूत्र से कर्म संज्ञा होती है। ततः शिष्य से द्वितीया होगी। तब 'गुरुः शिष्यं वेदं पाठयति' यह प्रयोग बनता है। अर्थात् शिष्य वेद पढ़ता है उसको गुरु प्रेरित करता है इस प्रकार 'गुरुः शिष्यं वेदं पाठयति' यह प्रयोग सिद्ध होता है।

यहां यह जान लेना चाहिये- शब्द कर्म इस शब्द का अर्थ होता है- शब्द कर्म कारक है जिस धातु का वह धातु शब्द कर्मक है। जैसा कि प्रकृत उदाहरण में पठ्-धातु का कर्म वेद है। और वेद शब्द राशि विशेष ही है।

युवा वृद्धं स्थापयति। यह अकर्मक धातु युक्त उदाहरण है। इस उदाहरण की सिद्धि इस तरह होती है- यहां 'वृद्धः तिष्ठति' यह वाक्य है। यहां अण्यन्त स्थाधातु का प्रयोग है। और उसका स्थित्यनुकूल व्यापार यह अर्थ होता है। स्थित्यनुकूल व्यापार का आश्रय होने के कारण वृद्ध कर्ता होता है। उसके उक्त होने के कारण प्रथमा होती है। उससे 'वृद्धः तिष्ठति' यह प्रयोग बनता है। और यहां वृद्ध अण्यन्त अवस्था का कर्ता है। अतः वह अणिकर्ता है। जब स्था-धातु से णिच्-प्रत्यय हो तब इस वृद्ध की प्रकृत सूत्र से कर्म संज्ञा होती है। ततः वृद्ध से द्वितीया होगी। तब 'युवा वृद्धं स्थापयति' यह प्रयोग बनता है। अर्थात् वृद्ध बैठता है उसको युवा प्रेरित करता है इस प्रकार 'युवा वृद्धं स्थापयति' यह प्रयोग सिद्ध होता है।

यहां यह विशेष है- गत्यर्थक धातुओं ज्ञानार्थक धातुओं भक्षणार्थक धातुओं शब्द कर्मक धातुओं

पाठ-21

द्वितीया कारक विभक्ति-2

ध्यान दें:

व अकर्मक धातुओं के प्रयोग में ही प्रयोज्य के कर्ता की कर्मसंज्ञा 'गति बुद्धि प्रत्यवसानार्थ शब्द कर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ' इस सूत्र से की जाती है। अन्य धातुओं के प्रयोग में तो प्रयोज्य के कर्ता की कर्तृसंज्ञा ही होती है। उससे उनके प्रयोग काल में प्रयोज्यकर्तृवाचक शब्द से तृतीया विभक्ति होती है। जैसे 'चैत्रः मैत्रेण तण्डुलं पाचयति' इत्यादि समझने चाहिये।

यहां यह भी विशेष है- एककर्मक धातुओं के प्रयोग काल में 'चैत्रः मैत्रेण तण्डुलं पाचयति' इत्यादि में जब कर्म में प्रत्यय किया जाता है तब कर्म के उक्त होने के कारण प्रथमा होती है। कर्ता के अनभिहित होने के कारण तृतीया होती है। ततः 'चैत्रेण मैत्रेण तण्डुलः पच्यते' इत्यादि प्रयोग बनते हैं। परन्तु 'माता बालकं विद्यालयं गमयति' इत्यादि द्विकर्मक धातुओं के प्रयोग काल में यदि कर्म में प्रत्यय होगा और जब दो कर्म होते हैं तो दोनों के मध्य कौन-सा कर्म उक्त होगा तो कहा जाता है। कर्म दो प्रकार का होता है गौण कर्म व प्रधान कर्म। जिसकी 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' इस सूत्र से कर्म संज्ञा होती है वह प्रधान कर्म कहलाता है। और जिसकी गति बुद्धि प्रत्यवसानार्थ शब्द कर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ इस सूत्र से कर्म संज्ञा होती है वह गौण कर्म कहलाता है। और इस प्रकार ज्ञानार्थक धातुओं भक्षणार्थक धातुओं व शब्द कर्मक धातुओं के प्रयोग काल में स्वेच्छया गौण कर्म में वा प्रधान कर्म में कर्म प्रत्यय होते हैं। अकर्मक धातुओं या गत्यर्थक धातुओं के प्रयोग काल में गौण कर्म में कर्म प्रत्यय होते हैं।

जैसा कि कारिका है -

बुद्धिभक्षार्थयोः शब्दकर्मणां च निजेच्छया।
प्रयोज्यकर्मण्यन्येषां ण्यन्तानां लादयो मताः॥

नीचे सारणी में सूत्रोक्त धातुओं के कर्ता व कर्म में वाक्य प्रदर्शित हैं -

कर्ता में प्रयोग	कर्म में प्रयोग
गुरुः शिष्यं वेदं वेदयति	गुरुणा शिष्यः वेदं वेद्यते / गुरुणा शिष्यं वेदः वेद्यते
माता शिशुं तण्डुलं भोजयति	मात्रा शिशुः तण्डुलं भोज्यते / मात्रा शिशुं तण्डुलः भोज्यते
गुरुः शिष्यं वेदं पाठयति	गुरुणा शिष्यः वेदं पाठ्यते / गुरुणा शिष्यं वेदः पाठ्यते
युवा वृद्धं स्थापयति	यूना वृद्धः स्थाप्यते
माता बालं विद्यालयं गमयति	मात्रा बालः विद्यालयं गम्यते

पाठ सार

इस पाठ में 'अकथितं च' इस सूत्र की व्याख्या की गई है। इस सूत्र से अपादानत्वादि विशेष रूप से अविवक्षित कारक की कर्म संज्ञा की जाती है। किन्तु यह सूत्र सर्वत्र प्रवर्तित नहीं होता है। वह केवल सोलह धातुओं के प्रयोग में और उसके तुल्यार्थक धातुओं के प्रयोग में ही प्रवर्तित होता है। इस सूत्र से जिसकी कर्म संज्ञा होती है वह गौण कर्म या अविवक्षित कर्म कहलाता है। यदि अपादानादि रूप से विवक्षा होगी तो कर्म संज्ञा नहीं होती है, अपादानादि संज्ञाएं ही होती हैं।

उसके बाद 'गति बुद्धि प्रत्यवसानार्थ शब्द कर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ' इस सूत्र की व्याख्या की गई है। इस सूत्र से प्रयोज्य के कर्ता की कर्म संज्ञा की जाती है। किन्तु यह सूत्र भी सर्वत्र प्रवर्तित

नहीं होता है, अपितु गत्यर्थक ज्ञानार्थ भक्षणार्थक शब्द कर्मक और अकर्मक धातुओं प्रयोग काल में ही प्रवृत्त होता है। इस सूत्र से जिसकी कर्म संज्ञा होती है वह भी गौण कर्म या अविवक्षित कर्म कहलाता है। अन्य धातुओं के प्रयोग में तो प्रयोज्य की कर्तृ संज्ञा ही होती है।

इस तरह यदि दोनों में कर्म में प्रत्यय का विधान होता है तब कौन-सा कर्म उक्त होता है यह विषय भी सोदाहरण निरूपित किया गया है।

पाठगत प्रश्न

1. अकथितं च यह सूत्र क्या करता है?
2. अकथितम् इस पद का क्या अर्थ है?
3. प्रत्यवसानम् इसका क्या अर्थ है?
4. शब्द कर्मा यहां कौन-सा समास है?
5. अकर्मकाः इस पद में कौन-सा समास है?
6. गति बुद्धि प्रत्यवसानार्थाः यहां क्या समास है, और विग्रह क्या होगा?
7. दुह्यादि धातुओं के किस कर्म में कर्म प्रत्यय होता है?
8. नी धातु के किस कर्म में कर्म प्रत्यय होता है?
9. गौण कर्म क्या होता है?
10. प्रधान कर्म क्या होता है?

पाठान्त प्रश्न

1. अकथितं च इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
2. गति बुद्धि प्रत्यवसानार्थ शब्द कर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ इस सूत्र का व्याख्यान करें।
3. गोपः गां पयः दोग्धि इस वाक्य की सिद्धि कीजिए।
4. माता बालं विद्यालयं गमयति इस वाक्य की सिद्धि कीजिए।
5. ''गुरुः शिष्यं धर्मं ब्रुते'' इस वाक्य की सिद्धि प्रक्रिया लिखिए।
6. 'युवा वृद्धं स्थापयति' इस वाक्य की सिद्धि प्रक्रिया लिखिए।
7. 'गोपः अजां ग्रामं नयति' इस वाक्य की सिद्धि प्रक्रिया लिखिए।
8. द्विकर्मक धातुओं के प्रयोग में कर्मवाच्य में क्या व्यवस्था होती है लिखिए।

ध्यान दें:

पाठ-21

द्वितीया कारक विभक्ति-2

ध्यान दें:

पाठगत प्रश्नोत्तर

1. अकथितं च यह सूत्र कर्म संज्ञा करता है।
2. अकथितम् इस पद का अविवक्षित यह अर्थ है।
3. प्रत्यवसानम् इसका भक्षण यह अर्थ है।
4. शब्द कर्मा यहां बहुव्रीहि समास है। और उसका विग्रह यह है -शब्दः कर्म यस्य स शब्द कर्मा।
5. अकर्मकाः इस पद में बहुव्रीहि समास है। और उसका विग्रह यह है- न विद्यते कर्म येषां ते अकर्मकाः।
6. यहां द्वन्द्व गर्भ बहुव्रीहि समास है। और उसका विग्रह गतिश्च बुद्धिश्च प्रत्यवसानञ्च इति गति बुद्धि प्रत्यवसानानि। गति बुद्धि प्रत्यवसानानि अर्थाः येषां ते गति बुद्धि प्रत्यवसानार्थाः है।
7. दुह्यादि धातुओं के गौण कर्म में कर्म प्रत्यय होता है।
8. नी धातु के प्रधान कर्म में कर्म प्रत्यय होता है।
9. अकथितं च इस सूत्र से और गति बुद्धि प्रत्यवसानार्थ शब्द कर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ इन सूत्रों से जिसकी कर्म संज्ञा होती है वह गौण कर्म कहलाता है।
10. कर्तुरीप्सिततमं कर्म इस सूत्र से जिसकी कर्म संज्ञा होती है वह प्रधान कर्म होता है।

ध्यान दें:

22

कारक विभक्ति-तृतीया व चतुर्थी

संस्कृत भाषा में छः कारक होते हैं। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण। पूर्व पाठों में हमने कर्म कारक के विषय में पढ़ा। इस पाठ में कर्तृ कारक के विषय में, करण कारक के विषय में सम्प्रदान कारक के विषय में विवेचन किया जाता है। कर्ता, करण वा सम्प्रदान में कौन-सी विभक्ति होती है यह प्रस्तुत किया जाता है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे-

- कर्तृ संज्ञा किसकी वा करण संज्ञा किसकी होती है यह जान पाने में;
- सम्प्रदान संज्ञा किसकी होती है यह जान पाने में;
- वाक्यों में कौन कर्ता क्या करण व क्या सम्प्रदान है यह जान पाने मे;
- वाक्य रचना काल में कर्तृ तृतीया का व करण तृतीया का सम्यक् व्यवहार जान पाने में;
- वाक्य रचना काल में सम्प्रदान चतुर्थी का सम्यक् व्यवहार जान पाने में;

22.1 स्वतन्त्रः कर्ता॥ (1.4.54)

सूत्रार्थ- धात्वर्थ व्यापार का आश्रय कारकसंज्ञक होता हुआ कर्तृसंज्ञक होता है।

सूत्रावतरण- संस्कृत भाषा में छः कारक होते हैं। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण। इनमें कर्ता क्या होता है यह प्रतिपादित करने के लिये 'स्वतन्त्रः कर्ता' यह सूत्र भगवान् पाणिनि ने बनाया।

सूत्र व्याख्या- यह संज्ञा सूत्र है। यह सूत्र कारक संज्ञा व कर्तृ संज्ञा करता है। इस सूत्र में दो पद हैं। स्वतन्त्रः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। कर्ता यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। कारक इसका अधिकार यहां आता है। और उसका कारकम् यह अर्थ है। यहां स्वतन्त्र इस पद का धात्वर्थ व्यापार का आश्रय यह अर्थ है।

ध्यान दें:

स्वतन्त्र कारकसंज्ञक होता हुआ कर्तृसंज्ञक होता है यह वाक्य योजना है। स्वतन्त्र इसका धातु के वाच्य व्यापार का आश्रय यह अर्थ है। इस प्रकार सूत्रार्थ होता है धात्वर्थ व्यापार का आश्रय कारकसंज्ञक होता हुआ कर्तृसंज्ञक होता है।

उदाहरणम्- चैत्रेण गम्यते। मैत्रेण पच्यते। छात्रेण लिख्यते।

सूत्रार्थ समन्वय- चैत्रेण गम्यते। इस वाक्य में चैत्र कर्ता है। वहां सूत्रार्थ का समन्वय किया जाता है। जैसा कि- इस वाक्य में गम् यह धातु है। उसका अर्थ है गमन रूप व्यापार। गमन का आश्रय वही होता है, जो गमन करता है। प्रकृत वाक्य के अनुसार चैत्र गमन करता है, अत: गमन का आश्रय चैत्र होता है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि धात्वर्थ व्यापार का आश्रय चैत्र है। अत: चैत्र स्वतन्त्र है। अत: स्वतन्त्र: कर्ता इस सूत्र से चैत्र की कारक संज्ञा होती है और कर्तृ संज्ञा भी होती है।

मैत्रेण पच्यते। इस वाक्य में मैत्र कर्ता है। वहां सूत्रार्थ का समन्वय किया जाता है। जैसा कि- इस वाक्य में पच् यह धातु है। उसका अर्थ है पचन रूप व्यापार। पचन का आश्रय वही होता है, जो पचन करता है। प्रकृत वाक्य के अनुसार मैत्र पचन करता है, अत: पचन का आश्रय मैत्र होता है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि धात्वर्थ व्यापार का आश्रय मैत्र है। अत: मैत्र स्वतन्त्र है। अत: स्वतन्त्र: कर्ता इस सूत्र से मैत्र की कारक संज्ञा होती है और कर्तृ संज्ञा भी होती है।

छात्रेण लिख्यते। इस वाक्य में छात्र कर्ता है। वहां सूत्रार्थ का समन्वय किया जाता है। जैसा कि - इस वाक्य में लिख् यह धातु है। उसका अर्थ है लेखन रूप व्यापार। लेखन का आश्रय वही होता है, जो लेखन करता है। प्रकृत वाक्य के अनुसार छात्र लेखन करता है, अत: लेखन का आश्रय छात्र होता है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि धात्वर्थ व्यापार का आश्रय छात्र है। अत: छात्र स्वतन्त्र है। अत: स्वतन्त्र: कर्ता इस सूत्र से छात्र की कारक संज्ञा होती है और कर्तृ संज्ञा भी होती है।

29.2 साधकतमं करणम्॥ (1.4.42)

सूत्रार्थ:- क्रिया का प्रकृष्ट उपकारक कारकसंज्ञक होता हुआ करणसंज्ञक होता है।

सूत्रावतरण- छ: कारकों में करण क्या होता है यह प्रतिपादित करने के लिये 'साधकतमं करणम्' इस सूत्र को भगवान् पाणिनि ने बनाया।

सूत्र व्याख्या- यह संज्ञा सूत्र है। यह सूत्र कारक संज्ञा व करण संज्ञा करता है। इस सूत्र में दो पद हैं। साधकतमम् यह प्रथमा एकवचनान्तपद है। करणम् यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। कारकम् इसका अधिकार यहां आता है। साधकतम कारकसंज्ञक होता हुआ करणसंज्ञक होता है यह वाक्य योजना बनती है। यहां साधकतमम् इस पद का प्रकृष्टोपकारक यह अर्थ है। और इस प्रकार सूत्रार्थ होता है- प्रकृष्टोपकारक कारकसंज्ञक होता हुआ करणसंज्ञक होता है। यहां जिज्ञासा होती है कि किसका प्रकृष्टोपकारक? तो उसका उत्तर यह है कि क्रिया का प्रकृष्टोपकारक। इस तरह निष्कर्ष यह निकलता है कि- क्रिया का प्रकृष्टोपकारक कारकसंज्ञक होता हुआ करणसंज्ञक होता है। क्रिया के फल की निष्पत्ति जिस व्यापार के बाद होती है वह यहां विवक्षित है और वही प्रकृष्टोपकारक कहलाता है।

उदाहरण - चैत्र: यानेन ग्रामं गच्छति। मैत्र: अग्निना तण्डुलं पचति। छात्र: लेखन्या प्रबन्धं लिखति।

सूत्रार्थ समन्वय- चैत्र: यानेन ग्रामं गच्छति। इस वाक्य में यान करण है। अत: वहां सूत्रार्थ का समन्वय किया जाता है, और यहां गमनरूप क्रिया है। उससे उत्पन्न फल होता है चैत्र का ग्राम के साथ

ध्यान दें:

संयोग रूप और उसकी निष्पत्ति यान के व्यापार के अनन्तर विवक्षित है। अत: यान प्रकृष्टोपकारक है। अत: यान साधकतम है। अत: उसकी 'साधकतमं करणम्' इस सूत्र से कारक संज्ञा होती है और तदनन्तर करण संज्ञा होती है।

मैत्र: अग्निना तण्डुलं पचति। इस वाक्य में अग्नि करण है। अत: वहां सूत्रार्थ का समन्वय किया जाता है, और यहां पचनरूप क्रिया है। उससे उत्पन्न फल होता है तण्डुलों का पाक, मृदुत्व। वही मृदुत्व विक्लित्ति कहलाता है, और उस फल की निष्पत्ति अग्नि के ज्वलनरूप व्यापार के अनन्तर होती है यह विवक्षित है। अत: अग्नि प्रकृष्टोपकारक है। अत: अग्नि साधकतम है। अत: उसकी 'साधकतमं करणम्' इस सूत्र से कारक संज्ञा होती है और तदनन्तर करण संज्ञा होती है।

छात्र: लेखन्या प्रबन्धं लिखति। इस वाक्य में लेखनी करण है। अत: वहां सूत्रार्थ का समन्वय किया जाता है, और यहां लेखनरूप क्रिया है और हस्तचलनादि रूप व्यापार है उससे उत्पन्न फल होता है अक्षरों का विन्यास, और उस फल की निष्पत्ति लेखनी के व्यापार के अनन्तर विवक्षित है। अत: लेखनी प्रकृष्टोपकारिका है। अत: लेखनी साधकतमा है। अत: उसकी 'साधकतमं करणम्' इस सूत्र से कारक संज्ञा होती है और तदनन्तर करण संज्ञा होती है।

22.3 कर्तृकरणयोस्तृतीया।। (2.3.18)

सूत्रार्थ- अनुक्त कर्ता में तृतीया विभक्ति होती है और अनुक्त करण में तृतीया विभक्ति होती है।

सूत्रावतरण- वहां प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी व सप्तमी ये सात विभक्तियां होती हैं। इनमें तृतीया किस अर्थ में होती है यह प्रतिपादित करने के लिये 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' इस सूत्र की रचना भगवान् पाणिनि ने की।

सूत्र व्याख्या- यह विधि सूत्र है। यह सूत्र तृतीया विभक्ति का विधान करता है। इस सूत्र में दो पद हैं। कर्तृकरणयो: यह सप्तमी द्विवचनान्तपद है। तृतीया यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। अनभिहिते इसका अधिकार यहां आता है। कर्तृकरणयो: यहां इतरेतरयोग द्वन्द्व समास है। इसका विग्रह इस तरह होता है- कर्ता च करणं च इति कर्तृकरणे, तयो: कर्तृकरणयो:। अनभिहित कर्ता और करण में तृतीया विभक्ति होती है। यह वाक्य योजना है। यहां कर्तृकरणयो: इसका कर्ता और करण में यह अर्थ होता है। अनभिहिते इसका अनुक्त में यह अर्थ होता है। प्रकार सूत्रार्थ होता है- अनुक्त कर्ता व करण में तृतीया विभक्ति होती है।

कर्तृ-तृतीया का उदाहरण- चैत्रेण ग्राम: गम्यते। मैत्रेण तण्डुल: पच्यते। छात्रेण प्रबन्ध: लिख्यते।

करण-तृतीया का उदाहरण- चैत्र: यानेन ग्रामं गच्छति। मैत्र: अग्निना तण्डुलं पचति। छात्र: लेखन्या प्रबन्धं लिखति।

कर्तृ-तृतीया के उदाहरणों में सूत्रार्थ समन्वय- चैत्रेण ग्राम: गम्यते। इस वाक्य में चैत्र कर्ता है और वह अनुक्त है क्योंकि यह कर्म में प्रयोग है। कारण यह है कि 'ल: कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्य:' इस सूत्र से गम् धातु की विवक्षा से कर्म में लकार का प्रयोग हुआ है। उसके स्थान पर तिङ् भी कर्म में ही हुआ है। और इस प्रकार कर्म में प्रयोग होने पर कर्म उक्त होता है, कर्ता अनुक्त होता है। इस प्रकार अनुक्त कर्ता चैत्र में 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' इस सूत्र से तृतीया होती है और उक्त कर्ता में प्रथमा होती है। इस प्रकार 'चैत्रेण ग्राम: गम्यते' यह वाक्य सिद्ध होता है।

मैत्रेण तण्डुल: पच्यते। इस वाक्य में मैत्र कर्ता है और वह अनुक्त है क्योंकि यह कर्म में प्रयोग

ध्यान दें:

है। कारण यह है कि 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' इस सूत्र से पच् धातु की विवक्षा से कर्म में लकार का प्रयोग हुआ है। उसके स्थान पर तिङ् भी कर्म में ही हुआ है। और इस प्रकार कर्म में प्रयोग होने पर कर्म उक्त होता है, कर्ता अनुक्त होता है। इस प्रकार अनुक्त कर्ता मैत्र में 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' इस सूत्र से तृतीया होती है और उक्त कर्ता में प्रथमा होती है। इस प्रकार 'मैत्रेण तण्डुलः पच्यते' यह वाक्य सिद्ध होता है।

छात्रेण प्रबन्धः लिख्यते। इस वाक्य में छात्र कर्ता है और वह अनुक्त है क्योंकि यह कर्म में प्रयोग है। कारण यह है कि 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' इस सूत्र से लिख् धातु की विवक्षा से कर्म में लकार का प्रयोग हुआ है। उसके स्थान पर तिङ् भी कर्म में ही हुआ है। और इस प्रकार कर्म में प्रयोग होने पर कर्म उक्त होता है, कर्ता अनुक्त होता है। इस प्रकार अनुक्त कर्ता छात्र में 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' इस सूत्र से तृतीया होती है और उक्त कर्ता में प्रथमा होती है। इस प्रकार 'छात्रेण प्रबन्धः लिख्यते' यह वाक्य सिद्ध होता है।

करण-तृतीया के उदाहरणों में सूत्रार्थ समन्वय-

चैत्रः यानेन ग्रामं गच्छति। इस वाक्य में यान करण है और वह अनुक्त है क्योंकि यह कर्ता में प्रयोग है। कारण यह है कि 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' इस सूत्र से गम् धातु की विवक्षा से कर्ता में लकार का प्रयोग हुआ है। उसके स्थान पर तिङ् भी कर्ता में ही हुआ है। और इस प्रकार कर्ता में प्रयोग होने पर कर्ता उक्त होता है, कर्म अनुक्त होता है। करणादि अनुक्त होते हैं। इस प्रकार अनुक्त करण में 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' इस सूत्र से तृतीया होती है और अनुक्त कर्म में द्वितीया होती है। उक्त कर्ता में प्रथमा होती है। इस प्रकार 'चैत्रः यानेन ग्रामं गच्छति' यह वाक्य सिद्ध होता है।

मैत्रः अग्निना तण्डुलं पचति। इस वाक्य में अग्नि करण है और वह अनुक्त है क्योंकि यह कर्ता में प्रयोग है। कारण यह है कि 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' इस सूत्र से पच् धातु की विवक्षा से कर्ता में लकार का प्रयोग हुआ है। उसके स्थान पर तिङ् भी कर्ता में ही हुआ है। और इस प्रकार कर्ता में प्रयोग होने पर कर्ता उक्त होता है, कर्म अनुक्त होता है। करणादि अनुक्त होते हैं। इस प्रकार अनुक्त करण में 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' इस सूत्र से तृतीया होती है और अनुक्त कर्म में द्वितीया होती है। उक्त कर्ता में प्रथमा होती है। इस प्रकार 'मैत्रः अग्निना तण्डुलं पचति' यह वाक्य सिद्ध होता है।

छात्रः लेखन्या प्रबन्धं लिखति। इस वाक्य में लेखनी करण है और वह अनुक्त है क्योंकि यह कर्ता में प्रयोग है। कारण यह है कि 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' इस सूत्र से लिख् धातु की विवक्षा से कर्ता में लकार का प्रयोग हुआ है। उसके स्थान पर तिङ् भी कर्ता में ही हुआ है। और इस प्रकार कर्ता में प्रयोग होने पर कर्ता उक्त होता है, कर्म अनुक्त होता है। करणादि अनुक्त होते हैं। इस प्रकार अनुक्त करण में 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' इस सूत्र से तृतीया होती है और अनुक्त कर्म में द्वितीया होती है। उक्त कर्ता में प्रथमा होती है। इस प्रकार 'छात्रः लेखन्या प्रबन्धं लिखति' यह वाक्य सिद्ध होता है।

22.4 कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्॥ (1.4.32)

सूत्रार्थ- कर्मसंज्ञक के साथ जिसको सम्बद्ध किया जाता है वह कारकसंज्ञक होता हुआ सम्प्रदानसंज्ञक होता है। अथवा कर्मसंज्ञक जिसको सम्बद्ध करना चाहता है वह कारकसंज्ञक होता हुआ सम्प्रदानसंज्ञक होता है।

सूत्र व्याख्या- यह संज्ञा सूत्र है। यह सूत्र कारक संज्ञा व सम्प्रदान संज्ञा करता है। इस सूत्र में पांच पद हैं। कर्मणा यह तृतीया एकवचनान्तपद है। यम् यह द्वितीया एकवचनान्त पद है। अभिप्रैति यह

ध्यान दें:

क्रिया पद है। स यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। सम्प्रदानम् यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। कारक इसका अधिकार यहां आता है और उसका अर्थ कारक यह है। कर्म के द्वारा जिसको अभिप्रैत किया जाये वह कारकसंज्ञक होता हुआ सम्प्रदानसंज्ञक होता है यह वाक्य योजना बनती है। अभिप्रैति इसका सम्बन्ध करना चाहता है यह अर्थ होता है। और इस प्रकार सूत्रार्थ होता है- कर्मसंज्ञक से जिसको सम्बद्ध करना चाहते हैं वह कारकसंज्ञक होता हुआ सम्प्रदान संज्ञक होता है।

उदाहरण- राजा विप्राय धनं ददाति। गुरुः शिष्याय पुस्तकं ददाति। चैत्रः मैत्राय उत्तरं कथयति।

सूत्रार्थ समन्वय- राजा विप्राय धनं ददाति। इस वाक्य में विप्र सम्प्रदान है अतः वहां सूत्रार्थ का समन्वय किया जाता है। और यहां कर्मसंज्ञक है धनम्। उस कर्मसंज्ञक धन के साथ राजा विप्र को सम्बद्ध करता है, अथवा विप्र को सम्बद्ध करना चाहता है। अतः वह विप्र 'कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्' इस सूत्र से कारकसंज्ञक होता हुआ सम्प्रदानसंज्ञक होता है।

गुरुः शिष्याय पुस्तकं ददाति। इस वाक्य में शिष्य सम्प्रदान है अतः वहां सूत्रार्थ का समन्वय किया जाता है। और यहां कर्मसंज्ञक है पुस्तक। उस कर्मसंज्ञक पुस्तक के साथ गुरु शिष्य को सम्बद्ध करता है, अथवा शिष्य को सम्बद्ध करना चाहता है। अतः वह शिष्य 'कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्' इस सूत्र से कारकसंज्ञक होता हुआ सम्प्रदानसंज्ञक होता है।

चैत्रः मैत्राय उत्तरं कथयति। इस वाक्य में मैत्र सम्प्रदान है अतः वहां सूत्रार्थ का समन्वय किया जाता है। और यहां कर्मसंज्ञक है उत्तर। उस कर्मसंज्ञक उत्तर के साथ चैत्र मैत्र को सम्बद्ध करता है, अथवा मैत्र को सम्बद्ध करना चाहता है। अतः वह मैत्र 'कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्' इस सूत्र से कारकसंज्ञक होता हुआ सम्प्रदानसंज्ञक होता है।

22.5 रुच्यर्थानां प्रीयमाणः॥ (1.4.33)

सूत्रार्थः- प्रीत्यर्थक धातुओं के प्रयोग में प्रीति का आश्रय कारकसंज्ञक होता हुआ सम्प्रदानसंज्ञक होता है।

सूत्र व्याख्या- यह संज्ञा सूत्र है। यह सूत्र कारक संज्ञा सम्प्रदान संज्ञा करता है। इस सूत्र में दो पद हैं। रुच्यर्थानां यह षष्ठी बहुवचनान्तपद है। प्रीयमाणः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। इस सूत्र में 'कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्' इस सूत्र से सम्प्रदानम् इसकी अनुवृत्ति आती है। कारक इसका अधिकार यहां आता है। इस सूत्र में रुच्यर्थानाम् इस पद में बहुव्रीहि समास है। और इसका विग्रह होता है 'रुचिः प्रीतिः अर्थः येषां ते रुच्यर्थाः तेषां रुच्यर्थानाम। रुच्यर्थक धातुओं के प्रीयमाण की कारक संज्ञा होते हुए सम्प्रदान संज्ञा होती है यह वाक्य योजना बनती है। यहां रुच्यर्थक का अर्थ प्रीत्यर्थक धातु से है। प्रीयमाण इसका अर्थ प्रीति का आश्रय यह अर्थ है। प्रयोगे इस पद का अध्याहार करना पड़ता है और इस प्रकार सूत्रार्थ होता है- प्रीत्यर्थक धातुओं के प्रयोग में प्रीति का आश्रय कारकसंज्ञक होता हुआ सम्प्रदानसंज्ञक होता है।

यहां कान्त्यर्थक क्र्यादि गण की प्री-धातु से कर्म में शानच् प्रत्यय करने पर प्रीयमाण यह पद निष्पन्न होता है। जैसे सुगन्ध व्यक्ति को अच्छी लगती है, अनुकूल करती है। सुगन्ध से व्यक्ति प्रसन्न होता है। वहां प्री धातु से शानच् करने पर वाक्य बनता है- सुगन्ध से व्यक्ति प्रीयमाण है।

ध्यान दें:

उदाहरण - शिवाय बिल्वपत्रं रोचते। गणेशाय मोदकः स्वदते।

सूत्रार्थ समन्वय- शिवाय बिल्वपत्रं रोचते। इस वाक्य में शिव सम्प्रदान है अतः वहां सूत्रार्थ का समन्वय किया जाता है। और यहां वाक्य में प्रीत्यर्थक रुच् धातु का प्रयोग है। और उस प्रयोग में प्रीति का आश्रय शिव है। क्योंकि बिल्वपत्र संबंधी प्रीति शिव में है। और इस तरह प्रीत्यर्थक रुचि धातु के प्रयोग में प्रीति के आश्रय शिव की 'रुच्यर्थानां प्रीयमाणः' इस सूत्र से कारक संज्ञा हो कर सम्प्रदान संज्ञा होती है। कर्मसंज्ञक उत्तर के साथ चैत्र मैत्र को सम्बद्ध करता है, अथवा मैत्र को सम्बद्ध करना चाहता है। अतः वह मैत्र 'कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्' इस सूत्र से कारकसंज्ञक होता हुआ सम्प्रदानसंज्ञक होता है।

गणेशाय मोदकः स्वदते। इस वाक्य में गणेश सम्प्रदान है अतः वहां सूत्रार्थ का समन्वय किया जाता है। और यहां वाक्य में प्रीत्यर्थक स्वद् धातु का प्रयोग है । और उस प्रयोग में प्रीति का आश्रय गणेश है। क्योंकि मोदक संबंधी प्रीति गणेश में है। और इस तरह प्रीत्यर्थक स्वदि धातु के प्रयोग में प्रीति के आश्रय गणेश की 'रुच्यर्थानां प्रीयमाणः' इस सूत्र से कारक संज्ञा हो कर सम्प्रदान संज्ञा होती है।

22.6 क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः॥ (1.4.37)

सूत्रार्थः- क्रोधार्थक, द्रोहार्थक, ईर्ष्यार्थक व असूयार्थक धातुओं के प्रयोग में जिसके प्रति कोप है वह कारकसंज्ञक होता हुआ सम्प्रदानसंज्ञक होता है।

सूत्र व्याख्या- यह संज्ञा सूत्र है। यह सूत्र कारक संज्ञा सम्प्रदान संज्ञा करता है। इस सूत्र में चार पद हैं। क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानाम् यह षष्ठी बहुवचनान्तपद है। यं यह द्वितीया एकवचनान्त पद है। प्रति अव्यय पद है। कोपः प्रथमा एकवचनान्त पद है। इस सूत्र में 'कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्' इस सूत्र से सम्प्रदानम् इसकी अनुवृत्ति आती है। कारक इसका अधिकार यहां आता है। इस सूत्र में क्रुध द्रुहेर्ष्यासूयार्थानाम् इस पद में द्वन्द्वगर्भ बहुव्रीहि समास है। और इसका विग्रह होता है 'क्रुधश्च द्रुहश्च ईर्ष्या च असूया च इति क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयाः। क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयाः अर्थाः येषां ते क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थाः। तेषां क्रुध द्रुहेर्ष्यासूयार्थानाम्।' क्रोधार्थक, द्रोहार्थक, ईर्ष्यार्थक व असूयार्थक धातुओं के प्रयोग में जिसके प्रति कोप है वह कारकसंज्ञक होता हुआ सम्प्रदानसंज्ञक होता है। यहां क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानाम् का अर्थ क्रोधार्थक द्रोहार्थक ईर्ष्यार्थक व असूयार्थक धातुओं से है। प्रयोगे इस पद का अध्याहार करना पड़ता है और इस प्रकार सूत्रार्थ होता है- क्रोधार्थक धातुओं के प्रयोग में जिसके प्रति कोप है वह कारकसंज्ञक होता हुआ सम्प्रदानसंज्ञक होता है। द्रोहार्थक धातुओं के प्रयोग में जिसके प्रति कोप है वह कारकसंज्ञक होता हुआ सम्प्रदानसंज्ञक होता है। ईर्ष्यार्थक धातुओं के प्रयोग में जिसके प्रति कोप है वह कारकसंज्ञक होता हुआ सम्प्रदानसंज्ञक होता है। असूयार्थक धातुओं के प्रयोग में जिसके प्रति कोप है वह कारकसंज्ञक होता हुआ सम्प्रदानसंज्ञक होता है। अर्थात जिस धातु का अर्थ क्रोध, द्रोह, ईर्ष्या, असूया है उस धातु के प्रयोग में जिसके प्रति कोप है वह कारकसंज्ञक होता हुआ सम्प्रदान संज्ञक होता है।

क्रोध - अमर्ष। द्रोह - अपकार। ईर्ष्या - अक्षमा। असूया- गुणों में दोष खोजना।

उदाहरणम्- रावणः रामाय क्रुध्यति। कंसः कृष्णाय द्रुह्यति। कर्णः अर्जुनाय ईर्ष्यति। दुर्योधनः युधिष्ठिराय असूयति।

सूत्रार्थ समन्वय- रावणः रामाय क्रुध्यति। इस वाक्य में राम सम्प्रदान है। अतः वहां सूत्रार्थ का समन्वय किया जाता है। और यहां वाक्य में क्रोधार्थक क्रुध् धातु का प्रयोग है । अतः राम की 'क्रुध द्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः' इस सूत्र से कारक संज्ञा हो कर सम्प्रदान संज्ञा होती है।

ध्यान दें:

कंसः कृष्णाय द्रुह्यति। इस वाक्य में कृष्ण सम्प्रदान है। अतः वहां सूत्रार्थ का समन्वय किया जाता है। और यहां वाक्य में द्रोहार्थक द्रुह धातु का प्रयोग है। और उस प्रयोग में कंस का कृष्ण के प्रति कोप है अतः कृष्ण की 'क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः' इस सूत्र से कारक संज्ञा हो कर सम्प्रदान संज्ञा होती है।

कर्णः अर्जुनाय ईर्ष्यति। इस वाक्य में अर्जुन सम्प्रदान है। अतः वहां सूत्रार्थ का समन्वय किया जाता है। और यहां वाक्य में ईर्ष्यार्थक ईर्ष्यधातु का प्रयोग है। और उस प्रयोग में कर्ण का अर्जुन के प्रति कोप है अतः अर्जुन की 'क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः' इस सूत्र से कारक संज्ञा हो कर सम्प्रदान संज्ञा होती है।

दुर्योधनः युधिष्ठिराय असूयति। इस वाक्य में युधिष्ठिर सम्प्रदान है। अतः वहां सूत्रार्थ का समन्वय किया जाता है। और यहां वाक्य में असूयार्थक असूय् धातु का प्रयोग है। और उस प्रयोग में दुर्योधन का युधिष्ठिर के प्रति कोप है अतः युधिष्ठिर की 'क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः' इस सूत्र से कारक संज्ञा होकर सम्प्रदान संज्ञा होती है।

22.7 स्पृहेरीप्सितः॥ (1.4.36)

सूत्रार्थः- स्पृहि धातु के प्रयोग में इच्छा विषय कारकसंज्ञक होता हुआ सम्प्रदानसंज्ञक होता है।

सूत्रव्याख्या- यह संज्ञा सूत्र है। यह सूत्र कारक संज्ञा व सम्प्रदान संज्ञा करता है। इस सूत्र में दो पद हैं। स्पृहेः यह षष्ठी एकवचनान्तपद है। ईप्सितः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। इस सूत्र में 'कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्' इस सूत्र से सम्प्रदानम् इसकी अनुवृत्ति आती है। कारके इसका अधिकार यहां आता है। स्पृह धातु के प्रयोग में जो ईप्सित है वह कारकसंज्ञक होता हुआ सम्प्रदानसंज्ञक होता है। ईप्सित का अर्थ इच्छा विषय है। प्रयोग इस पद का अध्याहार करना पड़ता है और इस प्रकार सूत्रार्थ होता है- स्पृहि धातु के प्रयोग में इच्छा विषयक कारकसंज्ञक होता हुआ सम्प्रदानसंज्ञक होता है।

उदाहरण - विष्णुः पुष्पेभ्यः स्पृहयति।

सूत्रार्थसमन्वय- विष्णुः पुष्पेभ्यः स्पृहयति। इस वाक्य में पुष्प सम्प्रदान है। अतः वहां सूत्रार्थ का समन्वय किया जाता है। और यहां वाक्य में स्पृह् धातु का प्रयोग है। और उस प्रयोग में इच्छा का विषय पुष्प है अतः पुष्प की 'स्पृहेरीप्सितः' इस सूत्र से कारक संज्ञा हो कर सम्प्रदान संज्ञा होती है।

22.8 चतुर्थी सम्प्रदाने॥ (2.3.13)

सूत्रार्थ- अनुक्त सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति होती है।

सूत्र व्याख्या- यह विधि सूत्र है। यह सूत्र चतुर्थी का विधान करता है। इस सूत्र में दो पद हैं। सम्प्रदाने यह सप्तमी एकवचनान्त पद है। चतुर्थी यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। अनभिहिते इसका अधिकार यहां आता है। अनभिहित सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति होती है यह वाक्य योजना है। यहां सम्प्रदाने इसका सम्प्रदान यह अर्थ है। चतुर्थी इसका चतुर्थी विभक्ति यह अर्थ है। अनभिहिते इसका अनुक्त होने पर यह अर्थ है। अतः सूत्रार्थ होता है- अनुक्त सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति होती है।

उदाहरणम् - राजा विप्राय धनं ददाति। गुरुः शिष्याय पुस्तकं ददाति। पत्नी पत्ये शेते।

सूत्रार्थ समन्वय- राजा विप्राय धनं ददाति। इस वाक्य में विप्र सम्प्रदान है और वह अनुक्त है क्योंकि यह कर्ता में प्रयोग है। कारण यह है कि 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' इस सूत्र से दा धातु

ध्यान दें:

की विवक्षा से कर्ता में लकार का प्रयोग हुआ है। उसके स्थान पर तिङ् भी कर्ता में ही हुआ है। और इस प्रकार कर्ता में प्रयोग होने पर कर्ता उक्त होता है, सम्प्रदानादि अनुक्त होते हैं। इस प्रकार अनुक्त सम्प्रदान विप्र में 'चतुर्थी सम्प्रदाने' इस सूत्र से चतुर्थी होती है और उक्त कर्ता में प्रथमा होती है। इस प्रकार 'राजा विप्राय धनं ददाति' यह वाक्य सिद्ध होता है।

गुरुः शिष्याय पुस्तकं ददाति। इस वाक्य में शिष्य सम्प्रदान है और वह अनुक्त है क्योंकि यह कर्ता में प्रयोग है। कारण यह है कि 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' इस सूत्र से दा धातु की विवक्षा से कर्ता में लकार का प्रयोग हुआ है। उसके स्थान पर तिङ् भी कर्ता में ही हुआ है। और इसप्रकार कर्ता में प्रयोग होने पर कर्ता उक्त होता है, सम्प्रदानादि अनुक्त होते हैं। इस प्रकार अनुक्त सम्प्रदान शिष्य में 'चतुर्थी सम्प्रदाने' इस सूत्र से चतुर्थी होती है और उक्त कर्ता में प्रथमा होती है। इस प्रकार 'गुरुः शिष्याय पुस्तकं ददाति' यह वाक्य सिद्ध होता है।

पत्नी पत्ये शेते। इस वाक्य में पति सम्प्रदान है और वह अनुक्त है क्योंकि यह कर्ता में प्रयोग है। कारण यह है कि 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' इस सूत्र से शी धातु की विवक्षा से कर्ता में लकार का प्रयोग हुआ है। उसके स्थान पर तिङ् भी कर्ता में ही हुआ है। और इसप्रकार कर्ता में प्रयोग होने पर कर्ता उक्त होता है, सम्प्रदानादि अनुक्त होते हैं। इस प्रकार अनुक्त सम्प्रदान पति में 'चतुर्थी सम्प्रदाने' इस सूत्र से चतुर्थी होती है और उक्त कर्ता में प्रथमा होती है। इस प्रकार 'पत्नी पत्ये शेते' यह वाक्य सिद्ध होता है।

शिवाय बिल्वपत्रं रोचते। इस वाक्य में शिव सम्प्रदान है और वह अनुक्त है क्योंकि यह कर्ता में प्रयोग है। कारण यह है कि 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' इस सूत्र से रुच धातु की विवक्षा से कर्ता में लकार का प्रयोग हुआ है। उसके स्थान पर तिङ् भी कर्ता में ही हुआ है। और इस प्रकार कर्ता में प्रयोग होने पर कर्ता उक्त होता है, सम्प्रदानादि अनुक्त होते हैं। इस प्रकार अनुक्त सम्प्रदान शिव में 'चतुर्थी सम्प्रदाने' इस सूत्र से चतुर्थी होती है और उक्त कर्ता में प्रथमा होती है। इस प्रकार 'शिवाय बिल्वपत्रं रोचते' यह वाक्य सिद्ध होता है।

गणेशाय मोदकः स्वदते। इस वाक्य में गणेश सम्प्रदान है और वह अनुक्त है क्योंकि यह कर्ता में प्रयोग है। कारण यह है कि 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' इस सूत्र से स्वद् धातु की विवक्षा से कर्ता में लकार का प्रयोग हुआ है। उसके स्थान पर तिङ् भी कर्ता में ही हुआ है। और इस प्रकार कर्ता में प्रयोग होने पर कर्ता उक्त होता है, सम्प्रदानादि अनुक्त होते हैं। इस प्रकार अनुक्त सम्प्रदान गणेश में 'चतुर्थी सम्प्रदाने' इस सूत्र से चतुर्थी होती है और उक्त कर्ता में प्रथमा होती है। इस प्रकार 'गणेशाय मोदकः स्वदते' यह वाक्य सिद्ध होता है।

रावणः रामाय क्रुध्यति। इस वाक्य में राम सम्प्रदान है और वह अनुक्त है क्योंकि यह कर्ता में प्रयोग है। कारण यह है कि 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' इस सूत्र से क्रुध् धातु की विवक्षा से कर्ता में लकार का प्रयोग हुआ है। उसके स्थान पर तिङ् भी कर्ता में ही हुआ है। और इस प्रकार कर्ता में प्रयोग होने पर कर्ता उक्त होता है, सम्प्रदानादि अनुक्त होते हैं। इस प्रकार अनुक्त सम्प्रदान राम में में 'चतुर्थी सम्प्रदाने' इस सूत्र से चतुर्थी होती है और उक्त कर्ता में प्रथमा होती है। इस प्रकार 'रावणः रामाय क्रुध्यति' यह वाक्य सिद्ध होता है।

कंसः कृष्णाय द्रुह्यति। इस वाक्य में कृष्ण सम्प्रदान है और वह अनुक्त है क्योंकि यह कर्ता में प्रयोग है। कारण यह है कि 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' इस सूत्र से द्रुह् धातु की विवक्षा से कर्ता में लकार का प्रयोग हुआ है। उसके स्थान पर तिङ् भी कर्ता में ही हुआ है। और इस प्रकार कर्ता में प्रयोग होने पर कर्ता उक्त होता है, सम्प्रदानादि अनुक्त होते हैं। इस प्रकार अनुक्त सम्प्रदान कृष्ण में में

ध्यान दें:

'चतुर्थी सम्प्रदाने' इस सूत्र से चतुर्थी होती है और उक्त कर्ता में प्रथमा होती है। इस प्रकार 'कंसः कृष्णाय द्रुह्यति' यह वाक्य सिद्ध होता है।

कर्णः अर्जुनाय ईर्ष्यति। इस वाक्य में अर्जुन सम्प्रदान है और वह अनुक्त है क्योंकि यह कर्ता में प्रयोग है। कारण यह है कि 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' इस सूत्र से ईर्ष्य् धातु की विवक्षा से कर्ता में लकार का प्रयोग हुआ है। उसके स्थान पर तिङ् भी कर्ता में ही हुआ है। और इस प्रकार कर्ता में प्रयोग होने पर कर्ता उक्त होता है, सम्प्रदानादि अनुक्त होते हैं। इस प्रकार अनुक्त सम्प्रदान अर्जुन में 'चतुर्थी सम्प्रदाने' इस सूत्र से चतुर्थी होती है और उक्त कर्ता में प्रथमा होती है। इस प्रकार 'कर्णः अर्जुनाय ईर्ष्यति' यह वाक्य सिद्ध होता है।

दुर्योधनः युधिष्ठिराय असूयति। इस वाक्य में युधिष्ठिर सम्प्रदान है और वह अनुक्त है क्योंकि यह कर्ता में प्रयोग है। कारण यह है कि 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' इस सूत्र से असूय् धातु की विवक्षा से कर्ता में लकार का प्रयोग हुआ है। उसके स्थान पर तिङ् भी कर्ता में ही हुआ है। और इस प्रकार कर्ता में प्रयोग होने पर कर्ता उक्त होता है, सम्प्रदानादि अनुक्त होते हैं। इस प्रकार अनुक्त सम्प्रदान युधिष्ठिर में में 'चतुर्थी सम्प्रदाने' इस सूत्र से चतुर्थी होती है और उक्त कर्ता में प्रथमा होती है। इस प्रकार 'दुर्योधनः युधिष्ठिराय असूयति' यह वाक्य सिद्ध होता है।

विष्णुः पुष्पेभ्यः स्पृहयति। इस वाक्य में पुष्प सम्प्रदान है और वह अनुक्त है क्योंकि यह कर्ता में प्रयोग है। कारण यह है कि 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' इस सूत्र से स्पृह् धातु की विवक्षा से कर्ता में लकार का प्रयोग हुआ है। उसके स्थान पर तिङ् भी कर्ता में ही हुआ है। और इस प्रकार कर्ता में प्रयोग होने पर कर्ता उक्त होता है, सम्प्रदानादि अनुक्त होते हैं। इस प्रकार अनुक्त सम्प्रदान पुष्प में 'चतुर्थी सम्प्रदाने' इस सूत्र से चतुर्थी होती है और उक्त कर्ता में प्रथमा होती है। इस प्रकार 'विष्णुः पुष्पेभ्यः स्पृहयति' यह वाक्य सिद्ध होता है।

पाठगत प्रश्न

यहां कुछ पाठगत प्रश्न दिये गये हैं।

1. स्वतन्त्रः इस पद का क्या अर्थ है?
2. 'स्वतन्त्रः कर्ता' इस सूत्र से क्या होता है?
3. साधकतमम् इस पद का क्या अर्थ है?
4. 'साधकतमं करणम्' इस सूत्र से क्या विहित होता है?
5. 'स्पृहेरीप्सितः' इस सूत्र में ईप्सितः इस पद का क्या अर्थ है?
6. अभिप्रैति इस पद का क्या अर्थ है?
7. 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' यह सूत्र संज्ञा सूत्र है अथवा विधि सूत्र है?
8. 'चतुर्थी सम्प्रदाने' यह सूत्र संज्ञासूत्र है अथवा विधिसूत्र?
9. उक्त कर्ता और करण में कौन-सी विभक्ति होती है?
10. उक्त सम्प्रदान में कौन-सी विभक्ति होती है?

पाठ-22

कारक विभक्ति-तृतीया व चतुर्थी

ध्यान दें:

पाठ सार

इस पाठ में कर्तृसंज्ञाविधायक 'स्वतन्त्रः कर्ता' इस सूत्र का व्याख्यान है। वहां स्वतन्त्र इसका धातुवाच्य व्यापार का आश्रय यह अर्थ है। उसके बाद करण संज्ञा विधायक 'साधकतमं करणम्' इस सूत्र का व्याख्यान किया गया है। पुनः अनभिहित कर्ता और करण में तृतीय विभक्ति के विधायक 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' इस सूत्र की व्याख्या है। उसके पश्चात सम्प्रदान संज्ञाविधायक कर्मणा यमभिप्रैति सम्प्रदानम्, 'रुच्यर्थानां प्रीयमाणः,' 'क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयानां यं प्रति कोपः,' 'स्पृहेरीप्सितः' इत्यादि सूत्रों का व्याख्यान किया गया है। उसके पश्चात अनुक्त सम्प्रदान में चतुर्थी विधायक चतुर्थी सम्प्रदाने इस सूत्र की व्याख्या की गई है।

पाठान्त प्रश्न

1. 'स्वतन्त्रः कर्ता' इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
2. साधकतमं करणम् इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
3. कर्तृकरणयोस्तृतीया इस सूत्र की व्याख्या कीजिऐ।
4. कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
5. स्पृहेरीप्सितः इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
6. चतुर्थी सम्प्रदाने इस सूत्र की व्याख्या लेखिये।
7. चैत्रेण गम्यते, चैत्रः अग्निना पच्यते इन दोनों प्रयोगों की सिद्धि लिखिए।
8. रावणः रामाय क्रुध्यति, विष्णुः पुष्पेभ्यः स्पृहयति इन दोनों प्रयोगों की सिद्धि लिखिए।
9. राजा विप्राय धनं ददाति, चैत्रः मैत्राय वार्ता कथयति इन दोनों प्रयोगों की सिद्धि लिखिए।

पाठगत प्रश्नोत्तर

1. स्वतन्त्रः इस पद का व्यापार का आश्रय यह अर्थ है।
2. स्वतन्त्रः कर्ता इस सूत्र से कर्तृ संज्ञा का विधान होता है।
3. साधकतमम् इस पद का प्रकृष्टोपकारक यह अर्थ है।
4. साधकतमं करणम् इस सूत्र से करण संज्ञा का विधान होता है।
5. स्पृहेरीप्सितः इस सूत्र में ईप्सितः इसका इच्छा विषय यह अर्थ है।
6. अभिप्रैति इसका सम्बद्ध करता है यह अर्थ है, सम्बद्ध करना चाहता है यह अर्थ है।
7. कर्तृकरणयोस्तृतीया यह सूत्र विधि सूत्र है।
8. चतुर्थी सम्प्रदाने यह सूत्र विधि सूत्र है।
9. उक्त कर्ता व करण में प्रथमा विभक्ति होती है।
10. उक्त सम्प्रदान में प्रथमा विभक्ति होती है।

23

कारक विभक्ति में पञ्चमी षष्ठी व सप्तमी

ध्यान दें:

संस्कृत भाषा में छः कारक होते हैं। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण। पूर्व पाठों में हमने कर्म कारक, कर्तृ कारक, करण कारक व सम्प्रदान कारक के विषय में पढ़ा। इस पाठ में अपादान के विषय में विवेचन किया जाता है। पुनः अपादान के विषय में कौन-सी विभक्ति होती है यह प्रस्तुत किया जाता है।

कारक प्रकरण के आदि से पञ्चमी विभक्ति तक पूर्व पाठों में अनभिहित कर्ता में तृतीया विभक्ति होती है यह पढ़ा गया है। अनभिहित कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है यह बताया गया है। किन्तु अनभिहित कर्ता व कर्म में षष्ठी विभक्ति भी होती है। किस सूत्र से कर्ता व कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है और कब होती है यह इस पाठ में प्रस्तुत किया जा रहा है। वहां कर्ता में व कर्म में षष्ठी विधायक अनेक सूत्र हैं। उनमें कर्तृकर्मणोः कृति, उभयप्राप्तौ कर्मणि, कृत्यानां कर्तरि वा ये तीन सूत्र ही मुख्य हैं। अतः यहां उनका व्याख्यान प्रस्तुत किया जाता है। कर्तृकर्मणोः कृति इस सूत्र का निषेधक न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् यह सूत्र भी है। उसका ज्ञान कारक षष्ठी विभक्ति के प्रयोग के लिये आवश्यक है अतः इस सूत्र की व्याख्या भी यहां की जायेगी।

इस पाठ में अधिकरण कारक के विषय में भी विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है। एवं अधिकरण में कौन सी विभक्ति होती है यह प्रस्तुत किया जा रहा है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे-

- अपादान संज्ञा किसकी होती है यह जान पाने में;
- वाक्य रचना काल में अपादान और पञ्चमी का सम्यक् व्यवहार जान पाने में;
- कारक षष्ठी विधायक सूत्रों को जान पाने में;
- न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनां इस सूत्र का अर्थ जान पाने में;
- कारक षष्ठी विभक्ति के वाक्यों का शुद्ध प्रयोग कर पाने में;

पाठ-23

कारक विभक्ति में पञ्चमी षष्ठी व सप्तमी

ध्यान दें:

- द्विकर्मक धातु से युक्त वाक्यों में कारक षष्ठी का प्रयोग कर पाने में;
- अधिकरण संज्ञा किसकी होती है यह जान पाने में;
- वाक्यों में कौन अपादान कारक, क्या अधिकरण कारक यह जान पाने में;
- वाक्यों में कारक षष्ठी कहां होती है यह जान पाने में;
- वाक्य रचना काल में अधिकरण का और सप्तमी का सम्यक् व्यवहार जान पाने में;

अथ पञ्चमी कारक विभक्ति

23.1 ध्रुवमपायेऽपादानम्॥ (1.4.24)

सूत्रार्थ- विभाग होने पर जो धातु का वाच्य विभाग का आश्रय वह कारकसंज्ञक होता हुआ अपादानसंज्ञक होता है।

सूत्रावतरण- संस्कृत भाषा में छः कारक होते हैं। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण। इनमें अपादान क्या होता है यह प्रतिपादित करने के लिये ध्रुवमपायेऽपादानम् इस सूत्र को भगवान् पाणिनि ने बनाया।

सूत्र व्याख्या- यह संज्ञा सूत्र है। यह सूत्र कारक संज्ञा व अपादान संज्ञा करता है। इस सूत्र में तीन पद हैं। ध्रुवम यह प्रथमा एकवचनान्तपद है। अपाये यह सप्तमी एकवचनान्त पद है। अपादानम् यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। कारक इसका अधिकार यहां आता है। अपाय में ध्रुव की कारक संज्ञा होते हुए अपादान संज्ञा होती है यह वाक्य योजना है। यहां ध्रुव इसका धातु का वाच्य विभाग का आश्रय यह अर्थ है। अपाय इसका विभाग होने पर यह अर्थ है। इस प्रकार सूत्रार्थ होता है- विभाग होने पर जो धातु का वाच्य विभाग का आश्रय वह कारकसंज्ञक होता हुआ अपादानसंज्ञक होता है।

उदाहरण-पत्रं वृक्षात् पतति। मैत्रः ग्रामात् गच्छति।

सूत्रार्थ समन्वय- पत्रं वृक्षात् पतति। इस वाक्य में वृक्ष अपादान है। अतः वहां सूत्रार्थ का समन्वय किया जाता है। तथाहि यहां पत्र के पतन से पत्र और वृक्ष के मध्य विभाग उत्पन्न होता है। पत् इस धातु का अधःसंयोगानुकूल व्यापार यह अर्थ होता है। अतः विभाग पत् इस धातु का वाच्य नहीं है। एवं यहां विभाग होने पर धातु के वाच्य विभाग का आश्रय वृक्ष है। अतः उसकी ध्रुवमपायेऽपादानम् इस सूत्र से कारक संज्ञा होकर अपादान संज्ञा होती है।

मैत्रः ग्रामात् गच्छति। इस वाक्य में ग्राम अपादान है। अतः वहां सूत्रार्थ का समन्वय किया जाता है। तथाहि यहां मैत्र के गमन से मैत्र और ग्राम के मध्य विभाग उत्पन्न होता है। गम् इस धातु का उत्तर देश संयोगानुकूल व्यापार यह अर्थ होता है। अतः विभाग गम् इस धातु का वाच्य नहीं है। एवं यहां विभाग होने पर धातु के वाच्य विभाग का आश्रय ग्राम है। अतः उसकी ध्रुवमपायेऽपादानम् इस सूत्र से कारक संज्ञा होकर अपादान संज्ञा होती है।

23.2 भीत्रार्थानां भयहेतुः॥ (1.4.25)

सूत्रार्थः- भयार्थक धातुओं के प्रयोग में भय का जो कारण उसकी कारक संज्ञा होते हुए अपादान संज्ञा होती है, एवं रक्षार्थक धातुओं के प्रयोग में भय का जो कारण उसकी कारक संज्ञा होते हुए अपादान संज्ञा होती है।

ध्यान दें:

सूत्र व्याख्या- यह संज्ञा सूत्र है। यह सूत्र कारक संज्ञा व अपादान संज्ञा करता है। इस सूत्र में दो पद हैं। भीत्रार्थानाम् यह षष्ठी बहुवचनान्त पद है। भयहेतुः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। कारक इसका अधिकार यहां आता है। भयार्थक व रक्षणात्मक धातुओं के प्रयोग में भय का जो कारण उसकी कारक संज्ञा होते हुए अपादान संज्ञा होती है, यह वाक्य योजना है। यहां भीत्रार्थानाम् इस पद में द्वन्द्वगर्भ बहुव्रीहि समास है। उसका विग्रह इस तरह है- भीश्च त्राश्च इति भीत्रौ। भीत्रौ अर्थौ येषां ते भीत्रार्थाः तेषां भीत्रार्थानाम्। इस तरह भीत्रार्थानाम् इस पद का अर्थ होता है- भयार्थक व रक्षार्थक धातुओं का। भयहेतुः यहां षष्ठी तत्पुरुष समास है इसका विग्रह इस प्रकार है- भयस्य हेतुः इति भयहेतुः। यहां हेतु पद का कारण यह अर्थ है। इस प्रकार भयहेतु पद का अर्थ भय का कारण यह होता है। प्रयोग इस पद का अध्याहार किया जाता है। इस प्रकार सूत्रार्थ होता है- भयार्थक धातुओं के प्रयोग में भय का जो कारण उसकी कारक संज्ञा होते हुए अपादान संज्ञा होती है, एवं रक्षार्थक धातुओं के प्रयोग में भय का जो कारण उसकी कारक संज्ञा होते हुए अपादान संज्ञा होती है।

भयार्थक धातु- जिभी भये - बिभेति। त्रसि उद्वेगे - त्रस्यति। ओविजी भयचलयोः, (प्रायः यह धातु उत् -पूर्वक है) - उद्विजते। इस प्रकार अन्य धातु भी हैं।

रक्षार्थक धातु- रक्ष् पालने - रक्षति। त्रैङ् पालने - त्रायते। पा रक्षणे - पाति। पाल् रक्षणे - पालयति। इस प्रकार अन्य धातु भी हैं।

उदाहरण - सर्पः नकुलात् बिभेति। माता बालं सर्पात् रक्षति।

सूत्रार्थ समन्वय- सर्पः नकुलात् बिभेति। इस वाक्य में नकुल अपादान है। अतः वहां सूत्रार्थ का समन्वय किया जाता है। तथाहि यहां वाक्य में भयार्थक जिभी भये इस धातु का प्रयोग है। और वहां भय कारण है नकुल। अतः भय के कारण नकुल की भीत्रार्थानां भयहेतुः इस सूत्र से कारकसंज्ञा होकर अपादान संज्ञा होती है।

माता बालं सर्पात् रक्षति। इस वाक्य में सर्प अपादान है। अतः वहां सूत्रार्थ का समन्वय किया जाता है। तथाहि यहां वाक्य में रक्षार्थक रक्ष इस धातु का प्रयोग है। और वहां भय कारण है सर्प। अतः भय के कारण सर्प की भीत्रार्थानां भयहेतुः इस सूत्र से कारक संज्ञा होकर अपादान संज्ञा होती है।

23.3 जनिकर्तुः प्रकृतिः॥ (1.4.30)

सूत्रार्थः- जायमान का कारण कारक संज्ञक होता हुआ अपादानसंज्ञक होता है।

सूत्र व्याख्या- यह संज्ञा सूत्र है। यह सूत्र कारक संज्ञा व अपादान संज्ञा करता है। इस सूत्र में दो पद हैं। जनिकर्तुः यह षष्ठी एकवचनान्त पद है। प्रकृतिः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। ध्रुवमपायेऽपादानम् इस सूत्र से अपादानम् इस पद की अनुवृत्ति आती है। कारक इसका अधिकार यहां आता है। जायमान के कर्ता की प्रकृति कारकसंज्ञक होते हुए अपादानसंज्ञक होता है यह वाक्य योजना जनिकर्तुः यहां षष्ठी तत्पुरुष समास है इसका विग्रह इस प्रकार है- जनेः कर्ता इति जनिकर्ता। तस्य जनिकर्तुः इति। और इसका जायमान यह अर्थ होता है। इस प्रकार सूत्रार्थ होता है- जायमान का कारण कारकसंज्ञक होता हुआ अपादानसंज्ञक होता है।

उदाहरण - ईश्वरात् जगत् जायते।

सूत्रार्थ समन्वय- ईश्वरात् जगत् जायते। इस वाक्य में ईश्वर अपादान है। अतः वहां सूत्रार्थ का समन्वय किया जाता है। तथाहि यहां वाक्य में जायमान जगत है। और उसका कारण है ईश्वर। इस प्रकार

ध्यान दें:

जायमान जगत का कारण ईश्वर है। अतः उसकी 'जनिकर्तुः प्रकृतिः' इस सूत्र से कारक संज्ञा होकर अपादान संज्ञा होती है।

अन्य उदाहरण-

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।

यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥ (गीता)

सरलार्थ- अन्न से प्राणी (जीव) उत्पन्न होते हैं। पर्जन्य से अन्नसम्भव (अन्न उत्पन्न होता है)। यज्ञ से पर्जन्यः होता है और यज्ञ कर्म से उत्पन्न होता है (कर्म से यज्ञ होता है)

23.4 आख्यातोपयोगे॥ (1.4.29)

सूत्रार्थ- नियम पूर्वक विद्या के स्वीकार अर्थ गम्यमान होने पर वक्ता कारकसंज्ञक होता हुआ अपादानसंज्ञक होता है।

सूत्र व्याख्या- यह संज्ञा सूत्र है। यह सूत्र कारक संज्ञा व अपादान संज्ञा करता है। इस सूत्र में दो पद हैं। आख्याता यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। उपयोग यह सप्तमी एकवचनान्त पद है। ध्रुवमपायेऽपादानम् इस सूत्र अपादानम् इस पद की अनुवृत्ति आती है। कारक इसका अधिकार यहां आता है। उपयोग में आख्याता कारकसंज्ञक होता हुआ अपादानसंज्ञक होता है यह वाक्य योजना है। यहां आख्याता इसका वक्ता यह अर्थ है और उपयोग इस पद का नियम पूर्वक विद्या स्वीकार यह अर्थ है। गम्यमाने इस पद का यहां अध्याहार किया जाता है। इस प्रकार सूत्रार्थ होता है- नियम पूर्वक विद्या के स्वीकार अर्थ गम्यमान होने पर वक्ता कारकसंज्ञक होता हुआ अपादानसंज्ञक होता है।

उदाहरणम्- माणवकः गुरोः वेदं पठति।

सूत्रार्थ समन्वय- माणवकः गुरोः वेदं पठति। इस वाक्य में गुरु अपादान है। अतः वहां सूत्रार्थ का समन्वय किया जाता है। तथाहि यहां नियमपूर्वक विद्यास्वीकार अर्थ गम्यमान है। क्योंकि वेद का पाठ नियमानुसार ही होता है। नियम पूर्वक विद्या के स्वीकार गम्यमान होने में गुरु वक्ता है। अतः उसकी 'आख्यातोपयोगे' इस सूत्र से कारक संज्ञा होकर अपादान संज्ञा होती है। यहां यह ध्यान देना चाहिये कि नियम रहित विद्या स्वीकार करने में जो विद्या देता है उसकी अपादान संज्ञा होती है। अतः अख्याता पद से ज्ञानदाता समझना चाहिये।

23.5 अपादाने पञ्चमी॥ (2.3.28)

सूत्रार्थ- अनुक्त अपादान में पञ्चमी विभक्ति होती है।

सूत्रावतरण- प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी ये सात विभक्तियां होती हैं। इनमें पञ्चमी किस अर्थ में होती है यह प्रतिपादित करने के लिये 'अपादाने पञ्चमी' यह सूत्र भगवान् पाणिनि ने बनाया।

सूत्र व्याख्या- यह विधि सूत्र है। यह सूत्र पञ्चमी का विधान करता है। इस सूत्र में दो पद हैं। अपादाने यह सप्तमी एकवचनान्त पद है। पञ्चमी यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। अनभिहिते इसका अधिकार यहां आता है। अनभिहित अपादान में पञ्चमी विभक्ति होती है यह वाक्य योजना है। यहां अपादाने इसका अपादान यह अर्थ है। पञ्चमी इसका पञ्चमी विभक्ति यह अर्थ है। अनभिहिते इसका अनुक्त हाने

ध्यान दें:

पर यह अर्थ है। अतः सूत्रार्थ होता है- अनुक्त अपादान में पञ्चमी विभक्ति होती है।

उदाहरण- पत्रं वृक्षात् पतति। मैत्रः ग्रामात् गच्छति। सर्पः नकुलात् बिभेति। माता बालं सर्पात् रक्षति। ईश्वरात् जगत् जायते। माणवकः गुरोः वेदं पठति।

सूत्रार्थ समन्वय- पत्रं वृक्षात् पतति। इस वाक्य में वृक्ष अपादान है और वह अनुक्त है क्योंकि यह कर्ता में प्रयोग है। कारण यह है कि 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' इस सूत्र से पत् धातु की विवक्षा से कर्ता में लकार का प्रयोग हुआ है। उसके स्थान पर तिङ् भी कर्ता में ही हुआ है। और इस प्रकार कर्ता में प्रयोग होने पर कर्ता उक्त होता है, अपादानादि अनुक्त होते हैं। इस प्रकार अनुक्त अपादान वृक्ष में 'अपादाने पञ्चमी' इस सूत्र से पञ्चमी होती है और उक्त कर्ता में प्रथमा होती है। इस प्रकार 'पत्रं वृक्षात् पतति' यह वाक्य सिद्ध होता है।

मैत्रः ग्रामात् गच्छति। इस वाक्य में ग्राम अपादान है और वह अनुक्त है क्योंकि यह कर्ता में प्रयोग है। कारण यह है कि 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' इस सूत्र से गम धातु की विवक्षा से कर्ता में लकार का प्रयोग हुआ है। उसके स्थान पर तिङ् भी कर्ता में ही हुआ है। और इस प्रकार कर्ता में प्रयोग होने पर कर्ता उक्त होता है, अपादानादि अनुक्त होते हैं। इस प्रकार अनुक्त अपादान ग्राम में 'अपादाने पञ्चमी' इस सूत्र से पञ्चमी होती है और उक्त कर्ता में प्रथमा होती है। इस प्रकार 'मैत्रः ग्रामात् गच्छति' यह वाक्य सिद्ध होता है।

सर्पः नकुलात् बिभेति। इस वाक्य में नकुल अपादान है और वह अनुक्त है क्योंकि यह कर्ता में प्रयोग है। कारण यह है कि 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' इस सूत्र से भी धातु की विवक्षा से कर्ता में लकार का प्रयोग हुआ है। उसके स्थान पर तिङ् भी कर्ता में ही हुआ है। और इस प्रकार कर्ता में प्रयोग होने पर कर्ता उक्त होता है, अपादानादि अनुक्त होते हैं। इस प्रकार अनुक्त अपादान नकुल में 'अपादाने पञ्चमी' इस सूत्र से पञ्चमी होती है और उक्त कर्ता में प्रथमा होती है। इस प्रकार 'सर्पः नकुलात् बिभेति' यह वाक्य सिद्ध होता है।

माता बालं सर्पात् रक्षति। इस वाक्य में सर्प अपादान है और वह अनुक्त है क्योंकि यह कर्ता में प्रयोग है। कारण यह है कि 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' इस सूत्र से रक्ष धातु की विवक्षा से कर्ता में लकार का प्रयोग हुआ है। उसके स्थान पर तिङ् भी कर्ता में ही हुआ है। और इस प्रकार कर्ता में प्रयोग होने पर कर्ता उक्त होता है, अपादानादि अनुक्त होते हैं। इस प्रकार अनुक्त अपादान सर्प में 'अपादाने पञ्चमी' इस सूत्र से पञ्चमी होती है और उक्त कर्ता में प्रथमा होती है। इस प्रकार 'माता बालं सर्पात् रक्षति' यह वाक्य सिद्ध होता है।

ईश्वरात् जगत् जायते। इस वाक्य में ईश्वर अपादान है और वह अनुक्त है क्योंकि यह कर्ता में प्रयोग है। कारण यह है कि 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' इस सूत्र से जन् धातु की विवक्षा से कर्ता में लकार का प्रयोग हुआ है। उसके स्थान पर तिङ् भी कर्ता में ही हुआ है। और इस प्रकार कर्ता में प्रयोग होने पर कर्ता उक्त होता है, अपादानादि अनुक्त होते हैं। इस प्रकार अनुक्त अपादान ईश्वर में 'अपादाने पञ्चमी' इस सूत्र से पञ्चमी होती है और उक्त कर्ता में प्रथमा होती है। इस प्रकार 'ईश्वरात् जगत् जायते' यह वाक्य सिद्ध होता है।

माणवकः गुरोः वेदं पठति। इस वाक्य में गुरु अपादान है और वह अनुक्त है क्योंकि यह कर्ता में प्रयोग है। कारण यह है कि 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' इस सूत्र से पठ् धातु की विवक्षा से कर्ता में लकार का प्रयोग हुआ है। उसके स्थान पर तिङ् भी कर्ता में ही हुआ है। और इस प्रकार कर्ता में प्रयोग होने पर कर्ता उक्त होता है, अपादानादि अनुक्त होते हैं। इस प्रकार अनुक्त अपादान गुरु में 'अपादाने

ध्यान दें:

पञ्चमी' इस सूत्र से पञ्चमी होती है और उक्त कर्ता में प्रथमा होती है। इस प्रकार 'माणवकः गुरोः वेदं पठति' यह वाक्य सिद्ध होता है।

पाठगत प्रश्न-1

यहां कुछ पाठगत प्रश्न दिये गये हैं।

1. ध्रुवमपायेऽपादानम् इस सूत्र में ध्रुवपद का क्या अर्थ है?
2. ध्रुवमपायेऽपादानम् इस सूत्र में अपाय क्या है?
3. ध्रुवमपायेऽपादानम् इस सूत्र से क्या होता है?
4. भीत्रार्थानां भयहेतुः इस सूत्र में भयहेतुः इस पद का क्या अर्थ है?
5. भयहेतुः यहां कौन-सा समास है?
6. जनिकर्तुः प्रकृतिः इस सूत्र में जनिकर्तुः इस पद का क्या अर्थ है?
7. जनिकर्तुः प्रकृतिः इस सूत्र में प्रकृति इस पद का क्या अर्थ है?
8. आख्यातोपयोगे इस सूत्र में आख्याता इस पद का क्या अर्थ है?
9. आख्यातोपयोगे इस सूत्र में उपयोग पद का क्या अर्थ है?

अथ षष्ठी कारक विभक्तिः

23.6 कर्तृकर्मणोः कृति॥ (2.3.65)

सूत्रार्थ- कृदन्तपद से वाच्य क्रिया के अनुक्त कर्ता में षष्ठी विभक्ति होती है। कृदन्तपद से वाच्य क्रिया के अनुक्त कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है।

सूत्रावतरण- कृष्णस्य कृतिः यहां कर्ता में षष्ठी विभक्ति है। और 'संसारस्य कर्ता कृष्णः' यहां कर्म में षष्ठी विभक्ति है। परन्तु कर्ता वा कर्म में कौन से सूत्र से षष्ठी विभक्ति होती है इस की जिज्ञासा में 'कर्तृकर्मणोः कृति' यह सूत्र आता है।

सूत्र व्याख्या- यह विधि सूत्र है। यह सूत्र षष्ठी का विधान करता है। इस सूत्र में दो पद हैं। कर्तृकर्मणोः यह षष्ठी द्विवचनान्त पद है। कृति यह सप्तमी एकवचनान्त पद है। इस सूत्र में 'षष्ठी शेषे से षष्ठी इस पद की अनुवृत्ति आती है। अनभिहिते इसका अधिकार यहां आता है। कृत्प्रत्ययों के योग में अनभिहित कर्ता व कर्म में षष्ठी होती है, यह वाक्य योजना है। यहां कर्तृकर्मणोः इस पद में इतरेतर योग द्वन्द्व समास है। और उसका विग्रह इस प्रकार है- 'कर्ता च कर्म च इति कर्तृकर्मणी, तयोः कर्तृकर्मणोः।' षष्ठी इसका षष्ठी विभक्ति यह अर्थ है। कृति इसका कृदन्त पद से वाच्य क्रिया का यह अर्थ है। अनभिहिते इसका अनुक्त हाने पर यह अर्थ है। अतः सूत्रार्थ होता है - कृदन्तपद से वाच्य क्रिया के अनुक्त कर्ता में षष्ठी विभक्ति होती है। कृदन्तपद से वाच्य क्रिया के अनुक्त कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है।

ध्यान दें:

उदाहरणम् - कृष्णस्य कृतिः। कृष्णः जगतः कर्ता।

सूत्रार्थ समन्वय- कृष्णस्य कृतिः। इस उदाहरण में कृतिः यह कृदन्तपद है। और उसके द्वारा वाच्य करणरूप क्रिया है। उस क्रिया का कर्ता है कृष्ण। इस प्रकार प्रकृति से वह अनुक्त है। क्योंकि कृतिः यहां कृधातु से भाव अर्थ में क्तिन् प्रत्यय हुआ है। अतः भाव उक्त है। और कर्ता अनुक्त है। यहां 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' इस सूत्र से कर्ता में तृतीया प्राप्त है। उसको परत्वात् बाध कर 'कर्तृकर्मणोः कृतिः' इस सूत्र से कृदन्त कृतिपद से वाच्य क्रिया के अनुक्त कर्ता कृष्ण में षष्ठी विभक्ति सिद्ध होती है। उससे 'कृष्णस्य कृतिः' यह प्रयोग सिद्ध होता है।

कृष्णः जगतः कर्ता। इस उदाहरण में कर्ता यह कृदन्त पद है। और उसके द्वारा वाच्य करणरूप क्रिया है। उस क्रिया का कर्ता है कृष्ण। कर्म है जगत। कर्ता यहां कृधातु से ण्वुल्तृचौ सूत्र से कर्ता में तृच् प्रत्यय हुआ है। अतः कर्ता उक्त है। और कर्म अनुक्त है। और यहां अनुक्त कर्म में 'कर्मणि द्वितीया' इस सूत्र से द्वितीया प्राप्त है। उसको परत्वात् बाध कर 'कर्तृकर्मणोः कृतिः' इस सूत्र से कृदन्त कृतिपद से वाच्य क्रिया के अनुक्त कर्म जगत में षष्ठी विभक्ति सिद्ध होती है। उससे 'कृष्णः जगतः कर्ता' यह प्रयोग सिद्ध होता है।

यहां यह विशेष है-

हमने पूर्व पाठों में द्विकर्मक धातु पढ़ी थी। जैसे- 'कृष्णः ग्रामम् अजां नयति' इत्यादि प्रयोगों में दो कर्म है। यहां 'कृष्णः ग्रामम् अजां नयति' यह वाक्य तो तिङन्त घटित है। किन्तु जब नयति इसके स्थान पर यदि नेता इस कृदन्त का प्रयोग होता है तब नेता इस कृदन्त के योग में 'कर्तृकर्मणोः कृति' इस सूत्र से षष्ठी विभक्ति प्राप्त होती है। वहां नेता इस पद में तृच् प्रत्यय कर्ता में है। अतः कर्ता तो अभिहित है। उससे अभिहित कर्ता में तो प्रथमा होनी चाहिये। किन्तु कर्म अनभिहित है। और इस प्रकार इस वाक्य में दो कर्म हैं। अतः प्रकृत उदाहरण में प्रश्न समुदित होता है कि दोनों कर्म में षष्ठी होगी अथवा एक ही कर्म में षष्ठी होगी। तब यहां कहा जाता है मुख्य कर्म में तो नित्य षष्ठी होगी किन्तु गौण कर्म में विकल्प से षष्ठी होगी। उससे 'कृष्णः ग्रामस्य अजायाः नेता' यह भी वाक्य बनता है। और इस प्रकार 'कृष्णः ग्रामम् अजायाः नेता' यह वाक्य भी बनता है। इस तरह अन्य द्विकर्मक धातुओं के विषय में जानना चाहिये।

23.7 उभयप्राप्तौ कर्मणि॥ (2.3.66)

सूत्रार्थ- जहां जो कृदन्तपद से वाच्य क्रिया के अनुक्त कर्ता व कर्म में जहां एक साथ षष्ठी प्राप्त है वहां कर्म में ही षष्ठी विभक्ति होती है न कि कर्ता में।

सूत्रावतरण- 'कर्तृकर्मणोः कृति' इस सूत्र से अनभिहित कर्ता व कर्म में षष्ठी विभक्ति का विधान किया गया है। और 'कृष्णेन गवां दोहः' यहां दोह यह कृदन्त शब्द है। दोह यहां भाव अर्थ में घञ् प्रत्यय है। अतः यहां कर्ता भी अनभिहित है व कर्म भी अनभिहित है। और इस प्रकार प्रकृत वाक्य में कर्ता में भी षष्ठी होनी चाहिये व कर्म में भी षष्ठी होनी चाहिये। इससे 'कृष्णस्य गवां दोहः' यह अनिष्टप्रयोग बन जायेगा। किन्तु 'कृष्णेन गवां दोहः' यही प्रयोग बनेगा। परन्तु यह कैसे होता है यह बतलाने के लिये 'उभयप्राप्तौ कर्मणि' यह सूत्र बनाया गया है।

सूत्र व्याख्या- यह नियम सूत्र है। यह सूत्र 'कर्तृकर्मणोः कृति' इस सूत्र को नियमित करता है। इस सूत्र में दो पद है। उभयप्राप्तौ यह सप्तमी एकवचनान्त पद है। कर्मणि यह सप्तमी एकवचनान्त पद है। इस सूत्र में षष्ठी शेषे इस सूत्र से षष्ठी इस पद की अनुवृत्ति आती है। अनभिहिते (7/1) इसका

ध्यान दें:

अधिकार भी यहां आता है। 'दोनों में प्राप्त होने पर अनभिहित कर्म में षष्ठी होती है यह वाक्य योजना है। यहां उभय प्राप्तौ इस पद में बहुव्रीहि समास है। और उसका विग्रह यह है 'उभयो: प्राप्ति: यस्मिन् कृति इति उभय प्राप्ति:। तस्मिन् उभय प्राप्तौ कृति। इस प्रकार इसका अर्थ होता है- कि कृदन्तपद से वाच्य क्रिया के कर्ता व कर्म में एक साथ प्राप्त होने पर। षष्ठी इसका षष्ठी विभक्ति यह अर्थ है। अनभिहिते इसका अनुक्त होने पर यह अर्थ है। अत: सूत्रार्थ होता है- जहां जो कृदन्तपद से वाच्य क्रिया के अनुक्त कर्ता व कर्म में जहां एक साथ षष्ठी प्राप्त है वहां कर्म में ही षष्ठी विभक्ति होती है न कि कर्ता में।

उदाहरण-कृष्णेन गवां दोह:।

सूत्रार्थ समन्वय- कृष्णेन गवां दोह:। इस उदाहरण में दोह यह कृदन्तपद है। और उसके द्वारा वाच्य दोहनरूप क्रिया है। उस क्रिया का कर्ता है कृष्ण। कर्म है गौ। दोह यहां दुह धातु से भावे सूत्र से भाव अर्थ में घञ् प्रत्यय हुआ है। अत: भाव उक्त है। और कर्ता अनुक्त है और कर्म भी अनुक्त है। इस प्रकार कृदन्त दोह पद से वाच्य क्रिया के अनुक्त कर्ता कृष्ण व कर्म गौ में एक साथ कर्तृकर्मणो: कृति इस सूत्र से षष्ठी प्राप्त थी, तब यह सूत्र आता है। इस नियम से केवल कर्म में ही षष्ठी विभक्ति होती है। कर्ता में षष्ठी नहीं होती है। तब अनभिहित कर्ता में 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' इस सूत्र से तृतीया विभक्ति होती है। उससे 'कृष्णेन गवां दोह:' यह प्रयोग सिद्ध होता है। इसी तरह अन्य उदाहरणों में समझना चाहिये।

यहां यह विशेष है-

उभयप्राप्तौ कर्मणि इस सूत्र से जो नियम किया जाता है वह नियम वैकल्पिक है। तत: जहां कर्ता वा कर्म में एक साथ षष्ठी विभक्ति प्राप्त है, वहां उभयत्र षष्ठी की जा सकती है। अथवा केवल कर्म में ही षष्ठी विभक्ति की जा सकती है। उससे 'कृष्णस्य गवां दोह:' यह भी कहा जा सकता है।

23.8 कृत्यानां कर्तरि वा॥ (2.3.71)

सूत्रार्थ- कृत्यसंज्ञक प्रत्ययान्तपद की क्रिया के अर्थ के अनुक्त कर्ता में विकल्प से षष्ठी विभक्ति होती है।

सूत्रावतरण- कर्तृकर्मणो: कृति इस सूत्र से अनभिहित कर्ता वा कर्म में षष्ठी विभक्ति का विधान किया गया है। अत: 'मया सेव्य: हरि:' इत्यादि में सेव्य इस कृदन्त प्रयोग में अनभिहित कर्ता में षष्ठी होनी चाहिये। तत: 'मम सेव्य: हरि:' यही प्रयोग बनना चाहिये। किन्तु 'मम सेव्य: हरि:, मया सेव्य: हरि:' ये उभयविध प्रयोग बनते हैं। परन्तु इस प्रकार का प्रयोग कैसे बनता है यह जिज्ञासा होती है। उसकी शान्ति के लिये 'कृत्यानां कर्तरि वा' यह सूत्र आता है।

सूत्र व्याख्या- यह विधि सूत्र है। यह सूत्र षष्ठी का विधान करता है। इस सूत्र में तीन पद हैं। कृत्यानाम् यह षष्ठी बहुवचनान्त पद है। कर्तरि यह सप्तमी एकवचनान्त पद है। वा यह अव्ययपद है। इस सूत्र में 'षष्ठी शेषे से षष्ठी इस पद की अनुवृत्ति आती है। अनभिहिते इसका अधिकार यहां आता है। कृत्प्रत्ययों के योग में कर्ता में षष्ठी होती है, यह वाक्य योजना है। कृत्यानाम् इसका कृत्यसंज्ञक प्रत्ययान्त पद से वाच्य क्रिया का यह अर्थ है। अत: सूत्रार्थ होता है- कृत्यसंज्ञक प्रत्ययान्त पद से वाच्य क्रिया के अनुक्त कर्ता में विकल्प से षष्ठी विभक्ति होती है।

उदाहरण - मम सेव्य: हरि:, मया सेव्य: हरि:।

सूत्रार्थ समन्वय- मम सेव्य: हरि:, मया सेव्य: हरि:। यहां सेव् इस धातु से ऋहलोर्ण्यत् इस सूत्र

ध्यान दें:

से कर्म में ण्यत् प्रत्यय करने पर सेव्य यह शब्द सिद्ध होता है। ण्यत् प्रत्यय कृत्यसंज्ञक है। अत: सेव्य: यह कृत्यसंज्ञकप्रत्ययान्तपद है। उसके द्वारा वाच्य सेवनरूप क्रिया है। उस क्रिया का कर्ता होता है मैं (शिव)। और कर्म होता है हरि। वहां सेव्य इस पद में कर्म अर्थ में ण्यत् प्रत्यय है। अत: कर्म उक्त है, और कर्ता अनुक्त है। इस प्रकार अनुक्त कर्ता में 'कर्तृकर्मणो: कृति' इस सूत्र से नित्य षष्ठी प्राप्त है। उसको बांधकर 'कृत्यानां कर्तरि वा' इस सूत्र से विकल्प से षष्ठी होती है। इससे मम सेव्य: हरि: यह प्रयोग सिद्ध होता है। और जब षष्ठी नहीं होती है, तो उसके अभाव में कर्तृकरणयोस्तृतीया इस सूत्र से तृतीया होती है। अत: 'मया सेव्य: हरि:' यह प्रयोग बनता है।

23.9 न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्।। (2.3.68)

सूत्रार्थ:- लादेश हुए प्रत्ययान्त पद के योग में उप्रत्ययान्त के योग में उकप्रत्ययान्त के योग में कृत और अव्यय के योग में क्त प्रत्ययान्त के योग में क्तवतु प्रत्ययान्त के योग में खलर्थक प्रत्ययान्त के योग में और तृन् प्रत्ययान्त के योग में अनभिहित कर्ता व कर्म में षष्ठी नहीं होती है।

सूत्रावतरण- कर्तृकर्मणो: कृति इस सूत्र से अनभिहित कर्ता व कर्म में षष्ठी विभक्ति का विधान किया। और 'हरि: सृष्टिं कुर्वन्' यहां कुर्वन् इसके योग में अनभिहित सृष्टि रूप कर्म में षष्ठी होनी चाहिये। फिर भी यहां द्वितीया कैसे हुई। इसी तरह 'विष्णुना हता: दैत्या:' यहां हत इस कृदन्त प्रयोग में अनभिहित कृष्ण रूप कर्ता में षष्ठी होनी चाहिये। यहां तृतीया कैसे हुई। यह जिज्ञासा मन में होती है। उसकी शान्ति के लिये 'न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्' यह सूत्र बनाया गया।

सूत्र व्याख्या- यह निषेध सूत्र है। यह सूत्र षष्ठी का निषेध करता है। इस सूत्र में दो पद हैं। न यह अव्यय पद है। लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् यह षष्ठीबहुवचनान्त पद है। इस सूत्र में 'षष्ठी शेषे से षष्ठी इस पद की अनुवृत्ति आती है। अनभिहिते इसका अधिकार यहां आता है। लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् इस पद में इतरेतर योग द्वन्द्व समास है और इसका विग्रह इस तरह है- लश्च उश्च उकश्च अव्यय ञ्च निष्ठा च खलर्थश्च तृन् च इति लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृन:। तेषां लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्। यहां लादेश से ल के स्थान पर होने वाले शतृ और शानच का ग्रहण है। अत: ल इसका अर्थ होता है शतृ प्रत्ययान्त और शानच् प्रत्ययान्त। उ इससे उकारान्त प्रत्ययान्त शब्द गृहीत है। अव्यय इस पद से कृदन्त अव्यय शब्दों का ग्रहण है। निष्ठा इस पद से क्त प्रत्ययान्त शब्द और क्तवतु प्रत्ययान्त शब्द विवक्षित है। खलर्थ इस पद से खलर्थक प्रत्ययान्त शब्द विवक्षित है। तृन् इस पद से तृन् प्रत्ययान्त शानन् प्रत्ययान्त चानश् -प्रत्ययान्त व शतृ प्रत्ययान्त विवक्षित हैं।

सूत्रार्थ विचार- लादेश हुए प्रत्ययान्त पद के योग में उप्रत्ययान्त के योग में उकप्रत्ययान्त के योग में कृत और अव्यय के योग में क्त प्रत्ययान्त के योग में क्तवतु प्रत्ययान्त के योग में खलर्थक प्रत्ययान्त के योग में और तृन् प्रत्ययान्त के योग में अनभिहित कर्ता व कर्म में षष्ठी नहीं होती है।

उदाहरण- हरि: सृष्टिं कुर्वन। हरि: सृष्टिं कुर्वाण:। भक्त: हरिं दिदृक्षु:। हरि: दैत्यान् घातुक:। हरि: संसारं सृष्ट्वा आस्ते। विष्णुना हता: दैत्या:। विष्णु: दैत्यान् हतवान्। हरिणा ईषत्कर: प्रपञ्च:। हरि: लोकान् कर्ता। इत्यादीनि सूत्रस्य अस्य उदाहरणानि भवन्ति। अत्र क्रमेण एतेषु उदाहरणेषु सूत्रार्थस्य समन्वय: प्रस्तूयते।

हरि: सृष्टिं कुर्वन्। यह लादेश से हुए शतृ प्रत्ययान्त के योग में षष्ठी निषेध का उदाहरण है। तथाहि यहां कुर्वन् यह शब्द कृ लट् इस स्थिति में लट के स्थान पर कर्ता अर्थ में शतृ यह आदेश होने पर विभक्ति कार्य करने पर सिद्ध होता है। उससे कुर्वन् यह शब्द लादेशभूत शतृ प्रत्ययान्त है। और इस

ध्यान दें:

प्रकार 'हरिः सृष्टिं कुर्वन्' यहां हरिः कर्ता है, और सृष्टि कर्म है। वहां शतृ प्रत्यय कर्ता में होता है अतः कर्ता तो अभिहित है। अतः वहां तो प्रथमा हुई। किन्तु कर्म अनभिहित है। अतः अनभिहित कर्म में 'कर्तृकर्मणोः कृति' इस सूत्र से षष्ठी प्राप्त है। उसका इस सूत्र से निषेध होता है। ततः 'कर्मणि द्वितीया' इस सूत्र से द्वितीया का विधान कर उक्त वाक्य सिद्ध होता है।

हरिः सृष्टिं कुर्वाणः। यह लादेश से हुए शानच् प्रत्ययान्त के योग में षष्ठी निषेध का उदाहरण है। तथाहि यहां कुर्वाणः यह शब्द कृ लट् इस स्थिति में लट के स्थान पर कर्ता अर्थ में शानच् यह आदेश होने पर विभक्ति कार्य करने पर सिद्ध होता है। उससे कुर्वाणः यह शब्द लादेशभूत शानच् प्रत्ययान्त है। और इस प्रकार 'हरिः सृष्टिं कुर्वाणः' यहां हरिः कर्ता है, और सृष्टि कर्म है। वहां शानच् प्रत्यय कर्ता में होता है अतः कर्ता तो अभिहित है। अतः वहां तो प्रथमा हुई। किन्तु कर्म अनभिहित है। अतः अनभिहित कर्म में 'कर्तृकर्मणोः कृति' इस सूत्र से षष्ठी प्राप्त है। उसका इस सूत्र से निषेध होता है। ततः 'कर्मणि द्वितीया' इस सूत्र से द्वितीया का विधान कर उक्त वाक्य सिद्ध होता है।

भक्तः हरिं दिदृक्षुः। यह लादेश से हुए उकारान्त प्रत्ययान्त के योग में षष्ठी निषेध का उदाहरण है। तथाहि यहां दिदृक्षु यह शब्द दिदृक्ष यह सन्नन्त धातु से 'सनाशंसभिक्ष उः' इस सूत्र से उ प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है। और दिदृक्षु यह शब्द उकारान्त प्रत्ययान्त है। और इस शब्द का अर्थ होता है दर्शन का इच्छुक। और इस प्रकार यहां दर्शनेच्छा रूप क्रिया का कर्ता भक्त है, और हरि कर्म है। वहां उ प्रत्यय कर्ता में होता है अतः कर्ता तो अभिहित है। अतः वहां तो प्रथमा हुई। किन्तु कर्म अनभिहित है। अतः अनभिहित कर्म में 'कर्तृकर्मणोः कृति' इस सूत्र से षष्ठी प्राप्त है। उसका इस सूत्र से निषेध होता है। ततः 'कर्मणि द्वितीया' इस सूत्र से द्वितीया का विधान कर उक्त वाक्य सिद्ध होता है।

हरिः दैत्यान् घातुकः। यह उकप्रत्ययान्त के योग में षष्ठी निषेध का उदाहरण है। तथाहि यहां घातुक यह शब्द हन् इस धातु से सन्नन्त धातु से 'लषपतपदस्थाभूवृषहनकमगमशृभ्यः उकञ्' इस सूत्र से कर्ता में उकञ् प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है। और घातुक यह शब्द उकप्रत्ययान्त है। और इस शब्द का अर्थ होता है हननकर्ता। वहां हनन क्रिया का कर्ता है हरि, और दैत्य कर्म है। वहां कर्ता अभिहित है। अतः वहां तो प्रथमा हुई। किन्तु कर्म अनभिहित है। अतः अनभिहित कर्म में 'कर्तृकर्मणोः कृति' इस सूत्र से षष्ठी प्राप्त है। उसका इस सूत्र से निषेध होता है। ततः 'कर्मणि द्वितीया' इस सूत्र से द्वितीया का विधान कर उक्त वाक्य सिद्ध होता है।

हरिः संसारं सृष्ट्वा आस्ते। यह कृत अव्यय के योग में षष्ठी निषेध का उदाहरण है। तथाहि यहां सृष्ट्वा यह शब्द सृज् इस धातु से क्त्वा प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है। और सृष्ट्वा यह शब्द कृदव्यय है। और इस शब्द का अर्थ होता है सर्जन। वहां हनन क्रिया का कर्ता है हरि, और संसार कर्म है। वहां आस्ते यहां तिङ् प्रत्यय है। वहां कर्ता अभिहित है। अतः वहां तो प्रथमा हुई। किन्तु कर्म अनभिहित है। अतः अनभिहित कर्म में 'कर्तृकर्मणोः कृति' इस सूत्र से षष्ठी प्राप्त है। उसका इस सूत्र से निषेध होता है। ततः 'कर्मणि द्वितीया' इस सूत्र से द्वितीया का विधान कर उक्त वाक्य 'हरिः संसारं सृष्ट्वा आस्ते' सिद्ध होता है।

विष्णुना दैत्याः हताः। यह क्तवतु प्रत्ययान्त के योग में षष्ठी निषेध का उदाहरण है। तथाहि यहां हत यह शब्द हन् इस धातु से कर्म में क्त प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है। और हत यह शब्द क्तवतु प्रत्ययान्त शब्द है। और इस शब्द का अर्थ होता है हननकर्म। वहां हनन क्रिया का कर्ता है विष्णु, और दैत्य कर्म है। वहां क्तवतु प्रत्यय से कर्म अभिहित है। अतः अभिहित कर्म में तो प्रथमा होती है। किन्तु कर्ता अनभिहित है। अतः अनभिहित कर्ता में 'कर्तृकर्मणोः कृति' इस सूत्र से षष्ठी प्राप्त है। उसका इस सूत्र से निषेध होता है। ततः 'कर्मणि द्वितीया' इस सूत्र से द्वितीया का विधान कर उक्त वाक्य सिद्ध होता है।

ध्यान दें:

विष्णुः दैत्यान् हतवान्। यह क्तवतुप्रत्ययान्त के योग में षष्ठीनिषेध का उदाहरण है। तथाहि यहां हतवान् यह शब्द हन् इस धातु से कर्ता में क्तवतु प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है। और हत यह शब्द क्तवतु प्रत्ययान्त शब्द है। और इस शब्द का अर्थ होता है हननकर्ता। वहां हनन क्रिया का कर्ता है विष्णु, और दैत्य कर्म है। वहां क्त प्रत्यय से कर्म अभिहित है। अतः अभिहित कर्ता में तो प्रथमा होती है। किन्तु कर्म अनभिहित है। अतः अनभिहित कर्म में 'कर्तृकर्मणोः कृति' इस सूत्र से षष्ठी प्राप्त है। उसका इस सूत्र से निषेध होता है। ततः 'कर्मणि द्वितीया' इस सूत्र से द्वितीया का विधान कर उक्त वाक्य सिद्ध होता है।

हरिणा ईषत्करः प्रपञ्चः। यह खलर्थक प्रत्ययान्त के योग में षष्ठी निषेध का उदाहरण है। तथाहि यहां ईषत्कर यह शब्द ईषत्कृ इस धातु से कर्म में 'ईषदुस्सुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्' इस सूत्र से खल् प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है। और ईषत्कर यह शब्द खलर्थक प्रत्ययान्त है। और इस शब्द का अर्थ होता है कृतिमान्। वहां कृतिरूप क्रिया का कर्ता है हरि, और प्रपञ्च कर्म है। वहां कर्म अभिहित है। अतः अभिहित कर्म में तो प्रथमा होती है। किन्तु कर्ता अनभिहित है। अतः अनभिहित कर्ता में 'कर्तृकर्मणोः कृति' इस सूत्र से षष्ठी प्राप्त है। उसका इस सूत्र से निषेध होता है। ततः 'कर्तृकरणयोः तृतीया' इस सूत्र से तृतीया का विधान कर उक्त वाक्य सिद्ध होता है।

लोकान् कर्ता हरिः। यहां कर्तृशब्द तृन् प्रत्ययान्त है। यह शब्द कृ इस धातु से तृन् इस सूत्र से कर्ता में तृन् प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है। और इस शब्द का अर्थ होता है उत्पत्तिजनक क्रियावान्। यहां क्रिया का कर्ता है हरि, कर्म है लोक। वहां तृन् प्रत्यय कर्ता में है अतः कर्ता तो अभिहित है। उससे अभिहित कर्ता में तो प्रथमा हुई। किन्तु कर्म अनभिहित है। अतः अनभिहित कर्म में 'कर्तृकर्मणोः कृति' इस सूत्र से षष्ठी प्राप्त है। उसका इस सूत्र से निषेध होता है। ततः 'कर्मणि द्वितीया' इस सूत्र से द्वितीया होती है। अतः 'लोकान् कर्ता हरिः' यह प्रयोग सिद्ध होता है।

पाठगत प्रश्न-2

यहां कुछ पाठगतप्रश्न दिये गये हैं।

10. उभयप्राप्तौ यहां कौन-सा समास है और क्या विग्रह है?

11. कर्तृकर्मणोः इस पद में कौन-सा समास है और विग्रह क्या है?

12. लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् यहां क्या समास है और उसका विग्रह क्या है?

13. न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् इस सूत्र में अव्ययपद से किन का ग्रहण है?

14. कृदन्तयोग में गौण कर्म में नित्य अथवा विकल्प से षष्ठी होती है?

अथ सप्तमी कारक विभक्तिः।

23.10 आधारोऽधिकरणम्॥ (1.4.45)

सूत्रार्थ- कर्ता के द्वारा व्यापार का आश्रय कारकसंज्ञक होता हुआ अधिकरणसंज्ञक होता है। कर्म के द्वारा फल का आश्रय कारकसंज्ञक होता हुआ अधिकरणसंज्ञक होता है।

सूत्रावतरण- संस्कृत भाषा में छः कारक होते हैं। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण। इनमें अधिकरण क्या होता है यह प्रतिपादित करने के लिये 'आधारोऽधिकरणम्' इस सूत्र को

ध्यान दें:

भगवान् पाणिनि ने बनाया है।

सूत्र व्याख्या- यह संज्ञा सूत्र है। यह सूत्र कारक संज्ञा व अधिकरण संज्ञा करता है। इस सूत्र में दो पद हैं। आधार: यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। अधिकरणम् यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। कारक इस सूत्र का यहां अधिकार आता है और उसका कारक यह अर्थ है। आधार कारकसंज्ञक होता हुआ अधिकरणसंज्ञक होता है यह वाक्य योजना है। यहां आधार इस पद का आश्रय यह अर्थ है और इस प्रकार सूत्रार्थ होता है- आश्रय की कारक संज्ञा होते हुए अधिकरण संज्ञा होती है। यहां किस के आश्रय की अधिकरण संज्ञा होती है तो कर्तृ द्वारा व्यापार का आश्रय, कर्म द्वारा फल का आश्रय जो है वही अधिकरणसंज्ञक होता है। और इस प्रकार निष्कर्षार्थ होता है- कर्ता के द्वारा व्यापार का आश्रय कारकसंज्ञक होता हुआ अधिकरणसंज्ञक होता है। कर्म के द्वारा फल का आश्रय कारकसंज्ञक होता हुआ अधिकरणसंज्ञक होता है।

अधिकरण औपश्लेषिक अभिव्यापक व वैषयिक भेद से तीन प्रकार का है। आधेय संयोगादिसम्बन्ध से जिस अधिकरण में रहता है वह अधिकरण औपश्लेषिक कहलाता है। आधेय सभी अवयवों की व्याप्ति से (आधेय आधार के सभी अवयवों में रहता है।) जिस अधिकरण में रहता है वह अधिकरण अभिव्यापक कहलाता है। आधेय विषयतासम्बन्ध से जिस अधिकरण में रहता है वह अधिकरण वैषयिक कहलाता है।

उदाहरणम्- चैत्रः कटे शेते। माता स्थाल्यां तण्डुलं पचति। चैत्रः पाकशालायां स्थाल्यां तण्डुलं पचति। तिलेषु तैलम् अस्ति। मोक्षे इच्छा अस्ति।

सूत्रार्थ समन्वय- चैत्रः कटे शेते। यहां वाक्य में कट अधिकरण है। अतः वहीं सूत्रार्थ का समन्वय किया जाता है। तथाहि यहां कर्ता है चैत्र। और वहां शयन रूप व्यापार है। अतः शयन रूप व्यापार का साक्षात् आश्रय चैत्र है और चैत्र का आश्रय कट है। इस प्रकार चैत्ररूपकर्ता के द्वारा शयनरूप व्यापार का आश्रय कट है। और कर्तृद्वारा व्यापार के आश्रय कट की आधारोऽधिकरणम् इस सूत्र से कारक संज्ञा होकर अधिकरण संज्ञा होती है। यहां आधेय चैत्र संयोग सम्बन्ध से कटरूप अधिकरण में रहता है। अतः यह अधिकरण औपश्लेषिक होता है।

माता स्थाल्यां तण्डुलं पचति। यहां वाक्य में स्थाली अधिकरण है। अतः वहीं सूत्रार्थ का समन्वय किया जाता है। तथाहि यहां कर्म है तण्डुल। और वहां विक्लित्तिरूप फल है। अतः विक्लित्तिरूप फल का आश्रय तण्डुल है और तण्डुल का आश्रय स्थाली है। इस प्रकार तण्डुलरूपकर्म के द्वारा विक्लित्तिरूप फल का आश्रय परम्परया स्थाली है। और कर्म द्वारा फल के आश्रयभूत स्थाली की आधारोऽधिकरणम् इस सूत्र से कारक संज्ञा होकर अधिकरण संज्ञा होती है। यहां आधेय तण्डुल संयोग सम्बन्ध से स्थालीरूप अधिकरण में रहता है। अतः यह अधिकरण औपश्लेषिक होता है।

चैत्रः पाकशालायां स्थाल्यां तण्डुलं पचति। यहां वाक्य में पाकशाला अधिकरण है और वह अधिकरण कैसे होती है तो कहा जाता है- यहां वाक्य में चैत्र कर्ता है। और उसमें पचन रूप व्यापार है एवं चैत्र पाकशाला में है। अतः चैत्ररूप कर्ता के द्वारा पचनरूप व्यापार का परम्परया आश्रय पाकशाला है। अतः उसकी आधारोऽधिकरणम् इस सूत्र से कारक संज्ञा होकर अधिकरण संज्ञा होती है।

इसी प्रकार यहां वाक्य में स्थाली अधिकरण है और वह अधिकरण कैसे होता है तो कहा जाता है- यहां वाक्य में तण्डुल कर्म है। और उसमें विक्लित्तिरूप फल है। अतः विक्लित्तिरूप फल का आश्रय तण्डुल है और तण्डुल स्थाली में है। और इस प्रकार तण्डुलरूपकर्म के द्वारा विक्लित्तिरूप फल का परम्परया आश्रय स्थाली है और कर्म द्वारा फल के आश्रयभूत स्थाली की आधारोऽधिकरणम् इस सूत्र से कारक संज्ञा हो कर अधिकरण संज्ञा होती है।

ध्यान दें:

यहां आधेय चैत्र संयोग सम्बन्ध से पाकाशालारूप अधिकरण में रहता है। अत: यह अधिकरण औपश्लेषिक होता है। और आधेय तण्डुल संयोग सम्बन्ध से स्थालीरूप अधिकरण में रहता है। अत: यह अधिकरण औपश्लेषिक है।

तिलेषु तैलम् अस्ति। यहां वाक्य में तिल अधिकरण है। अत: वहीं सूत्रार्थ का समन्वय किया जाता है। तथाहि यहां कर्ता है तैल। और वहां सत्तारूप व्यापार है। अत: सत्तारूप व्यापार का साक्षात् आश्रय तिल हैं। इस प्रकार कर्ता के द्वारा व्यापार के आश्रयभूत तिलों की आधारोऽधिकरणम् इस सूत्र से कारक संज्ञा होकर अधिकरण संज्ञा होती है। यहां आधेय तैल तिलों के सभी अवयवों में है। अत: तिलरूप अधिकरण अभिव्यापक होता है।

मोक्षे इच्छा अस्ति। यहां वाक्य में मोक्ष अधिकरण है। अत: वहीं सूत्रार्थ का समन्वय किया जाता है। तथाहि यहां कर्ता है इच्छा। और वहां सत्तारूप व्यापार है। अत: सत्तारूप व्यापार का साक्षात आश्रय इच्छा है। वहां इच्छा समवाय सम्बन्ध से इच्छावान पुरुष में रहती है। इसी प्रकार जिस विषय की इच्छा होती है उस विषय में इच्छा विषयतासम्बन्ध से रहती है। और यहां प्रकृत वाक्य में मोक्षविषयिणी इच्छा है। अत: विषयता सम्बन्ध से इच्छा का आश्रय मोक्ष है। और इस प्रकार इच्छारूप कर्ता के द्वारा व्यापार का आश्रय तिलों की आधारोऽधिकरणम् इस सूत्र से कारक संज्ञा होकर अधिकरण संज्ञा होती है। यहां आधेय इच्छा विषयता सम्बन्ध से मोक्ष में रहती है। अत: मोक्षरूप अधिकरण वैषयिक है।

23.11 सप्तम्यधिकरणे च।। (2.3.36)

सूत्रार्थ- अनुक्त अधिकरण में सप्तमी विभक्ति होती है।

सूत्र व्याख्या- यह विधि सूत्र है। यह सूत्र सप्तमी का विधान करता है। इस सूत्र में तीन पद हैं। सप्तमी यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। अधिकरणे यह सप्तमी एकवचनान्त पद है। यह अव्यय पद है। अनभिहिते इसका अधिकार यहां आता है। अनभिहित अधिकरण में सप्तमी विभक्ति होती है यह वाक्य योजना है। सप्तमी इसका सप्तमी विभक्ति यह अर्थ है। अनभिहिते इसका अनुक्त हाने पर यह अर्थ है। अत: सूत्रार्थ होता है- अनभिहित अधिकरण में सप्तमी विभक्ति होती है।

उदाहरण - तैलं तिलेषु अस्ति। चैत्र: कटे शेते। इच्छा मोक्षे अस्ति।

सूत्रार्थसमन्वय- चैत्र: कटे शेते। इस वाक्य में कट अधिकरण है। और वह अनुक्त है। क्योंकि यहां तिङ् कर्ता में प्रयुक्त हुआ है। अत: कर्ता उक्त होता है, और अधिकरण अनुक्त होता है। इस प्रकार अनुक्त अधिकरण कट में सप्तम्यधिकरणे च इस सूत्र से सप्तमी विभक्ति होती है।

तैलं तिलेषु अस्ति। इस वाक्य में तिल अधिकरण है। और वह अनुक्त है। क्योंकि यहां तिङ् कर्ता में प्रयुक्त हुआ है। अत: कर्ता उक्त होता है, और अधिकरण अनुक्त होता है। इस प्रकार अनुक्त अधिकरण तिल में सप्तम्यधिकरणे च इस सूत्र से सप्तमी विभक्ति होती है।

इच्छा मोक्षे अस्ति। इस वाक्य में मोक्ष अधिकरण है। और वह अनुक्त है। क्योंकि यहां तिङ् कर्ता में प्रयुक्त हुआ है। अत: कर्ता उक्त होता है, और अधिकरण अनुक्त होता है। इस प्रकार अनुक्त अधिकरण मोक्ष में सप्तम्यधिकरणे च इस सूत्र से सप्तमी विभक्ति होती है।

पाठ-23

कारक विभक्ति में पञ्चमी षष्ठी व सप्तमी

ध्यान दें:

पाठगत प्रश्न-3

यहां कुछ पाठगत प्रश्न दिए गये हैं।

15. आधारोऽधिकरणम् यह सूत्र क्या करता है?

16. अधिकरण कितने प्रकार का होता है?

17. औपश्लेषिक अधिकरण क्या है?

18. तिलेषु तैलमस्ति इस उदाहरण में कौन-सा अधिकरण है?

    1) औपश्लेषिक 2) वैषयिक 3) अभिव्यापक 4) समवायि

19. तिलेषु तैलमस्ति यहां किस सूत्र से सप्तमी होती है?

पाठ सार

यहां पाठ में अपादानसंज्ञाविधायक ध्रुवमपायेऽपादानम्, भीत्रार्थानां भयहेतुः, जनिकर्तुः प्रकृतिः, आख्यातोपयोगे इन सूत्रों की व्याख्या की गई है। उसके बाद अपादान में पञ्चमी विधायक सूत्र 'अपादाने पञ्चमी' इसकी व्याख्या है।

और इस प्रकार उसके बाद कारक षष्ठी विभक्ति का वर्णन है। वहां कारक षष्ठी विधायक 'कर्तृकर्मणोः कृति' इस सूत्र की सोदाहरण व्याख्या यहां है। पुनः 'कर्तृकर्मणोः कृति' इस सूत्र का नियामक सूत्र होता है 'उभयप्राप्तौ कर्मणि'। उसका व्याख्यान यहां है। इस प्रकार 'कृत्यानां कर्तरि वा' इति सूत्र की सोदाहरण व्याख्या है। पुनः कर्तृकर्मणोः कृति इसके निषेधक 'न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्' इस सूत्र की यहां व्याख्या है।

उसके बाद इस पाठ में अधिकरण संज्ञा विधायक 'आधारोऽधिकरणम्' इस सूत्र की व्याख्या है। पुनः सप्तमी विधायक 'सप्तम्यधिकरणे च' इस सूत्र की सोदाहरण व्याख्या है।

पाठान्त प्रश्न

1. ध्रुवमपायेऽपादानम् इति सूत्र की व्याख्या कीजिए।

2. भीत्रार्थानां भयहेतुः इति सूत्र की व्याख्या लिखिए।

3. जनिकर्तुः प्रकृतिः इति सूत्र की व्याख्या लिखिए।

4. आख्यातोपयोगे इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।

5. अपादाने पञ्चमी इस सूत्र की व्याख्या करिए।

6. पत्रं वृक्षात् पतति, माणवकः गुरोः वेदं पठति इन दोनों प्रयोगों की सिद्धि लिखिए।

7. सर्पः नकुलात् बिभेति, माता बालं सर्पात् रक्षति इन दोनों प्रयोगों की सिद्धि लिखिए।

8. कर्तृकर्मणोः कृति इस सूत्र का व्याख्यान कीजिए।

ध्यान दें:

9. उभयप्राप्तौ कर्मणि इस सूत्र का व्याख्यान कीजिए।
10. कृत्यानां कर्तरि वा इस सूत्र का व्याख्यान कीजिए।
11. न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् इस सूत्र का व्याख्यान कीजिए।
12. कृष्णस्य कृतिः इस प्रयोग की सिद्धि कीजिए।
13. संसारस्य कर्ता कृष्णः इस प्रयोग की सिद्धि कीजिए।
14. मम सेव्यः हरिः, मया सेव्यः हरिः इन दोनों प्रयोगों की सिद्धि लिखिए।
15. विष्णुना हताः दैत्याः यहां कर्ता में षष्ठी क्यों नहीं होती है प्रतिपादित कीजिए।
16. हरिः सृष्टिं कुर्वन् इस प्रयोग की सिद्धि लिखिए।
17. दैत्यान् घातुकः हरिः इस प्रयोग की सिद्धि लिखिए।
18. सप्तम्यधिकरणे च इस सूत्र की व्याख्या लिखिए।
19. चैत्रः पाकशालायां स्थाल्यां तण्डुलं पचति इस प्रयोग की सिद्धि करिए।
20. अधिकरण के भेदों को सोदाहरण उपस्थापित कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

यहां पूर्वोक्त प्रश्नों के उत्तर दिये गये हैं।

उत्तर-1

1. ध्रुवम् इसका धातुवाच्य विभाग का आश्रय यह अर्थ है।
2. अपाय इसका विभाग अर्थ है।
3. ध्रुवमपायेऽपादानम् इस सूत्र से अपादान संज्ञा होती है।
4. भयहेतुः इस पद का भयकारण यह अर्थ है।
5. भयहेतुः इति पद में भयस्य हेतुः यह षष्ठी तत्पुरुष समास है।
6. जनिकर्तुः इस पद का जायमान का यह अर्थ है।
7. प्रकृतिः इस पद का कारण अर्थ है।
8. आख्याता इस पद का वक्ता अर्थ है।
9. उपयोग अर्थात नियम पूर्वक विद्या स्वीकार करना।

उत्तर-2

10. उभयप्राप्तौ यहां बहुव्रीहि समास है। उभयोः प्राप्तिः यस्मिन् यह इसका विग्रह है।
11. कर्तृकर्मणोः इस पद में इतरेतर योग द्वन्द्व समास है। कर्ता च कर्म च इति कर्तृकर्मणी, तयोः कर्तृकर्मणोः यह विग्रह है।

ध्यान दें:

12. लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् यहां इतरेतर योग द्वन्द्व समास है। लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् इसका विग्रह होता है लश्च उश्च उकश्च अव्ययश्च निष्ठा च खलर्थश्च तृन् च इति लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनः। तेषां लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्।

13. न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् इस सूत्र में अव्ययपद से कृदव्ययों का ग्रहण है।

14. कृदन्त के योग में गौण कर्म में विकल्प से षष्ठी विभक्ति होती है।

उत्तर-3

15. आधारोऽधिकरणम् इस सूत्र से अधिकरण संज्ञा होती है।

16. औपश्लेषिक अभिव्यापक व वैषयिक ये अधिकरण के तीन भेद होते हैं।

17. आधेय संयोगादिसम्बन्ध से जिस अधिकरण में रहता है वह अधिकरण औपश्लेषिक कहलाता है।

18.3

19. सप्तम्यधिकरणे च।

ध्यान दें:

24

उप पद विभक्ति में द्वितीया तृतीया चतुर्थी व पञ्चमी

कारक प्रकरण के प्रारम्भ में यह प्रतिपादित है कि प्रथमा, द्वितीया आदि सात सुब् विभक्तियां होती हैं। पुनः सातों विभक्तियां कारक वा उपपद भेद से दो प्रकार की होती हैं। इस प्रकार सात कारक विभक्तियां व सात उपपद विभक्तियां होती हैं। वहां सात उपपद विभक्तियों में इस पाठ में उप पद द्वितीया विभक्ति उपपद तृतीया विभक्ति उप पद चतुर्थी विभक्ति और उप पद पञ्चमी विभक्ति का वर्णन किया जाता है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे-

- उपपद द्वितीया विभक्ति को जान पाने में;
- उपपद तृतीया विभक्ति को जान पाने में;
- उपपद चतुर्थी विभक्ति को जान पाने में;
- उपपद पञ्चमी विभक्ति को जान पाने में;
- वाक्यों में उपपद द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी व पञ्चमी विभक्ति के शुद्ध प्रयोग को जान पाने में;
- वाक्यों में उपपद द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी व पञ्चमी विभक्ति के प्रयोग जान पाने में सक्षम होंगे।

24.1 अन्तरान्तरेणयुक्ते॥ (2.3.4)

सूत्रार्थ- अन्तरायुक्त अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से द्वितीया विभक्ति होती है। अन्तरेणयुक्त अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से द्वितीया विभक्ति होती है।

सूत्रावतरण- रामं लक्ष्मणं च अन्तरा सीता अस्ति, हरिम् अन्तरेण सुखं नास्ति, इत्यादि में रामादि शब्द से किस सूत्र से द्वितीया विभक्ति होती है। यहां 'कर्मणि द्वितीया' इस सूत्र से द्वितीया नहीं हो सकती है अस्-धातु के अकर्मकत्व से उसके योग में कर्मत्व के असम्भव होने के कारण। अतः इस तरह के

ध्यान दें:

वाक्यों में द्वितीया के विधान के लिये भगवान् पाणिनि ने अन्तरान्तरेणयुक्ते यह सूत्र बनाया है। उसी का ही व्याख्यान यहां प्रस्तुत किया जाता है।

सूत्र व्याख्या- यह विधि सूत्र है। यह सूत्र द्वितीया विभक्ति का विधान करता है। इस सूत्र में एक पद है। अन्तरान्तरेणयुक्ते यह सप्तमी एकवचनान्त पद है। इस सूत्र में कर्मणि द्वितीया इस सूत्र से द्वितीया इस पद की अनुवृत्ति आती है। अन्तरान्तरेणयुक्ते यहां द्वन्द्व गर्भ तृतीया तत्पुरुष समास है जिसका विग्रह इस तरह है- अन्तरा च अन्तरेण च अन्तरान्तरेणौ, ताभ्यां युक्तम् इति अन्तरान्तरेणयुक्तम्, तस्मिन् अन्तरान्तरेणयुक्ते। अन्तरा व अन्तरेण के योग में द्वितीया विभक्ति होती है यह वाक्य योजना है। यहां अन्तरान्तरेणयुक्ते इसका अर्थ अन्तरा से युक्त अर्थ और अन्तरेण से युक्त है। यहां विद्यमान पद का अध्याहार किया जाता है। अत: सूत्रार्थ होता है- अन्तरायुक्त अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से द्वितीया विभक्ति होती है। अन्तरेणयुक्त अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से द्वितीया विभक्ति होती है।

उदाहरण - रामं लक्ष्मणं च अन्तरा सीता अस्ति। हरिम् अन्तरेण सुखं नास्ति।

सूत्रार्थ समन्वय- रामं लक्ष्मणं च अन्तरा सीता अस्ति। यहां वाक्य में अन्तरा शब्द का प्रयोग है। यहां अन्तरा शब्द का अर्थ होता है मध्य में। यहां लक्ष्मण और राम के मध्य सीता है यह प्रकृत वाक्य का अर्थ है। यहां अन्तरापद का मध्यरूप अर्थ के साथ युक्त अर्थ है। राम: लक्ष्मणश्च। अत: रामशब्द व लक्ष्मण शब्द से इस सूत्र से द्वितीया विभक्ति होती है। उससे रामं लक्षणं च अन्तरा सीता अस्ति यह प्रयोग सिद्ध होता है।

हरिम् अन्तरेण सुखं नास्ति। यहां वाक्य में अन्तरेणशब्द का प्रयोग है। अन्तरेणशब्द का अर्थ होता है विना। उससे हरिं विना सुखं नास्ति यह प्रकृत वाक्य का अर्थ होता है। और इस प्रकार अन्तरेणपद का विनारूप अर्थ के साथ युक्त अर्थ है हरि। अत: हरि शब्द से इस सूत्र से द्वितीया विभक्ति होती है। अत: 'हरिम् अन्तरेण सुखं नास्ति' यह प्रयोग सिद्ध होता है।

24.2 कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे।। (2.3.5)

सूत्रार्थ- काल व मार्ग का द्रव्य, गुण व क्रिया के साथ अत्यन्तसंयोग होने पर कालवाचक व अध्ववाचक शब्द से द्वितीया विभक्ति होती है।

सूत्रावतरण- मासं गुडधाना: सन्ति, क्रोशं गिरि: अस्ति इत्यादि में मासादि शब्द से किस सूत्र से द्वितीया होती है। यहां कर्मणि द्वितीया इस सूत्र से द्वितीया नहीं हो सकती है। अस् -धातु के अकर्मकत्व से उसके कर्मत्व के असम्भव होने के कारण। अत: इस प्रकार के वाक्यों में द्वितीया के विधान के लिये भगवान् पाणिनि ने 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' इस सूत्र को बनाया। उसी का यहां व्याख्यान प्रस्तुत किया जा रहा है।

सूत्र व्याख्या- यह विधि सूत्र है। यह सूत्र द्वितीया विभक्ति का विधान करता है। इस सूत्र में दो पद हैं। कालाध्वनो: यह षष्ठी द्विवचनान्त पद है। अत्यन्तसंयोगे यह सप्तमी एकवचनान्त पद है। इस सूत्र में कर्मणि द्वितीया इस सूत्र से द्वितीया इस पद की अनुवृत्ति आती है। कालाध्वनो: यहां इतरेतर योग द्वन्द्व समास है जिसका विग्रह इस तरह है- कालश्च अध्वा च इति कालाध्वानौ। तयो: कालाध्वनो:। अत्यन्तसंयोगे यह पद भी समस्त है इसमें कर्मधारय समास है। इसका विग्रह इस तरह होता है- अतिशयित: संयोग: इति अत्यन्तसंयोग:। तस्मिन् अत्यन्त संयोगे। काल और अध्ववाची पदों के अत्यन्त संयोग होने पर द्वितीया विभक्ति होती है यह वाक्य योजना है। यहां काल और अध्ववाची पदों का किन के साथ अत्यन्त

ध्यान दें:

संयोग होता है ऐसी जिज्ञासा होने पर द्रव्य, गुण, क्रिया के साथ यह अर्थ प्राप्त होता है। और द्वितीया किस से होती है ऐसी जिज्ञासा होने पर काल वाचक और अध्व वाचक पदों से यह अवगमन होता है। अत: सूत्रार्थ होता है- काल व मार्ग का द्रव्य, गुण व क्रिया के साथ अत्यन्त संयोग होने पर काल वाचक व अध्व वाचक शब्द से द्वितीया विभक्ति होती है।

उदाहरण- मासं गुडधाना: भवन्ति। राम: मासं सुखी भवति। छात्र: मासं पठति। क्रोशं गिरि: अस्ति। क्रोशं कुटिला नदी अस्ति। छात्र: क्रोशं पठति।

सूत्रार्थ समन्वय- मासं गुडधाना: भवन्ति। यहां मास काल है, गुडधान द्रव्य है। गुडधान का अर्थ गुड और धान्य से युक्त खाद्य पदार्थ विशेष। और वर्ष में किसी मास में प्रतिदिन गुडधान भोजन के लिये होते हैं यह वाक्य का तात्पर्य है। अत: यहां काल व मास का द्रव्य गुडधान के साथ अत्यन्त संयोग है ऐसा प्रतीत होता है। अत: यहां काल वाचक मास शब्द से द्वितीया विभक्ति हुई। उससे 'मासं गुडधाना: भवन्ति' यह सिद्ध होता है।

राम: मासं सुखी भवति। यहां मास काल है, सुख गुण है। और इस प्रकार वर्ष में किसी मास में राम नामक कोई व्यक्ति सुखी रहता है, यह वाक्य का तात्पर्य है। अत: यहां काल मास का सुख गुण के साथ गुडधान के साथ अत्यन्त संयोग है ऐसा प्रतीत होता है। अत: यहां काल वाचक मास शब्द से द्वितीया विभक्ति हुई। उससे 'राम: मासं सुखी भवति' यह सिद्ध होता है।

छात्र: मासं पठति। यहां मास काल है, पठन क्रिया है। और इस प्रकार वर्ष में परीक्षा काल के मास में कोई छात्र सम्पूर्ण मास पढ़ता है, यह वाक्य का तात्पर्य है। अत: यहां काल मास का पठन रूप क्रिया के साथ अत्यन्त संयोग है ऐसा प्रतीत होता है। अत: यहां काल वाचक मास शब्द से द्वितीया विभक्ति हुई। उससे 'छात्र: मासं पठति' यह सिद्ध होता है।

क्रोशं गिरि: अस्ति। यहां क्रोश अध्वा (पन्था या मार्ग) है, गिरि द्रव्य है। क्रोश परिमाणात्मक गिरि यह इस वाक्य का तात्पर्य है। अत: यहां मार्ग क्रोश का द्रव्य गिरि के साथ अत्यन्त संयोग है ऐसा प्रतीत होता है। अत: यहां मार्गवाची क्रोश शब्द से द्वितीया विभक्ति हुई। उससे 'क्रोशं गिरि: अस्ति' यह सिद्ध होता है।

क्रोशं कुटिला नदी अस्ति। यहां क्रोश अध्वा (पन्था या मार्ग) है, कौटिल्य गुण है। यहां क्रोश तक नदी कौटिल्य गुण से युक्त है यह इस वाक्य का तात्पर्य है। अत: यहां मार्ग क्रोश का कौटिल्य गुण के साथ अत्यन्त संयोग है ऐसा प्रतीत होता है। अत: यहां मार्गवाची क्रोश शब्द से द्वितीया विभक्ति हुई। उससे 'क्रोशं कुटिला नदी' यह सिद्ध होता है।

छात्र: क्रोशं पठति। यहां क्रोश अध्वा (पन्था या मार्ग) है, पठन क्रिया है। और इस प्रकार वर्ष में परीक्षा काल में कोई छात्र जब परीक्षा देने जाता है तब क्रोश तक पढ़ता हुआ जाता है यह वाक्य का तात्पर्य है। अत: यहां अध्व क्रोश का पठन रूप क्रिया के साथ अत्यन्त संयोग है ऐसा प्रतीत होता है। अत: यहां अध्ववाचक क्रोश शब्द से द्वितीया विभक्ति हुई। उससे 'छात्र: क्रोशं पठति' यह सिद्ध होता है।

उभसर्वतसो: कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु।

द्वितीयाम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते॥ (वार्तिक)

वार्तिकार- उभयत: इसके योग में द्वितीया करनी चाहिये। सर्वत: इसके योग में द्वितीया करनी चाहिये। धिक् इसके योग में द्वितीया करनी चाहिये। ऊपर इसके योग में द्वितीया करनी चाहिये। अध्यधि

पाठ-24

उप पद विभक्ति में द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी व पञ्चमी

ध्यान दें:

इसके योग में द्वितीया करनी चाहिये। अधोऽध: इसके योग में द्वितीया करनी चाहिये। एवं कहीं कहीं इन शब्दों के प्रयोग न होने पर भी शिष्ट प्रयोग की सिद्धि के लिये द्वितीया करनी चाहिए।

उदाहरण- ग्रामम् उभयत: नदी अस्ति। कृष्णं सर्वत: गोपा: सन्ति। चौरं धिक्। लोकम् उपर्युपरि हरि: अस्ति। लोकम् अध्यधि हरि: अस्ति। लोकम् अधोऽध: हरि: अस्ति। कृष्णम् ऋते सुखं नास्ति।

ग्रामम् उभयत: नदी अस्ति। यह उभयत: इसके योग में द्वितीया विभक्ति का उदाहरण है। यहां उभयत: इस शब्द का प्रयोग है। और उसके प्रयोग में किसी अन्य सूत्र व वार्तिक से द्वितीया प्राप्त नहीं थी अपि तु 'षष्ठी शेषे' इस सूत्र से षष्ठी विभक्ति प्राप्त थी किन्तु वार्तिककार ने उभयत: इसके प्रयोग में द्वितीया विधायक वार्तिक बनाया। अत: 'षष्ठी शेषे' इस सूत्र को बाध कर इस वार्तिक से द्वितीया का विधान होता है। उससे 'ग्रामम् उभयत: नदी अस्ति' यह वाक्य सिद्ध होता है। यहां उभयत: इस शब्द का पार्श्व के दोनों ओर यह अर्थ है। और इस प्रकार इस वाक्य का ग्राम के दोनों ओर नदी है यह अर्थ होता है।

कृष्णं सर्वत: गोपा: सन्ति। यह सर्वत: इसके योग में द्वितीया विभक्ति का उदाहरण है। यहां सर्वत: इस शब्द का प्रयोग है। और उसके प्रयोग में किसी अन्य सूत्र या वार्तिक से द्वितीया प्राप्त नहीं थी अपितु 'षष्ठी शेषे' इस सूत्र से षष्ठी विभक्ति प्राप्त थी किन्तु वार्तिककार ने सर्वत: इसके प्रयोग में द्वितीया विधायक वार्तिक बनाया। अत: 'षष्ठी शेषे' इस सूत्र को बाध कर इस वार्तिक से द्वितीया का विधान होता है। उससे 'कृष्णं सर्वत: गोपा: सन्ति' यह वाक्य सिद्ध होता है। यहां सर्वत: इस शब्द का चारों ओर यह अर्थ है। और इस प्रकार इस वाक्य का कृष्ण के चारों ओर गोप हैं यह अर्थ होता है।

चौरं धिक्। यह धिक् इसके योग में द्वितीया विभक्ति का उदाहरण है। यहां धिक् इस शब्द का प्रयोग है। और उसके प्रयोग में किसी अन्य सूत्र व वार्तिक से द्वितीया प्राप्त नहीं थी अपि तु 'षष्ठी शेषे' इस सूत्र से षष्ठी विभक्ति प्राप्त थी किन्तु वार्तिककार ने धिक् इसके प्रयोग में द्वितीया विधायक वार्तिक बनाया। अत: 'षष्ठी शेषे' इस सूत्र को बाध कर इस वार्तिक से द्वितीया का विधान होता है। उससे 'चौरं धिक्' यह वाक्य सिद्ध होता है। यहां धिक् इस शब्द का निन्दा यह अर्थ है। और इस प्रकार इस वाक्य का चौर की निन्दा यह अर्थ होता है।

लोकम् उपर्युपरि हरि: अस्ति। यह उपर्युपरि इसके योग में द्वितीया विभक्ति का उदाहरण है। यहां उपर्युपरि इस शब्द का प्रयोग है। और उसके प्रयोग में किसी अन्य सूत्र व वार्तिक से द्वितीया प्राप्त नहीं थी अपि तु 'षष्ठी शेषे' इस सूत्र से षष्ठी विभक्ति प्राप्त थी किन्तु वार्तिककार ने उपर्युपरि इसके प्रयोग में द्वितीया विधायक वार्तिक बनाया। अत: 'षष्ठी शेषे' इस सूत्र को बाध कर इस वार्तिक से द्वितीया का विधान होता है। उससे 'लोकम् उपर्युपरि हरि: अस्ति' यह वाक्य सिद्ध होता है। यहां उपर्युपरि इस शब्द का ऊपर की दिशा यह अर्थ है। और इस प्रकार इस वाक्य का लोक के ऊपर हरि है यह अर्थ होता है।

लोकम् अध्यधि हरि: अस्ति। यह अध्यधि इसके योग में द्वितीया विभक्ति का उदाहरण है। यहां अध्यधि इस शब्द का प्रयोग है। और उसके प्रयोग में किसी अन्य सूत्र व वार्तिक से द्वितीया प्राप्त नहीं थी अपि तु 'षष्ठी शेषे' इस सूत्र से षष्ठी विभक्ति प्राप्त थी किन्तु वार्तिककार ने अध्यधि इसके प्रयोग में द्वितीया विधायक वार्तिक बनाया। अत: 'षष्ठी शेषे' इस सूत्र को बाध कर इस वार्तिक से द्वितीया का विधान होता है। उससे 'लोकम् अध्यधि हरि:' यह वाक्य सिद्ध होता है। यहां अध्यधि इस शब्द का ऊपर-ऊपर यह अर्थ है। और इस प्रकार इस वाक्य का लोक के ऊपर-ऊपर हरि है यह अर्थ होता है।

ध्यान दें:

लोकम् अधोऽधः हरिः अस्ति। यह अधोऽधः इसके योग में द्वितीयाविभक्ति का उदाहरण है। यहां अधोऽधः इस शब्द का प्रयोग है। और उसके प्रयोग में किसी अन्य सूत्र व वार्तिक से द्वितीया प्राप्त नहीं थी अपि तु 'षष्ठी शेषे' इस सूत्र से षष्ठी विभक्ति प्राप्त थी किन्तु वार्तिककार ने अधोऽधः इसके प्रयोग में द्वितीया विधायक वार्तिक बनाया। अतः 'षष्ठी शेषे' इस सूत्र को बाध कर इस वार्तिक से द्वितीया का विधान होता है। उससे 'लोकम् अधोऽधः हरिः अस्ति' यह वाक्य सिद्ध होता है। यहां अधोऽधः इस शब्द का नीचे-नीचे यह अर्थ है। और इस प्रकार इस वाक्य का लोक के नीचे-नीचे हरि है यह अर्थ होता है।

कृष्णम् ऋते सुखं नास्ति। यह ऋते इसके योग में द्वितीयाविभक्ति का उदाहरण है। यहां ऋते इस शब्द का प्रयोग है। और उसके प्रयोग में किसी अन्य सूत्र व वार्तिक से द्वितीया प्राप्त नहीं थी अपितु 'षष्ठी शेषे' इस सूत्र से षष्ठी विभक्ति प्राप्त थी किन्तु वार्तिककार ने ऋते इसके प्रयोग में द्वितीया विधायक वार्तिक बनाया। अतः 'षष्ठी शेषे' इस सूत्र को बाधकर इस वार्तिक से द्वितीया का विधान होता है। उससे 'कृष्णम् ऋते सुखं नास्ति' यह वाक्य सिद्ध होता है। यहां ऋते इस शब्द के बिना यह अर्थ है। और इस प्रकार इस वाक्य का लोक के कृष्ण के बिना सुख नहीं है यह अर्थ होता है।

अभितः परितः समयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि। (वार्तिक)

वार्तिकार्थ- अभितः परितः समया निकषा हा प्रति इन शब्दों के प्रयोग में भी द्वितीया होती है।

उदाहरण- ग्रामम् अभितः जलम् अस्ति। ग्रामं परितः वनम् अस्ति। ग्रामं समया। ग्रामं निकषा। कृष्णाभक्तं हा। बुभुक्षितं न प्रतिभाति किञ्चित्।

ग्रामम् अभितः जलम् अस्ति। यह अभितः इसके योग में द्वितीया विभक्ति का उदाहरण है। यहां अभितः इस शब्द का प्रयोग है। और उसके प्रयोग में किसी अन्य सूत्र वा वार्तिक से द्वितीया प्राप्त नहीं थी अपितु 'षष्ठी शेषे' इस सूत्र से षष्ठी विभक्ति प्राप्त थी किन्तु वार्तिककार ने अभितः इसके प्रयोग में द्वितीया विधायक वार्तिक बनाया। अतः 'षष्ठी शेषे' इस सूत्र को बाध कर इस वार्तिक से द्वितीया का विधान होता है। उससे 'ग्रामम् अभितः जलम् अस्ति' यह वाक्य सिद्ध होता है। यहां अभितः इस शब्द का पार्श्व के दोनों ओर यह अर्थ है। और इस प्रकार इस वाक्य का ग्राम के दोनों ओर जल है यह अर्थ होता है।

ग्रामं परितः वनम् अस्ति। यह परितः इसके योग में द्वितीया विभक्ति का उदाहरण है। यहां परितः इस शब्द का प्रयोग है। और उसके प्रयोग में किसी अन्य सूत्र या वार्तिक से द्वितीया प्राप्त नहीं थी अपितु 'षष्ठी शेषे' इस सूत्र से षष्ठी विभक्ति प्राप्त थी किन्तु वार्तिककार ने परितः इसके प्रयोग में द्वितीया विधायक वार्तिक बनाया। अतः 'षष्ठी शेषे' इस सूत्र को बाध कर इस वार्तिक से द्वितीया का विधान होता है। उससे 'ग्रामं परितः वनम् अस्ति' यह वाक्य सिद्ध होता है। यहां परितः इस शब्द का चारों ओर यह अर्थ है। और इस प्रकार इस वाक्य का ग्राम के चारों ओर वन है यह अर्थ होता है।

ग्रामं समया। यह समया इसके योग में द्वितीया विभक्ति का उदाहरण है। यहां समया इस शब्द का प्रयोग है। और उसके प्रयोग में किसी अन्य सूत्र व वार्तिक से द्वितीया प्राप्त नहीं थी अपि तु 'षष्ठी शेषे' इस सूत्र से षष्ठी विभक्ति प्राप्त थी किन्तु वार्तिककार ने समया इसके प्रयोग में द्वितीया विधायक वार्तिक बनाया। अतः 'षष्ठी शेषे' इस सूत्र को बाध कर इस वार्तिक से द्वितीया का विधान होता है। उससे 'ग्रामं समया' यह वाक्य सिद्ध होता है। यहां समया इस शब्द का समीप अर्थ है। और इस प्रकार इस वाक्य का ग्राम के निकट यह अर्थ होता है।

पाठ-24

उप पद विभक्ति में द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी व पञ्चमी

ध्यान दें:

ग्रामं निकषा। यह निकषा इसके योग में द्वितीया विभक्ति का उदाहरण है। यहां निकषा इस शब्द का प्रयोग है। और उसके प्रयोग में किसी अन्य सूत्र व वार्तिक से द्वितीया प्राप्त नहीं थी अपितु 'षष्ठी शेषे' इस सूत्र से षष्ठी विभक्ति प्राप्त थी किन्तु वार्तिककार ने निकषा इसके प्रयोग में द्वितीया विधायक वार्तिक बनाया। अत: 'षष्ठी शेषे' इस सूत्र को बाधकर इस वार्तिक से द्वितीया का विधान होता है। उससे 'ग्रामं निकषा' यह वाक्य सिद्ध होता है। यहां निकषा इस शब्द का समीप अर्थ है। और इस प्रकार इस वाक्य का ग्राम के निकट अर्थ होता है।

कृष्णा भक्तं हा। यह हा इसके योग में द्वितीया विभक्ति का उदाहरण है। यहां हा इस शब्द का प्रयोग है। और उसके प्रयोग में किसी अन्य सूत्र वा वार्तिक से द्वितीया प्राप्त नहीं थी अपितु 'षष्ठी शेषे' इस सूत्र से षष्ठी विभक्ति प्राप्त थी किन्तु वार्तिककार ने हा इसके प्रयोग में द्वितीया विधायक वार्तिक बनाया। अत: 'षष्ठी शेषे' इस सूत्र को बाधकर इस वार्तिक से द्वितीया का विधान होता है। उससे 'कृष्णाभक्तं हा' यह वाक्य सिद्ध होता है। यहां हा इस शब्द का निन्दा अर्थ है। और इस प्रकार इस वाक्य का कृष्ण के अभक्त कि निन्दा यह अर्थ होता है।

बुभुक्षितं न प्रतिभाति किञ्चित्। यह प्रति इसके योग में द्वितीया विभक्ति का उदाहरण है। यहां प्रति इस शब्द का प्रयोग है। और उसके प्रयोग में किसी अन्य सूत्र व वार्तिक से द्वितीया प्राप्त नहीं थी अपि तु 'षष्ठी शेषे' इस सूत्र से षष्ठी विभक्ति प्राप्त थी किन्तु वार्तिककार ने प्रति इसके प्रयोग में द्वितीया विधायक वार्तिक बनाया। अत: 'षष्ठी शेषे' इस सूत्र को बाधकर इस वार्तिक से द्वितीया का विधान होता है। उससे 'बुभुक्षितं न प्रतिभाति किञ्चित्' यह वाक्य सिद्ध होता है। यहां प्रतिभाति इस शब्द का प्रतीत होता है यह अर्थ है। और इस प्रकार इस वाक्य का बुभुक्षित को कुछ भी प्रतीत नहीं होता है यह अर्थ होता है।

पाठगत प्रश्न-1

यहां कुछ पाठगत प्रश्न दिये गये हैं। लघु उत्तर लिखिए।

1. अन्तरान्तरेणयुक्ते यहां कौन-सा समास है और क्या विग्रह है?
2. अन्तरा शब्द का उदाहरण लिखिए?
3. अन्तरेण शब्द का उदाहरण लिखिए?
4. अन्तरा इस शब्द का और अन्तरेण इस शब्द का क्या अर्थ है?
5. कालाध्वनो: यहां कौन-सा समास है, और क्या विग्रह है?
6. मासं गुडधाना: भवन्ति इस उदाहरण में मासम यहां द्वितीया किस सूत्र से हुई?
7. क्रोशं कुटिला नदी अस्ति इस उदाहरण में क्रोशं यहां द्वितीया किस सूत्र से हुई?
8. ग्रामम् उभयत: नदी अस्ति इस उदाहरण में ग्रामं यहां द्वितीया किस सूत्र से हुई?
9. कृष्णम् ऋते सुखं नास्ति इस उदाहरण में ऋते इसका क्या अर्थ है?
10. ग्रामम् अभित: जलम् अस्ति इस उदाहरण में जलं यहां द्वितीया किस सूत्र से हुई?
11. हा कृष्णाभक्तम् इसका क्या अर्थ है?

ध्यान दें:

24.3 इत्थम्भूतलक्षणे।। (2.3.21)

सूत्रार्थ- विशेषण युक्त ज्ञापक में विद्यमान शब्द से तृतीया विभक्ति होती है।

सूत्रावतरण- जटाभिः तापसः इत्यादि वाक्यों में जटादि शब्द से किस सूत्र से तृतीया होती है। यहां कर्तृकरणयोस्तृतीया इत्यादि सूत्रों से तृतीया नहीं हो सकती है। जटादियों के कर्तृकरणसंज्ञकत्व के अभाव के कारण। न ही यहां 'सहयुक्तेऽप्रधाने' इस सूत्र से तृतीया हो सकती है सह अर्थ की प्रतीति न होने के कारण। अतः इस प्रकार के लक्ष्यों में तृतीया के विधान के लिये भिन्न सूत्र की रचना भगवान् पाणिनि ने की। और वह सूत्र इत्थम्भूतलक्षणे यह है। उसी का यहां व्याख्यान प्रस्तुत किया जाता है।

सूत्र व्याख्या- यह विधि सूत्र है। यह सूत्र तृतीया विभक्ति का विधान करता है। इस सूत्र में एक पद हैं। इत्थम्भूतलक्षणे यह सप्तमी एकवचनान्त पद है। इस सूत्र में कर्तृकरण्योस्तृतीया इस सूत्र से तृतीया इस पद की अनुवृत्ति आती है। इत्थम्भूतलक्षणे यहां षष्ठी तत्पुरुष समास है जिसका विग्रह इस तरह है - इत्थम्भूतस्य लक्षणम् इति इत्थम्भूतलक्षणम्। तस्मिन् इत्थम्भूतलक्षणे। इत्थम्भूतलक्षण गम्यमान होने पर तृतीया विभक्ति होती है यह वाक्य योजना है। इत्थम्भूतलक्षण इसका विशेषण युक्त ज्ञापक यह अर्थ होता है । यहां विद्यमान पद का अध्याहार किया जाता है। अतः सूत्रार्थ होता है- विशेषण युक्त के ज्ञापक के विद्यमान शब्द से तृतीया विभक्ति होती है और फलितार्थ होता है विशेषण युक्त ज्ञापकवाचक शब्द से तृतीया विभक्ति होती है।

उदाहरणम्- जटाभिः तापसः अस्ति। कमण्डलुना छात्रः प्रतीयते। यज्ञोपवीतेन ब्राह्मणः दृश्यते। दण्डेन सन्न्यासी। गन्धेन पृथिवी।

सूत्रार्थ समन्वय- जटाभिः तापसः अस्ति। यहां विशेषणयुक्त है तापस पुरुष। क्योंकि यहां तापस पुरुष इसका अर्थ होता है तापसत्वयुक्त पुरुष। और वहां तापसत्व विशेषण है। उससे युक्त पुरुष है। उसको बतलाने वाली है जटा। क्योंकि जटा को देख कर ही ज्ञात होता है कि यह पुरुष तापसत्वयुक्त है। अतः विशेषण युक्त ज्ञापक जटा वाचक जटा शब्द से तृतीया विभक्ति होती है। और इससे उक्त वाक्य सिद्ध होता है।

कमण्डलुना छात्रः प्रतीयते। यहां विशेषण युक्त है छात्र। क्योंकि यहां छात्र इसका अर्थ होता है छात्रत्ववान्। और वहां छात्रत्व विशेषण है। उससे युक्त कोई पुरुष है। उसका ज्ञापक कमण्डलु है। क्योंकि कमण्डलु को देखकर ही ज्ञात होता है कि यह पुरुष छात्रत्वयुक्त है। अतः विशेषणयुक्त ज्ञापक कमण्डलु वाचक कमण्डलु शब्द से तृतीया विभक्ति होती है। और इससे उक्त वाक्य सिद्ध होता है।

24.4 येनाङ्गविकारः।। (2.3.20)

सूत्रार्थ- जिस विकृत अङ्ग से शरीर का विकार प्रतीत होता हो उस तरह के विकृताङ्ग के वाचक शब्द से तृतीया विभक्ति होती है।

सूत्रावतरण- अक्ष्णा काणः, पादेन खञ्जः इत्यादि में अक्ष्यादि शब्द से किस सूत्र से तृतीया होती है। यहां कर्तृकरणयोस्तृतीया इत्यादि सूत्रों से तृतीया नहीं हो सकती है। अक्ष्यादि के कर्तृकरणसंज्ञकत्व के अभाव के कारण। और न ही यहां 'सहयुक्तेऽप्रधाने' इस सूत्र से तृतीया हो सकती है सह अर्थ की प्रतीति न होने के कारण। अतः इस प्रकार के लक्ष्यों में तृतीया के विधान के लिये भिन्न सूत्र की रचना भगवान् पाणिनि ने की। और वह सूत्र येनाङ्गविकारः यह है। उसी का यहां व्याख्यान प्रस्तुत किया जाता है।

ध्यान दें:

सूत्र व्याख्या- यह विधि सूत्र है। यह सूत्र तृतीया विभक्ति का विधान करता है। इस सूत्र में दो पद हैं। येन यह तृतीया एकवचनान्त पद है। अङ्गविकारः यह प्रथमा एकवचनान्त पद है। इस सूत्र में कर्तृकरण्योस्तृतीया इस सूत्र से तृतीया इस पद की अनुवृत्ति आती है। अङ्गविकारः यहां षष्ठी तत्पुरुष समास है जिसका विग्रह इस तरह है - अङ्गस्य विकारः इति अङ्गविकारः। जिस विकृत अङ्ग से अङ्ग विकार है उससे तृतीया विभक्ति होती है यह वाक्य योजना है। अङ्ग विकार अर्थात शरीर का विकार। अतः सूत्रार्थ होता है- जिस विकृत अङ्ग से शरीर का विकार प्रतीत होता हो उस तरह के विकृताङ्ग के वाचक शब्द से तृतीया विभक्ति होती है।

उदाहरण - नेत्रेण काणः पुरुषः। पादेन खञ्जः वृषभः। नेत्राभ्याम् अन्धः सूरदासः।

सूत्रार्थ समन्वय- नेत्रेण काणः पुरुषः। यहां विकृत अङ्ग है नेत्र। और उस विकृत अङ्ग नेत्र से शरीर में विकार सूचित होता है। अतः तादृशविकृताङ्गवाचक नेत्र शब्द से तृतीया विभक्ति होती है। अतः 'नेत्रेण काणः पुरुषः अस्ति' यह वाक्य सिद्ध होता है।

पादेन खञ्जः वृषभः। यहां विकृत अङ्ग है पाद। और उस विकृत अङ्ग पाद से शरीर में विकार सूचित होता है। अतः तादृशविकृताङ्गवाचक पाद शब्द से तृतीया विभक्ति होती है। अतः 'पादेन खञ्जः वृषभः अस्ति' यह वाक्य सिद्ध होता है।

नेत्राभ्याम् अन्धः सूरदासः। यहां विकृत अङ्ग है नेत्र। और उस विकृत अङ्ग नेत्र से शरीर में विकार सूचित होता है। अतः तादृशविकृताङ्गवाचक नेत्र शब्द से तृतीया विभक्ति होती है। अतः 'नेत्राभ्याम् अन्धः सूरदासः' यह वाक्य सिद्ध होता है।

24.5 सहयुक्तेऽप्रधाने॥ (2.3.19)

सूत्रार्थ- सहार्थक शब्द के प्रयोग में अमुख्यार्थ वाचक शब्द से तृतीया विभक्ति होती है।

सूत्र व्याख्या- यह विधि सूत्र है। यह सूत्र तृतीया विभक्ति का विधान करता है। इस सूत्र में दो पद हैं। सहयुक्ते यह सप्तमी एकवचनान्त पद है। अप्रधाने यह सप्तमी एकवचनान्त पद है। इस सूत्र में कर्तृकरण्योस्तृतीया इस सूत्र से तृतीया इस पद की अनुवृत्ति आती है। सहयुक्ते यहां तृतीया तत्पुरुष समास है जिसका विग्रह इस तरह है- सहेन युक्तः इति सहयुक्तः। तस्मिन् सहयुक्ते। अप्रधाने यहां नञ् तत्पुरुष समास है जिसका विग्रह इस तरह है- न प्रधानम् इति अप्रधानम्। तस्मिन् अप्रधाने। सहार्थक शब्द के योग में अप्रधान में तृतीया विभक्ति होती है यह वाक्य योजना है। सहयुक्ते अर्थात् सहार्थक शब्द के प्रयोग में। यहां विद्यमान और शब्द इन दो पदों का अध्याहार किया जाता है। अतः सूत्रार्थ होता है- सहार्थक शब्द के प्रयोग में अमुख्य अर्थ में विद्यमान शब्द से तृतीया विभक्ति होती है और फलितार्थ होता है सहार्थक शब्द के प्रयोग में अमुख्यार्थवाचक शब्द से तृतीया विभक्ति होती है।

उदाहरण - पुत्रेण सह पिता गच्छति। शिष्येण साकं गुरुः गच्छति। लक्ष्मणेन समं रामः खादति।

सूत्रार्थ समन्वय- पुत्रेण सह पिता गच्छति। इस वाक्य में सहार्थक सह शब्द का प्रयोग है। और उस प्रयोग में गमन क्रिया में पिता का साक्षात् अन्वय प्रतीत होता है। गमन क्रिया में पुत्र का अन्वय सह शब्द के बल से प्रतीत होता है। अतः पिता मुख्य है। पुत्र अमुख्य है। और इस प्रकार सहार्थक शब्द के प्रयोग में अमुख्यार्थवाचक पुत्र शब्द से इस सूत्र से तृतीया विभक्ति होती है। इससे 'पुत्रेण सह पिता गच्छति'। यह वाक्य सिद्ध होता है।

ध्यान दें:

शिष्येण साकं गुरुः गच्छति। इस वाक्य में सहार्थक साकम् शब्द का प्रयोग है। और उस प्रयोग में गमन क्रिया में गुरु का साक्षात् अन्वय प्रतीत होता है। गमन क्रिया में शिष्य का अन्वय सह शब्द के बल से प्रतीत होता है। अतः गुरु मुख्य है। शिष्य अमुख्य है। और इस प्रकार सहार्थक शब्द के प्रयोग में अमुख्यार्थवाचक शिष्य शब्द से इस सूत्र से तृतीया विभक्ति होती है। इससे 'शिष्येण साकं गुरुः गच्छति'। यह वाक्य सिद्ध होता है।

लक्ष्मणेन समं रामः खादति। इस वाक्य में सहार्थक समम् शब्द का प्रयोग है। और उस प्रयोग में खादन क्रिया में राम का साक्षात् अन्वय प्रतीत होता है। खादन क्रिया में लक्ष्मण का अन्वय सह शब्द के बल से प्रतीत होता है। अतः राम मुख्य है। लक्ष्मण अमुख्य है। और इस प्रकार सहार्थक शब्द के प्रयोग में अमुख्यार्थवाचक लक्ष्मण शब्द से इस सूत्र से तृतीया विभक्ति होती है। इससे 'लक्ष्मणेन समं रामः खादति'। यह वाक्य सिद्ध होता है।

यहां यह विशेषः है- यह सूत्र सहार्थक शब्दों के योग में तो होता ही है। किन्तु जहां सहशब्द का वाक्य में प्रयोग नहीं है किन्तु सहार्थ प्रतीयमान है वहां भी यह सूत्र प्रवर्तित होता है।

यहां यह विशेष है- यहां कौन मुख्य है कौन अमुख्य है इसमें प्रयोगकर्ता की इच्छा ही कारण है। प्रयोगकर्ता जिसको मुख्यत्व के रूप में प्रतिपादित करना चाहता है वह मुख्य है और जिसको अमुख्य के रूप में प्रतिपादित करना चाहता है वह अमुख्य है। इस प्रकार जब पुत्र अमुख्य है तब पुत्रपद से तृतीया होती है। और तब 'पुत्रेण सह पिता गच्छति' यह प्रयोग बनता है। यदा पिता अमुख्य करने की इच्छा है तब पितृपद से तृतीया हुई और तब 'पित्रा सह पुत्रः गच्छति' यह प्रयोग बना। इसी प्रकार इच्छानुसार शिष्य के साथ गुरु जाता है यह प्रयोग बनता है। तथैव 'गुरुणा साकं शिष्यः गच्छति' यह प्रयोग भी बनता है। इसी तरह 'लक्ष्मणेन समं रामः खादति' यह प्रयोग बनता है। तथैव 'रामेण सह लक्ष्मणः खादति' यह भी बन जायेगा।

पाठगत प्रश्न-2

यहां कुछ पाठगत प्रश्न दिये जा रहे हैं-

12. सहयुक्ते यहां कौन सा समास है और क्या विग्रह है?
13. अङ्गविकारः यहां कौन सा समास है और क्या विग्रह है?
14. अङ्गविकारः इस पद का क्या अर्थ है?
15. लक्षण शब्द का क्या अर्थ है?
16. इत्थम्भूतलक्षणे यहां कौन सा समास है और क्या विग्रह है?
17. उभयतः अभितः इन दोनों का क्या अर्थ है?
18. सर्वतः परितः इन दोनों का क्या अर्थ है?

ध्यान दें:

24.6 नमः स्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च।। (2.3.16)

सूत्रार्थ- नमःयुक्त, स्वस्तियुक्त, स्वाहायुक्त, स्वधायुक्त, अलंयुक्त, वषड्युक्त शब्दों से चतुर्थी विभक्ति होती है।

सूत्र व्याख्या- यह विधि सूत्र है। यह सूत्र चतुर्थी विभक्ति का विधान करता है। इस सूत्र में दो पद हैं। नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगात् यह पञ्चमी एकवचनान्त पद है। च यह अव्यय पद है। इस सूत्र में चतुर्थी सम्प्रदाने इस सूत्र से चतुर्थी इस पद की अनुवृत्ति आती है। नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगात् यहां द्वन्द्व गर्भ तृतीया तत्पुरुष समास है जिसका विग्रह इस तरह है - नमश्च स्वस्तिश्च स्वाहा च स्वधाच अलं च वषड् च इति नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्। तेन योगः इति नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगः। तस्मात् नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगात्। यहां योग शब्द का नमः आदि पदों के साथ सम्बन्ध बैठता है। नमः युक्त, स्वस्तियुक्त, स्वाहायुक्त, स्वधायुक्त, अलंयुक्त, वषड्युक्त यह अर्थ प्राप्त होता है। अतः सूत्रार्थ होता है नमःयुक्त, स्वस्तियुक्त, स्वाहायुक्त, स्वधायुक्त, अलंयुक्त, वषड्युक्त शब्दों से चतुर्थी विभक्ति होती है।

उदाहरण - हरये नमः। इन्द्राय स्वाहा। पितृभ्यः स्वधा। दैत्येभ्यः अलं हरिः। इन्द्राय वषड्।

सूत्रार्थ समन्वय- हरये नमः। नमः पद का नमन अर्थ है। यहां नमोयुक्त शब्द से चतुर्थी विभक्ति होती है अंश से चतुर्थी विभक्ति प्राप्त थी। वहां किस शब्द से चतुर्थी विभक्ति होती है तो कहा जाता है जिसको उद्दिष्ट कर नमन किया जाता है तद्वाचक शब्द से चतुर्थी विभक्ति होगी। जैसे- हरये नमः, यहां कोई व्यक्ति हरि को उद्दिष्ट कर नमन करता है उस हरि शब्द से चतुर्थी विभक्ति हो गई। अतः 'हरये नमः' यह वाक्य सिद्ध हुआ।

प्रजाभ्यः स्वस्ति। स्वस्ति पद का मङ्गल अर्थ है। यहां स्वस्तियुक्त शब्द से चतुर्थी विभक्ति होती है अंश से चतुर्थी विभक्ति प्राप्त थी। वहां किस शब्द से चतुर्थी विभक्ति होती है तो कहा जाता है जिसका मंगल इष्ट है तद्वाचक शब्द से चतुर्थी विभक्ति होगी। जैसे - प्रजाभ्यः स्वस्ति, यहां प्रजा का मंगल इष्ट है अतः प्रजा से चतुर्थी विभक्ति हो गई। अतः 'प्रजाभ्यः स्वस्ति' यह वाक्य सिद्ध हुआ। इसी तरह गोभ्यः स्वस्ति भूयात् इत्यादि में समझना चाहिये।

इन्द्राय स्वाहा। स्वाहा शब्द का त्याग अर्थ है। यहां स्वाहा युक्त शब्द से चतुर्थी विभक्ति होती है अंश से चतुर्थी विभक्ति प्राप्त थी। वहां किस शब्द से चतुर्थी विभक्ति होती है तो कहा जाता है जिसको जिसको उद्दिष्ट कर त्याग किया जाता है तद्वाचक शब्द से चतुर्थी विभक्ति होगी। जैसे - इन्द्राय स्वाहा, यहां इन्द्र को उद्दिष्ट कर त्याग किया जाता है अतः इन्द्र से चतुर्थी विभक्ति हो गई। अतः 'इन्द्राय स्वाहा' यह वाक्य सिद्ध हुआ।

पितृभ्यः स्वधा। स्वधाशब्द का भी त्याग अर्थ है। स्वधायुक्त शब्द से चतुर्थी विभक्ति होती है अंश से चतुर्थीविभक्ति प्राप्त थी। वहां किस शब्द से चतुर्थी विभक्ति होती है तो कहा जाता है जिसको जिसको उद्दिष्ट कर त्याग किया जाता है तद्वाचक शब्द से चतुर्थी विभक्ति होगी। जैसे - पितृभ्यः स्वधा, यहां पितरों को उद्दिष्ट कर त्याग किया जाता है अतः पितृशब्द से चतुर्थी विभक्ति हो गई। अतः 'पितृभ्यः स्वधा' यह वाक्य सिद्ध हुआ।

दैत्येभ्यः अलं हरिः। अलं इस शब्द का सामार्थ्यवान् यह अर्थ है। यहां अलंयुक्त शब्द से चतुर्थी विभक्ति होती है अंश से चतुर्थी विभक्ति प्राप्त थी। वहां किस शब्द से चतुर्थी विभक्ति होती है तो कहा

ध्यान दें:

जाता है जिसकी अपेक्षा सामर्थ्य अधिक है तद्वाचक शब्द से चतुर्थी विभक्ति होगी। जैसे - दैत्येभ्यः अलं हरिः, यहां दैत्यों की अपेक्षा हरि में सामर्थ्य है अतः दैत्यवाचक शाब्द से चतुर्थी विभक्ति हो गई। अतः 'दैत्येभ्यः अलं हरिः' यह वाक्य सिद्ध हुआ।

चतुर्थी विभक्ति होती है ऐसा कहने से आंशिक चतुर्थी विभक्ति प्राप्त थी। वहां किस शब्द से चतुर्थी विभक्ति होती है यदि यह कहा जाये तो जिसकी अपेक्षा से सामर्थ्य प्रतिपादित किया जाता है तो तद्वाचक शब्द से चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे- 'दैत्येभ्यः अलं हरिः' यहां दैत्य की अपेक्षा सामर्थ्य हरि में है यह प्रतिपादित किया जाता है अतः दैत्यवाचक शब्द से चतुर्थी विभक्ति होती है। उससे 'दैत्येभ्यः अलं हरिः' यह वाक्य सिद्ध होता है।

यहां यह विशेष है- यहां यह जानना चाहिये कि इस सूत्र से अलमर्थक शब्दान्तर के योग में चतुर्थी विभक्ति विहित होती है। जैसे- दैत्येभ्यः प्रभुः हरिः। दैत्येभ्यः समर्थः हरिः। दैत्येभ्यः शक्तः हरिः। इन वाक्यों में भी दैत्यहननादिसम्बन्धि सामर्थ्यवान् हरि यह अर्थ है। इसी तरह मल्लाय अलं मल्लः। मल्लाय प्रभुः मल्लः। मल्लाय प्रभवति मल्लः इत्यादि वाक्य सिद्ध होते हैं।

इन्द्राय वषड्। वषड्शब्द का भी त्याग यह अर्थ है। वषड्युक्त शब्द से चतुर्थी विभक्ति होती है यह आंशिक चतुर्थी विभक्ति प्राप्त है। वहां किस शब्द से चतुर्थी विभक्ति होती है यदि यह कहा जाये तो जिसकी अपेक्षा से सामर्थ्य प्रतिपादित किया जाता है तो तद्वाचक शब्द से चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा इन्द्राय वषड्, यहां इन्द्र को उद्दिष्ट कर त्याग का विधान किया जाता है, अतः इन्द्रवाचक शब्द से चतुर्थी विभक्ति होती है। इससे 'इन्द्राय वषड्' यह वाक्य सिद्ध होता है।

24.7 अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते॥ (2.3.29)

सूत्रार्थ- अन्य, आराद्, इतर, ऋत, दिक्शब्द, अञ्चूत्तरपद, आच्प्रत्ययान्त व आहिप्रत्ययान्त के योग में प्रातिपदिक से पञ्चमी विभक्ति होती है।

सूत्रावतरण- 'कृष्णात् अन्यः रामः' इत्यादि में कृष्णादिपद से किस सूत्र से पञ्चमी होती है। न तो प्रकृत में 'अपादाने पञ्चमी' इस सूत्र से पञ्चमी हो सकती है, कृष्ण की अपादानसंज्ञा के अभाव के कारण। अतः इस प्रकार के स्थलों में पञ्चमी विधान के लिये भगवान् पाणिनि ने भिन्न ही सूत्र को बनाया और वह सूत्र होता है- 'अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते' यह सूत्र। उसी का व्याख्यान यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

सूत्रव्याख्या- यह विधिसूत्र है। यह सूत्र पञ्चमी विभक्ति का विधान करता है। इस सूत्र में अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते यह सप्तमी विभक्ति एकवचनान्तपद है। इस सूत्र में अपादाने पञ्चमी इस सूत्र से पञ्चमी इस पद की अनुवृत्ति आती है। अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते यह समस्त पद है, यहां द्वन्द्वगर्भतृतीयातत्पुरुषसमास है जिसका विग्रह इस तरह है - अन्यश्च आराच्च इतरश्च ऋते च दिक्शब्दश्च अञ्चूत्तरपदञ्च आच्च आहिश्च इति अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहयः। अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहिभिः युक्तम् इति अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्तम्। तस्मिन् अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते। द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते इस नियम से युक्ते इस पद का अन्य आदि पदों के साथ सम्बन्ध होता है। उससे इस पद का अर्थ होता है- अन्ययुक्त आराद्युक्त इतरयुक्त ऋतेयुक्त दिक्शब्दयुक्त अञ्चूत्तरपदयुक्त आच्युक्त और आहियुक्त। यहां युक्ते इसका योगे यह अर्थ होता है। प्रातिपदिक इस पद का अध्याहार किया जाता है। अतः सूत्रार्थ होता है - अन्य, आराद्,

ध्यान दें:

इतर, ऋत, दिक्शब्द, अञ्चूत्तरपद, आच्प्रत्ययान्त व आहिप्रत्ययान्त के योग में प्रातिपदिक से पञ्चमी विभक्ति होती है।

उदाहरणम्- कृष्णात् अन्यः रामः। वनाद् आरात् ग्रामः। कृष्णात् इतरः बलरामः। रामात् ऋते सुखं नास्ति। वनात् पूर्वः ग्रामः। ग्रामात् प्राक्। ग्रामाद् दक्षिणा। ग्रामात् दक्षिणाहि।

सूत्रार्थसमन्वय- कृष्णात् अन्यः रामः अस्ति। यह अन्ययोग में प्रातिपदिक से पञ्चमी विभक्ति होती है इस वाक्य का उदाहरण है। वहां अन्ययोग में किस प्रातिपदिक से पञ्चमी हो तो कहा जाता है। अन्य शब्द का अर्थ होता है भिन्न। और इस तरह जिसका भेद प्रतिपादित किया जाता है तादृशार्थ वाचक प्रातिपदिक से ही पञ्चमी विभक्ति होती है। प्रकृत में कृष्ण का भेद राम है यह कहना चाहता है वाक्य का प्रयोगकर्ता। अतः कृष्णप्रातिपदिक से ही पञ्चमी होती है न कि रामप्रातिपदिक से। और जब राम का भेद कृष्ण में है यह अर्थ जब होगा तब तो राम से अन्य कृष्ण है रामप्रातिपदिक से ही पञ्चमी होगी। इसी तरह सर्वत्र उदाहरणों में समझना चाहिये।

यहां यह विशेष है- यहां सूत्र में अन्यपद से अन्य शब्द के पर्यायभूत सभी शब्दों का ग्रहण विवक्षितम् है। अन्य इसका भिन्न भेदवान् यह अर्थ है। और इस प्रकार उनके योग में भी पञ्चमी विभक्ति होगी, वहां इन शब्दों के योग में किस से पञ्चमी हो तो जिसका भेद प्रतिपादित करना हो तादृशार्थवाचक शब्द से पञ्चमी विभक्ति होगी। और इस प्रकार कृष्णात् अन्यः बलरामः। रामात् भिन्नः भरतः। भरतात् इतरः लक्ष्मणः। घटात् भेदवान् पटः इत्यादि वाक्यों में सर्वत्र पञ्चमी सिद्ध होती है।

वनाद् आरात् ग्रामः। यह आराद्योग में प्रातिपदिक से पञ्चमी विभक्ति होती है इस वाक्य का उदाहरण है। वहां आराद्योग में किस प्रातिपदिक से पञ्चमी हो तो कहा जाता है। आराद् शब्द का अर्थ 'आरात् दूरसमीपयोः' इस कोशप्रामाण्य से दूर और समीप ये दोनों अर्थ होते हैं। और इस तरह जिसकी अपेक्षा दूरत्व व समीपत्त्व प्रतिपादित किया जाता है तादृशार्थवाचक प्रातिपदिक से ही पञ्चमी विभक्ति होती है। वनात् आरात् ग्रामः इसका वन के समीप व दूर ग्राम है यह अर्थ होता है। और वन कि अपेक्षया ग्राम से दूरत्व वा समीपत्व प्रतिपादित किया जाता है। अतः वनशब्द से ही पञ्चमी होती है। इससे वनाद् आराद् ग्रामःयह वाक्य सिद्ध होता है।

कृष्णात् इतरः बलरामः। यह इतरयोग में प्रातिपदिक से पञ्चमी विभक्ति होती है इस वाक्य का उदाहरण है। वहां इतरयोग में किस प्रातिपदिक से पञ्चमी हो तो कहा जाता है। इतर शब्द का भी अर्थ भिन्न होता है। और इस तरह जिसका भेद प्रतिपादित किया जाता है तादृशार्थवाचक प्रातिपदिक से ही पञ्चमी विभक्ति होती है। प्रकृत में कृष्ण का भेद बलराम है यह प्रतिपादित किया जाता है। अतः कृष्ण प्रातिपदिक से ही पञ्चमी होती है। इससे कृष्णात् इतरः बलरामः यह वाक्य सिद्ध होता है।

कृष्णात् ऋते। यह ऋतेयोग में प्रातिपदिक से पञ्चमी विभक्ति होती है इस वाक्य का उदाहरण है। वहां ऋतेयोग में किस प्रातिपदिक से पञ्चमी हो तो कहा जाता है। ऋते शब्द का अर्थ 'ऋते नाना च वर्जने' इस कोशप्रामाण्य से अत्यन्ताभाव अर्थ होता है। और इस तरह अत्यन्ताभाव के प्रतियोगिवाचि प्रातिपदिक से ही पञ्चमी विभक्ति होती है। जैसे कृष्णात् ऋते इत्यादि में। इसका कृष्ण प्रतियोगी का भाव यह अर्थ होता है। और यहां अभाव का प्रतियोगी कृष्ण है अतः कृष्ण शब्द से ही पञ्चमी होती है। इससे कृष्णात् ऋते यह वाक्य सिद्ध होता है।

वनात् पूर्वः ग्रामः। यह दिक्शब्दार्थयोग में प्रातिपदिक से पञ्चमी विभक्ति होती है इस वाक्य का उदाहरण है। वहां दिक्शब्दार्थयोग में किस प्रातिपदिक से पञ्चमी हो तो कहा जाता है। दिक्शब्दार्थयोग में

ध्यान दें:

दिशा के अवधित्वेन विवक्षितार्थवाचक प्रातिपदिक से पञ्चमी विभक्ति होगी। और इस तरह अवधित्वेन विवक्षित प्रातिपदिक से ही पञ्चमी विभक्ति होती है। जैसे वनात् पूर्वः ग्रामः इत्यादि में पूर्वत्त्व के अवधित्व से वन विवक्षित है। अतः वन शब्द से ही पञ्चमी होती है। इससे वनाद् पूर्वः ग्रामः यह वाक्य सिद्ध होता है।

ग्रामात् प्राग् वनम् अस्ति। यह अञ्चूत्तरपदयोग में प्रातिपदिक से पञ्चमी विभक्ति होती है इस वाक्य का उदाहरण है। वहां दिक्शब्दार्थयोग में किस प्रातिपदिक से पञ्चमी हो तो अञ्चूत्तरपद भी दिशा वाचक होते हैं ऐसा करके उनके योग में भी अवधिभूतार्थ वाचक प्रातिपदिक से पञ्चमी होगी। जैसे ग्रामात् प्राग् वनम् इत्यादि में प्राग् यह अञ्चूत्तरपद है। और इसका अर्थ पूर्व दिशा होता है। उसके अवधित्व से ग्राम विवक्षित है। अतः ग्राम शब्द से ही पञ्चमी होती है। इससे ग्रामात् प्राग् वनम् यह वाक्य सिद्ध होता है।

ग्रामात् दक्षिणा। यह आच् प्रत्ययान्तयोग में प्रातिपदिक से पञ्चमी विभक्ति होती है इस वाक्य का उदाहरण है। वहां आच् प्रत्ययान्तयोग में किस प्रातिपदिक से पञ्चमी हो तो आच् प्रत्ययान्त शब्द भी दिशावाचक होते हैं ऐसा करके उनके योग में भी अवधिभूतार्थ वाचक प्रातिपदिक से पञ्चमी होगी। जैसे ग्रामात् दक्षिणा इत्यादि में दक्षिणाशब्द आच् प्रत्ययान्त है। और इसका अर्थ दक्षिण दिशा अर्थ होता है। उसके अवधित्व से ग्राम विवक्षित है। अतः ग्राम शब्द से ही पञ्चमी होती है। इससे ग्रामात् दक्षिणा यह वाक्य सिद्ध होता है।

ग्रामात् दक्षिणाहि। यह आहिप्रत्ययान्तयोग में प्रातिपदिक से पञ्चमी विभक्ति होती है इस वाक्य का उदाहरण है। वहां आहिप्रत्ययान्तयोग में किस प्रातिपदिक से पञ्चमी हो तो आहिप्रत्ययान्तशब्द भी दिशावाचक होते हैं ऐसा करके उनके योग में भी अवधिभूतार्थ वाचक प्रातिपदिक से पञ्चमी होगी। जैसे ग्रामात् दक्षिणाहि इत्यादि में दक्षिणाहिशब्द आहिप्रत्ययान्त है। और इसका अर्थ दक्षिण दिशा अर्थ होता है। उसके अवधित्व से ग्राम विवक्षित है। अतः ग्राम शब्द से ही पञ्चमी होती है। इससे ग्रामात् दक्षिणाहि यह वाक्य सिद्ध होता है।

पाठगत प्रश्न-3

यहां कुछ पाठगत प्रश्न दिये गये हैं।

19. हरये नमः यहां चतुर्थी किस सूत्र से होती है।
20. दैत्येभ्यः अलं हरिः यहां चतुर्थी किस सूत्र से होती है।
21. स्वाहाशब्द का क्या अर्थ है।
22. कृष्णात् अन्यः रामः यहां पञ्चमी किस सूत्र से होती है।
23. वनाद् आरात् ग्रामः यहां आराद् इसका क्या अर्थ है।
24. कृष्णात् ऋते यहां पञ्चमी किस सूत्र से होती है।
25. ग्रामात् दक्षिणाहि यहां दक्षिणाहि इसका क्या अर्थ है।

पाठ-24

उप पद विभक्ति में द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी व पञ्चमी

ध्यान दें:

पाठ सार

इस पाठ में छः सूत्र दिये गये हैं। सर्वप्रथम अन्तरान्तरेण युक्ते इस सूत्र से अन्तरायुक्त अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से द्वितीया विभक्ति होती है। अन्तरेणयुक्त अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से द्वितीया विभक्ति होती है।

काल व मार्ग का द्रव्य व गुण के साथ और क्रिया के साथ अत्यन्त संयोग होने पर काल वाचक व अध्व वाचक शब्द से द्वितीया विभक्ति कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे इस सूत्र से होती है।

उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु।

द्वितीयाम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते॥

यह वार्तिक भी इस सूत्र की व्याख्या में कहा गया व व्याख्यात है।

अभितःपरितःसमयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि यह वार्तिक भी वहीं उपन्यस्त है।

विशेषणयुक्त ज्ञापक के विद्यमान शब्द से तृतीया विभक्ति इत्थम्भूतलक्षणे इस सूत्र से होती है। और ज्ञापक यहां लक्षण है।

जिस विकृत अङ्ग से शरीर का विकार प्रतीत होता है तादृशविकृताङ्गवाचक शब्द से तृतीयाविभक्ति 'येनाङ्गविकारः' इस सूत्र से होती है।

समम् सार्धम् साकम् इत्यादिसहार्थक शब्दों के प्रयोग में अमुख्यार्थ वाचक शब्द से तृतीया विभक्ति 'सहयुक्तेऽप्रधाने' इस सूत्र से होती है। नमः स्वस्ति स्वाहा स्वधा अलम् वषट् इन अव्ययों के अर्थ में जिस शब्द के अर्थ का अन्वय होता है तद्वाचक शब्द से नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च इस सूत्र से चतुर्थी विभक्ति होती है। अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते इस सूत्र से पञ्चमी विभक्ति का विधान होता है। इस प्रकार सूत्र और उनके उदाहरण सविस्तर बोधसौकर्य के लिये सभी अध्येताओं के लिये बताये गये हैं।

पाठान्त प्रश्न

यहां परीक्षोपयोगी प्रष्टव्य प्रश्न दिये जाते हैं।

1. अन्तरान्तरेणयुक्ते इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
2. कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे इस सूत्र की व्याख्या लिखिए।
3. इत्थम्भूलक्षणे इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
4. येनाङ्गविकारः इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
5. सहयुक्तेऽप्रधाने इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
6. अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
7. छात्रः मासं पठति इस प्रयोग की सिद्धि प्रक्रिया को लिखिए।

8. दैत्येभ्यः अलं हरिः इस प्रयोग की सिद्धि प्रक्रिया को लिखिए।

9. पुत्रेण सह पिता गच्छति इस प्रयोग की सिद्धि प्रक्रिया को लिखिए।

10. वनाद् आरात् ग्रामः इस प्रयोग की सिद्धि प्रक्रिया को लिखिए।

पाठगत प्रश्नोत्तर

उत्तर-1

1. अन्तरान्तरेणयुक्ते यहां द्वन्द्वगर्भतृतीयातत्पुरुषसमासः। और इसका विग्रह अन्तरा च अन्तरेण च इति अन्तरान्तरेणौ, ताभ्यां युक्तः इति अन्तरान्तरेणयुक्तः। तस्मिन् अन्तरान्तरेणयुक्ते।

2. रामं लक्ष्मणं च अन्तरा सीता अस्ति।

3. हरिम् अन्तरेण सुखं नास्ति।

4. अन्तरा इस शब्द का मध्ये यह अर्थ है। अन्तरेण इस शब्द का विना यह अर्थ है।

5. कालाध्वनोः इस पद में इतरेतरयोगद्वन्द्वसमास है और इसका विग्रह कालश्च अध्वा च इति कालाध्वानौ। तयोः कालाध्वनोः।

6. कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे।

7. कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे।

8. उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु। द्वितीयाम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते।। इस वार्तिक।

9. विना यह अर्थ है।

10. अभितःपरितःसमयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि वार्तिक से।

11. कृष्णाभक्तस्य निन्दा यह अर्थ होता है।

उत्तर-2

12. सहयुक्ते यहां तृतीयातत्पुरुषसमास है। और उसका विग्रह होता है - सहेन युक्तः इति सहयुक्तः। तस्मिन् सहयुक्ते।

13. अङ्गविकारः यहां षष्ठीतत्पुरुषसमास है और उसका विग्रह होता है - अङ्गस्य विकारः इति अङ्गविकारः।

14. अङ्गविकारः इस पद का अङ्गविकार यह अर्थ है शरीरविकार।

15. लक्षणशब्द का ज्ञापक यह अर्थ है।

16. इत्थम्भूतलक्षणे यहां षष्ठीतत्पुरुषसमास है और उसका विग्रह होता है- इत्थम्भूतस्य लक्षणम् इति इत्थम्भूतलक्षणम। तस्मिन् इत्थम्भूतलक्षणे।

17. उभयतः अभितः इनका पार्श्वद्वय यह अर्थ होता है।

18. सर्वतः परितः इनका सब पार्श्व में यह अर्थ होता है।

ध्यान दें:

ध्यान दें:

उत्तर-3

19. नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च।

20. नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च।

21. स्वाहाशब्द का त्याग यह अर्थ है।

22. अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते।

23. आरात् दूरसमीपयोः इस कोशप्रामाण्य से दूर व समीप अर्थ है।

24. अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते।

25. दक्षिणादिग्

ध्यान दें:

25

उप पद विभक्ति में षष्ठी और सप्तमी

कारक प्रकरण के प्रारम्भ में यह प्रतिपादित ही है कि प्रथमा द्वितीयादि सात सुब्विभक्तियां होती हैं। पुनः सातों विभक्तयां कारक व उप पद भेद से दो प्रकार की होती है। इस प्रकार सात कारक विभक्तयां व सात उप पद विभक्तियां होती हैं। वहां सात उप पद विभक्तियों में से यहां उप पद षष्ठी विभक्ति व उप पद सप्तमी विभक्ति का वर्णन किया जाता है। उनके उदाहरणों को प्रदर्शित किया जाता है। सूत्रों का अर्थ सम्यक् पढ़कर उसका उदाहरणों में समन्वय कैसे किया जाय ऐसा विशेष रूप से अवलोकन किया जाय। उसी प्रकार के उदाहरण व्यवहार में प्रयोग करें। इसी प्रकार अन्य साहित्य ग्रन्थों से उदाहरण लेकर उनका वहां सूत्र समन्वय करने का चिन्तन करना चाहिये।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे-

- उप पद षष्ठी विभक्ति को जान पाने में;
- उप पद सप्तमी विभक्ति को जान पाने में;
- वाक्यों में उप पद षष्ठी व सप्तमी विभक्ति का शुद्ध प्रयोग कर पाने में;
- वाक्यों में उप पद षष्ठी व सप्तमी विभक्ति प्रयोग जान पाने में सक्षम होंगे।

25.1 षष्ठी शेषे॥ (2.3.50)

सूत्रार्थः- कारक प्रातिपदिकार्थ के अतिरिक्त स्वस्वामिभावादिसम्बन्ध शेष रहने पर वहां षष्ठी होती है।

सूत्र व्याख्या- यह विधि सूत्र है। इस सूत्र में दो पद है। शेष यह सप्तम्यन्त पद है। षष्ठी यह प्रथमान्त पद है। इस प्रकार इस सूत्र का अर्थ होता है शेष अर्थ में षष्ठी विभक्ति होती है। वहां क्या शेष रहता है इस पर कहते हैं कि जो कहा गया है उससे अन्य जो भी है वह शेष है। अर्थात् जो कहा गया है उससे जो भिन्न वह ही शेष है। यहां क्या कहा गया है और क्या उससे अन्य है इस पर सुनो-

पाठ-25

उप पद विभक्ति में षष्ठी और सप्तमी

ध्यान दें:

पाणिनीयाष्टक में इस प्रकार सूत्रों का क्रम है कर्मणि द्वितीया (2.3.2) सप्तम्यधिकरणे च (2.3.7) चतुर्थी सम्प्रदाने (2.3.13) कर्तृकरणयोस्तृतीया (2.3.18) अपादाने पञ्चमी (2.3.28) प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा (2.3.46) षष्ठी शेषे (2.3.50)। वहां षष्ठी शेषे इस सूत्र से पूर्व अनभिहित कर्म में द्वितीया कही गयी है, अनभिहित करण व कर्ता में तृतीया कही गयी है, अनभिहित सम्प्रदान में चतुर्थी कही गयी है, अनभिहित अपादान में पञ्चमी कही गयी है, और अनभिहित अधिकरण में सप्तमी कही गयी है, और प्रातिपदिकार्थ में प्रथमा विभक्ति कही गयी है। इस प्रकार कर्म करण सम्प्रदान अपदान अधिकरण रूप अर्थों और प्रातिपदिकार्थ कहे गये है, और उनका अन्य सम्बन्ध भी होता है, वह सम्बन्ध ही शेष पद है ऐसा भाव है। इस सम्बन्ध के अर्थ में इस सूत्र से षष्ठी विभक्ति का विधान किया गया है। परन्तु प्रकृति से प्रश्न उठता है कि सम्बन्ध दो प्रकार का होता है वहां इस प्रकार कैसे षष्ठी विभक्ति होगी इस पर कहते हैं कि सम्बन्ध के दो संबंधी होते हैं एक प्रतियोगी और दूसरा अनुयोगी। वहां प्रतियोगी विशेषण का भेद है ऐसा कहा गया है और अनुयोगी विशेष्य का भेद कहा गया है। इस प्रकार सम्बन्ध का प्रतियोगी वाचक प्रातिपदिक से इस सूत्र से षष्ठी विभक्ति होती है ऐसा सिद्धान्त है।

उदाहरण- राज्ञः पुरुषः अस्ति इसमें राजा और पुरुष के मध्य स्व स्वामिभाव सम्बन्ध है। उसका प्रतियोगी राजा है, और अनुयोगी पुरुष है। अतः प्रतियोगी वाचक पद से इस सूत्र में षष्ठी जानना चाहिये। उससे निरुक्त वाक्य होता है। इससे राजा से सम्बन्धित पुरुष है ऐसा जानना चाहिये। और जब पुरुष का सम्बन्ध प्रतियोगी विशेषण से विवक्षित होता है तब पुरुष पद से षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे पुरुष का राजा है। और इससे पुरुष संबंधी राजा है ऐसा बोध होता है। ऐसा ही अन्य स्थान पर समझना चाहिये।

यहां यह समझते हैं- शेष की एक अन्य परिभाषा भी होती है। वह क्या है इस पर कहते हैं कि कर्म आदि की विवक्षा ही शेष है। इसका भाव यह है कि विवक्षा से कारक होते हैं यह नियम है। वहां जब कर्म की कर्म से विवक्षा होती है तब यथायोग्य द्वितीयादि विभक्तियाँ होती हैं, पुत्रः मातरं स्मरति आदि। और जब कर्म से कर्म की अविवक्षा की जाती है तब कर्म की प्रतीति कर्म से नहीं होती है अपितु शेष से होती है, इसी प्रकार कर्म से कर्म की अविवक्षा दशा में उस शेष से भी उसी प्रकार के कर्म बोधक से प्रातिपदिक से भी षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे मातुः स्मरति। इसी प्रकार कर्ता से जब कर्तृत्व की विवक्षा नहीं की जाती है तब कर्तृरूप अर्थ भी शेष रहता है, तब उस प्रकार के कर्तृरूप अर्थबोध क प्रातिपदिक से भी षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे सद्भिः गतम्। इसी प्रकार जब करण से करण की अविवक्षा की जाती है तब उस प्रकार के करणरूप अर्थबोधक प्रातिपादिक से भी षष्ठी होती है। फलानां तृप्तः आदि में तृप्ति के प्रति करण है उसकी जब करण से अविवक्षा की जाती है तब उस वाचक से षष्ठी विभक्ति होती है। ऐसा ही अन्य करकों में भी होता है।

पाठगत प्रश्न-1

यहां कुछ पाठगत प्रश्न दिए गए हैं।

1. षष्ठी शेषे इसमें षष्ठी प्रतियोगी है या अनुयोगी?
2. षष्ठी शेषे इसका उदाहरण क्या है?
3. षष्ठी शेषे यहां शेष पदार्थ क्या है?
4. सम्बन्ध का संबंधी क्या है?

ध्यान दें:

25.2 चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः।। (2.3.73)

सूत्रार्थ- आशिषि गम्यमानों में आयुष्य मद्र भद्र कुशल सुखार्थ हित शब्दों के उपस्थापित अर्थ में विशेषणीभूतार्थ वाचक शब्द से चतुर्थी और षष्ठी होती है।

सूत्रव्याख्या- यह विधि सूत्र है। इस सूत्र से चतुर्थी और षष्ठी का विधान होता है। इस सूत्र में दो पद होते हैं। यहां चतुर्थी प्रथमान्त पद है और यह अव्यव पद है। आशिषि यह सप्तम्यन्त पद है। आयुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः यह तृतीयान्त पद है। यहां षष्ठी (1/1) की अनुवृति हुई है। इस प्रकार सूत्रार्थ होता है- आशिषि गम्यमानों में आयुष्य मद्र भद्र कुशल सुखार्थ हित शब्दों के उपस्थापित अर्थ में विशेषणीभूतार्थ वाचक शब्द से चतुर्थी व षष्ठी होती है।

उदाहरण- कृष्णाय आयुष्यं भूयात्। कृष्णस्य आयुष्यं भूयात्।

सूत्रार्थ समन्वय- कृष्णाय आयुष्यं भूयात्। कृष्णस्य आयुष्यं भूयात्। इन उदाहरणों में भूयात् यह आशीर्लिङ प्रयोग से आशीः गम्यमान है। और उनके गम्यमानों से आयुष्य पद उपस्थापित आयुष्य रूप अर्थ में कृष्ण पदार्थ विशेषण है। विशेषणी भूतार्थ वाचक कृष्ण शब्द से इस प्रकार चतुर्थी व षष्ठी होती है। इससे कृष्णाय आयुष्यं भूयात्। कृष्णस्य आयुष्यं भूयात् इन दोनों प्रयोगों से सिद्धि होती है। दोनों वाक्यों से भी कृष्ण संबंधी आयुष्य कर्ता के आशीर्विषयक् होने का बोध होता है।

चैत्राय मद्रं भूयात्। चैत्रस्य मद्रं भूयात्। इनमें आशिषि गम्यमानों में मद्र पद उपस्थापित कल्याण रूप अर्थ में विशेषणी भूतार्थ चैत्र पदार्थ है। उसके वाचक चैत्रशब्द से इस सूत्र से चतुर्थी और षष्ठी होती है। इससे चैत्रस्य मद्रं भूयात्। चैत्राय मद्रं भूयात्। इन दोनों वाक्यों की सिद्धि होती है। दोनों वाक्यों में भी चैत्रसम्बन्धि कल्याण कर्ता के आशीर्विषयक होने का बोध होता है।

अन्य उदाहरण- आयुष्यं देवदत्ताय देवदत्तस्य वा भूयात् चिरं जीवितं देवदत्ताय देवदत्तस्य वा भूयात् मद्रं देवदत्ताय देवदत्तस्य वा भूयात्। भद्रं देवदत्ताय देवदत्तस्य वा भूयात् कुशलं देवदत्ताय देवदत्तस्य वा भूयात्। निरामयं देवदत्ताय देवदत्तस्य वा भूयात्। सुखं देवदत्ताय देवदत्तस्य वा भूयात् शे देवदत्ताय देवदत्तस्य वा भूयात्। अर्थो देवदत्ताय देवदत्तस्य वा भूयात् प्रयोजनं देवदत्ताय देवदत्तस्य वा भूयात्। हितं देवदत्ताय देवदत्तस्य वा भूयात् पथ्यं देवदत्ताय देवदत्तस्य वा भूयात्।

25.3 षष्ठी हेतुप्रयोगे।। (2.3.29)

सूत्रार्थ- हेतु शब्द का प्रयोग और हेतु अर्थ दोनों में षष्ठी होती है।

सूत्र व्याख्या- यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से षष्ठी का विधान किया जाता है। इस सूत्र में दो पद हैं। षष्ठी यह प्रथमान्त पद है। हेतुप्रयोग यह सप्तम्यन्त पद है। यहां हेतौ (7/1) इसकी अनुवृति होती है। इस प्रकार सूत्रार्थ होता है- हेतु शब्द प्रयोग में हेतु से दो स्थान पर षष्ठी होती है। वहां कहते हैं कि हेतुभूतार्थ वाचक से और हेतुशब्द से षष्ठी होती है।

उदाहरण- अन्नस्य हेतोः वसति।

सूत्रार्थ समन्वय- अन्नस्य हेतोः वसति। यहां वास का हेतु अन्न है और वाक्य में हेतु शब्द का प्रयोग भी होता है। अतः हेतुभूतार्थ वाचक अन्नशब्द से और हेतु शब्द की इस सूत्र से षष्ठी होती है।

ध्यान दें:

25.4 सर्वनाम्नस्तृतीया च॥ (2.3.27)

सूत्रार्थः- सर्वनाम और हेतुशब्द के प्रयोग में सर्वनाम शब्द से और हेतु शब्द से तृतीया होती है और षष्ठी भी।

सूत्र व्याख्या- यह विधि सूत्र है। इस सूत्र से तृतीया व षष्ठी का विधान किया जाता है। इस सूत्र में दो पद हैं। सर्वनाम्नः यह षष्ठयन्त पद है। षष्ठी इस प्रथमान्त पद की अनुवृति होती है। हेतुप्रयोगे (7/1) इस सप्तम्यन्त पद की अनुवृति होती है। हेतौ इस सूत्र से हेतौ इस सप्तम्यन्त पद की अनवृति होती है।

सूत्रार्थ- सर्वनाम और हेतुशब्द के प्रयोग में सर्वनाम शब्द से और हेतुशब्द से तृतीया होती है और षष्ठी भी।

उदाहरणम्- केन हेतुना वसति। कस्य हेतोः वसति।

सूत्रार्थसमन्वयः- केन हेतुना वसति। कस्य हेतोः वसति आदि। प्रकृतवाक्य में हेतुशब्द का और सर्वनामशब्द का प्रयोग होता है। उस प्रयोग में हेतौ इस सूत्र से केवल तृतीया प्राप्त होती है। उसको प्राप्त कर षष्ठी हेतुप्रयोगे इस सूत्र से केवल षष्ठी प्राप्त होती है। इस प्रकार दोनों का विधान किया जाता है। इस प्रकार केन हेतुना वसति, कस्य हेतोः वसति ये दो वाक्य सिद्ध होते हैं।

निमित्तपर्यायप्रयोगे सर्वासां प्रायदर्शनम्॥ (वार्तिकम्)

वार्तिकार्थः- निमित्तपर्यायों के प्रयोग में उससे समानाधिकरणों का और सभी विभक्तियों का प्रायः प्रयोग होता है। निमित्त के पर्याय- हेतुः कारणम् बीजम्। यदि सर्वनाम का प्रयोग नहीं होता है तो प्रथमा और द्वितीया नहीं होती है।

उदाहरण-

यहां सारणी में सर्वनाम प्रयोग और निमित्तपर्यायों का प्रयोग सभी विभक्तियों में प्रदर्शित है।

विभक्ति	निमित्त शब्द प्रयोग,	कारण शब्द प्रयोग,	हेतु शब्द प्रयोग
प्रथमा	किं निमित्तं वसति।	किं कारणं वसति।	को हेतुः वसति।
द्वितीया	किं निमित्तं वसति।	किं कारणं वसति।	कं हेतुं वसति।
तृतीया	केन निमित्तेन वसति।	केन कारणेन वसति।	केन हेतुना वसति।
चतुर्थी	कस्मै निमित्ताय वसति।	कस्मै कारणाय वसति।	कस्मै हेतवे वसति।
पञ्चमी	कस्मात् निमित्तात् वसति।	कस्मात् कारणात् वसति।	कस्माद् हेतोः वसति।
षष्ठी	कस्य निमित्तस्य वसति।	कस्य कारणस्य वसति।	कस्य हेतोः वसति।
सप्तमी	कस्मिन् निमित्ते वसति।	कस्मिन् कारणे वसति।	कस्मिन् हेतौ वसति।

ध्यान दें:

पाठगत प्रश्न-2

यहां कुछ पाठगत प्रश्न दिये जाते हैं।

5. कृष्णाय आयुष्यं भूयात् यहां चतुर्थी किस सूत्र से होती है?

6. चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः इसका एक उदहरण बताइए?

7. षष्ठी हेतुप्रयोगे इस सूत्र का अर्थ लिखिए?

8. अन्नस्य हेतोः वसति यहां अन्न शब्द में षष्ठी किस सूत्र से होती है?

9. को हेतुः वसति यहां प्रथमा कहां है?

10. हेतु शब्द प्रयोग में सर्वनाम कितनी विभक्तियां होती हैं?

25.5 षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन॥ (2.3.30)

सूत्रार्थः- अतसुजर्थक प्रत्ययान्त के योग में षष्ठी विभक्ति होती है।

सूत्रव्याख्या- यह विधि सूत्र है। इस सूत्र से षष्ठी का विधान होता है। इस सूत्र में दो पद है। षष्ठी यह प्रथमान्त पद है। अतसर्थ प्रत्ययेन यह तृतीयान्त पद है। अतसर्थ प्रत्ययेन यह पद समस्त कहा जाता है। और यहां बहुव्रीहि समास है। इसका विग्रह होता है- अतसः अर्थः इति अतसर्थः। अतसर्थ ही अर्थ है जिसका वह अतसर्थ, और वह प्रत्यय है जिसका अतसर्थ प्रत्यय, उससे अतसर्थ प्रत्यय से। इस प्रकार इस पद का अर्थ होता है- अतसर्थकप्रत्यय से। अतस् इससे अतसुच् प्रत्यय का ग्रहण होता है। उससे अतसर्थ प्रत्यय से इसका अतसुजर्थक प्रत्यय से यह अर्थ होता है। प्रत्यय ग्रहण परिभाषा से तदन्तविधि सम्पादित इस पद का अर्थ होता है अतसुजर्थक प्रत्ययान्त से। इस प्रकार सूत्रार्थ होता है- अतसुजर्थक प्रत्ययान्त के योग से षष्ठी विभक्ति होती है।

दिक्शब्दों से सप्तमी पञ्चमी प्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः इस सूत्र से आरम्भ में आहि च दूरे, उत्तराच्च इत्यन्तैः सूत्रों में दिग्देशकालवृत्ति वाले शब्दों में स्वार्थ में प्रत्यय होता है। वहां दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच् इस सूत्र से अतसुच् प्रत्यय विहित है। उसका अर्थ होता है- दिग्देशकाल रूप। वह हि अर्थ है जिसका वह अतसुजर्थ प्रत्यय। दक्षिण यह शब्द दिशावाची है। वह अतसुच्-प्रत्ययोग से दक्षिणतः यह शब्द प्राप्त होता है। इसके प्रयोग से जिसके योग में जो होता है उससे षष्ठी विभक्ति होती है।

उदाहरण- ग्रामस्य दक्षिणतः। ग्रामस्य पुरः। ग्रामस्य पुरस्तात्। ग्रामस्य उपरि। ग्रामस्य उपरिष्टात्।

सूत्रार्थ समन्वय- ग्रामस्य दक्षिणतः। यहां दक्षिणतः यह शब्द दक्षिण शब्द से अतसुच् प्रत्यय करने पर निष्पादित होता है। और यह शब्द अतसर्थप्रत्ययान्त दिग्वाचक होता है। अतः इस योग में पञ्चमी प्राप्त थी उसका बाध करके प्रकृतसूत्र से षष्ठी विभक्ति होती है।

ग्रामस्य पुरः। यहां पुरः यह शब्द पूर्व शब्द से असिप्रत्यय करने पर निष्पादित होता है। असिप्रत्यय और अतसर्थ होता है। उससे यह शब्द अतसर्थक प्रत्ययान्त और दिग्वाचक होता है। अतः इसके योग में पञ्चमी प्राप्त थी उसका बाध कर प्रकृत सूत्र से षष्ठी विभक्ति होती है।

ध्यान दें:

ग्रामस्य पुरस्तात्। यहां पुरस्तात् यह शब्द पूर्वशब्द से अस्तातिप्रत्यय करने पर निष्पादित होता है। अस्तातिप्रत्यय का अतसर्थ होता है। उससे यह शब्द अतसर्थकप्रत्ययान्त दिग्वाचक होता है। अत: इसके योग में पञ्चमी प्राप्त थी उसका बाध करके प्रकृतसूत्र से षष्ठी विभक्ति होती है।

ग्रामस्य उपरि। यहां उपरि यह शब्द ऊर्ध्वशब्द से रिल्प्रत्यय करने पर निष्पादित होता है। रिल्प्रत्यय का अतसर्थ होता है। इससे यह शब्द अतसर्थकप्रत्ययान्त दिग्वाचक होता है। अत: इसके योग में पञ्चमी प्राप्त थी उसका बाध करके प्रकृतसूत्र से षष्ठी विभक्ति होती है।

ग्रामस्य उपरिष्टात। यहां उपरिष्टात् यह शब्द ऊर्ध्वशब्द से रिष्टातिल्प्रत्यय करने पर निष्पादित् होता है। रिष्टातिल्प्रत्यय का अतसर्थ होता है। उससे यह शब्द अतसर्थकप्रत्ययान्त दिग्वाचक होता है। अत: इसके योग में पञ्चमी प्राप्त थी उसका बाध करके प्रकृत सूत्र से षष्ठी विभक्ति होती है।

25.6 एनपा द्वितीया॥ (2.3.31)

सूत्रार्थ- एनबन्त के योग में द्वितीया और षष्ठी होती है।

सूत्रव्याख्या - यह विधिसूत्र है। यह सूत्र षष्ठी विभक्ति और द्वितीया विभक्ति का विधान करता है। इस सूत्रे में दो पद हैं। एनपा यह तृतीयान्तपद है। द्वितीया यह प्रथमान्त पद है। एनप् यह प्रत्यय है। अत: प्रत्यय ग्रहण परिभाषा से तदन्तविधि को सम्पादित कर इस पद का अर्थ होता है एनबन्त से। इस प्रकार सूत्रार्थ होता है कि- एनबन्त के योग में द्वितीया होती है। इस सूत्र का योगविभाग करते हैं, एनपा यह प्रथम योग, द्वितीया यह द्वितीय योग। वहां एनपा इस प्रथम योग में षष्ठी यह पद अनुवर्तित होता है। इस प्रकार एनपा इस सूत्र का अर्थ होता है- एनबन्त के योग में षष्ठी होती है। द्वितीय द्वितीया यह योग है। इस प्रकार सूत्रार्थ होता है- एनबन्त के योग में द्वितीया होती है।

उदाहरणम् - **ग्रामस्य दक्षिणेन। ग्रामं दक्षिणेन।**

सूत्रार्थसमन्वय- ग्रामस्य दक्षिणेन- दक्षिणेन यह एनप्रत्ययान्तशब्द है। उसके योग में ग्रामशब्द से एनपा यह प्रथमयोग से षष्ठी विभक्ति सिद्ध होती है।

ग्रामं दक्षिणेन- दक्षिणेन यह एनप्रत्ययान्तशब्द है। उसके योग में ग्रामशब्द से द्वितीया यह द्वितीययोग से षष्ठी विभक्ति सिद्ध होती है।

25.7 तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयान्तरस्याम्॥ (2.3.72)

सूत्रार्थ- तुलाभिन्न और उपमाभिन्न सादृश्यार्थक शब्द के योग में षष्ठी होती है और तृतीया भी।

सूत्रावतरणम्- रामेण तुल्य: कृष्ण: आदि में रामादि शब्दों से किस सूत्र से तृतीया होती है। यहां तो षष्ठी शेषे इस सूत्र से केवल षष्ठी ही प्राप्त होती है ऐसा कहा जाता है। इस प्रकार होता है ऐसा तृतीयाविधान कर भगवान् पाणिनि तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयान्तरस्याम् इस भिन्न ही सूत्र की रचना करते हैं। उसका ही यहां व्याख्यान किया जाता है।

सूत्र व्याख्या- यह विधि सूत्र है। यह सूत्र षष्ठी विभक्ति और तृतीया विभक्ति का विधान करता है। इस सूत्र में तीन पद हैं। तुल्यार्थै: यह तृतीयाबहुवचनान्त पद है। अतुलोपमाभ्याम् यह तृतीयाद्विवचनान्त पद है। तृतीया यह प्रथमैकवचनान्त पद है। अन्यतरस्याम् यह अव्ययपद है। यहां षष्ठी शेषे इस सूत्र से षष्ठी की अनुवृति होती है। तुल्यार्थै: इसका सादृश्यार्थकशब्द यह अर्थ है। अतुलोपमाभ्याम् इसका तुलोपमा

ध्यान दें:

से भिन्न यह अर्थ है। यहां तुल्यार्थैः में बहुव्रीहिसमास है। उसका विग्रह होता है तुल्य अर्थ जिनका है वे तुल्यार्थाः। उनसे तुल्यार्थ से। अतुलोपमाभ्याम् यहां द्वन्द्वगर्भतत्पुरुषसमास है। इसका विग्रह होता है - तुला च उपमा च इति तुलोपमे। न तुलोपमे इति अतुलोपमे। ताभ्याम् अतुलोपमाभ्याम्। यहां योग में प्रातिपदिक से ऐसा पढ़ाया जाता है। इस प्रकार सूत्रार्थ होता है- तुलाभिन्न और उपमाभिन्न सादृश्यार्थक शब्दों के योग में प्रातिपदिक से षष्ठी होती है और तृतीया भी।

उदाहरणम् - रामेण तुल्यः कृष्णः। रामस्य तुल्यः कृष्णः। कृष्णेन समः रामः, कृष्णस्य समः रामः।

सूत्रार्थ समन्वयः- रामेण तुल्यः कृष्णः। रामस्य तुल्यः कृष्णः। यहां वाक्य में तुल्यार्थक के तुल्यशब्द का प्रयोग है। उसके प्रयोग में उसके अर्थ से युक्त राम है। अतः राम यह प्रातिपदिक से तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयान्यतरस्याम् इस सूत्र से तृतीया और षष्ठी होती है। उससे रामेण तुल्यः कृष्णः। रामस्य तुल्यः कृष्णः। इन वाक्यों की सिद्धि होती है।

25.8 आयुक्तकुशलाभ्यां चासेवायाम्।। (2.3.40)

सूत्रार्थ- आसेवा गम्यमान से आयुक्तयोग और कुशल योग में प्रातिपदिक से षष्ठी होती है और सप्तमी भी होती है ।

सूत्रावतरण- आयुक्तः हरिपूजनस्य, आयुक्तः हरिपूजने। कुशलः हरिपूजनस्य। कुशलः हरिपूजने आदि आयुक्तकुशलयोग में राज्ञः पुरुषः आदि जैसे केवल षष्ठी प्राप्त थी। सप्तमी तो किसी भी सूत्र से प्राप्त नहीं थी। उसके विधान के लिये आयुक्तकुशलाभ्यां चासेवायाम् यह सूत्र समागत है।

सूत्र व्याख्या- यह विधिसूत्र है। यह सूत्र षष्ठी विभक्ति और सप्तमी विभक्ति का विधान करती है। इस सूत्र में तीन पद हैं। आयुक्त कुशलाभ्याम् यह तृतीयाद्विवचनान्त पद है। च यह अव्ययपद है। आसेवायाम् यह सप्तम्येकवचनान्त पद है। यहां सप्तम्यधिकरणे च इस सूत्र से सप्तमी पद की अनुवृति है। षष्ठी चानादरे इस सूत्र से षष्ठी यह पद अनुवर्तित है। यहां आयुक्तकुशलाभ्याम् यह पद समस्त पद है। यहां इतरेतरयोगद्वन्द्वसमास है। इसका विग्रह होता है - आयुक्तश्च कुशलश्च इति आयुक्तकुशलौ, ताभ्याम् आयुक्तकुशलाभ्याम्। आसेवायाम् आयुक्तकुशलाभ्यां में षष्ठी और सप्तमी होती है यह वाक्य योजना है। आयुक्तकुशलाभ्याम् यह तृतीया बल से योग में है ऐसा आक्षेप लगाते है। प्रातिपदिक से आक्षेप होता है। इस प्रकार सूत्रार्थ होता है- आसेवा गम्यमान से आयुक्तयोग और कुशलयोग में प्रातिपदिक से षष्ठी होती है और सप्तमी भी होती है।

उदाहरणम्- आयुक्तः हरिपूजनस्य, आयुक्तः हरिपूजने। कुशलः हरिपूजनस्य, कुशलः हरिपूजने।

सूत्रार्थ समन्वयः- आयुक्तः हरिपूजनस्य, आयुक्तः हरिपूजने। यहां वाक्य में आयुक्तशब्द का प्रयोग है। पुनः इस वाक्य का तात्पर्य है जो कोई भी व्यक्ति हरिपूजन में अत्यन्तसंलग्न है। अतः आसेवा भी गम्यमान है। इसी प्रकार आसेवा गम्यमान से आयुक्तयोग में हरिपूजन इस प्रातिपदिक से आयुक्तकुशलाभ्यां चासेवायाम् इस सूत्र से जब षष्ठी होती है तब आयुक्तः हरिपूजनस्य ऐसा प्रयोग सिद्ध होता है। जब सप्तमी होती है तब आयुक्तः हरिपूजने ऐसा प्रयोग सिद्ध होता है।

कुशलः हरिपूजनस्य, कुशलः हरिपूजने। यहां वाक्य में कुशलशब्द का प्रयोग होता है। पुनः इस वाक्य का तात्पर्य है कि जो कोई व्यक्ति हरिपूजन में अत्यन्तकुशल है, अतः आसेवा भी गम्यमान है। इसी

ध्यान दें:

प्रकार आसेवा गम्यमान से कुशलयोग में हरिपूजन इस प्रातिपदिक से आयुक्तकुशलाभ्यां चासेवायाम् इस सूत्र से जब षष्ठी होती है तब कुशलः हरिपूजनस्य यह प्रयोग सिद्ध है। जब सप्तमी होती है तब कुशलः हरिपूजने यह प्रयोग सिद्ध है।

पाठगत प्रश्न-3

यहां कुछ पाठगत प्रश्न दिए जाते हैं ।

11. अतसुच्-प्रत्यय का अर्थ क्या है?
12. ग्रामस्य दक्षिणतः यहां षष्ठी किस सूत्र से हुई है?
13. षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन इसका उदाहरण बताइए?
14. ग्रामस्य दक्षिणेन यहां षष्ठी किस सूत्र से हुई है?
15. एनप्-प्रत्ययान्त एक शब्द लिखिए?
16. एनबन्तेन योग में कौन-कौन सी विभक्ति होती है?
17. रामेण तुल्यः कृष्णः यहां तृतीया किस सूत्र से हुई है?
18. रामेण तुल्यः कृष्णः। रामस्य तुल्यः कृष्णः। इनमें कौन साधु प्रयोग है?
19. कुशलः हरिपूजनस्य, कुशलः हरिपूजने। इनमें कौन साधु प्रयोग है?
20. अतुलोपमाभ्याम् इस पद में कौन-सा समास है। विग्रह क्या है?
21. आयुक्तकुशलाभ्याम् इस पद में कौन-सा समास है। विग्रह क्या है?
22. प्रसितोत्सुकाभ्याम् इस पद में कौन-सा समास है। विग्रह क्या है?

25.9 प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च॥ (2.3.44)

सूत्रार्थ- प्रसितयोग और उत्सुकयोग में प्रातिपदिक से तृतीया विभक्ति और सप्तमी विभक्ति होती है।

सूत्रावतरणम्- हरिणा प्रसितः, हरौ प्रसितः, आदि में प्रसितादि शब्द प्रयोग में राज्ञः पुरुषः आदि जैसे केवल षष्ठी प्राप्त थी, सप्तमी तो किसी भी सूत्र से प्राप्त नहीं थी, उसके विधान के लिए आयुक्तकुशलाभ्यां चासेवायाम् इस सूत्र से समागत है।

सूत्र व्याख्या- यह विधिसूत्र है। यह सूत्र तृतीया विभक्ति और सप्तमी विभक्ति का विधान करता है। इस सूत्र में तीन पद हैं। प्रसितोत्सुकाभ्याम् यह तृतीया द्विवचनान्त पद है। तृतीया यह प्रथमैकवचनान्त पद है। च यह अव्ययपद है। यहां सप्तम्यधिकरणे च इस सूत्र से सप्तमी पद अनुवर्तित होता है। यहां प्रसितोत्सुकाभ्याम् यह पद समस्त है। यहां इतरेतरयोगद्वन्द्वसमास है। इसका विग्रह होता है प्रसितश्च उत्सुकश्च इति प्रसितोत्सुकौ, ताभ्याम् प्रसितोत्सुकाभ्याम्।

सूत्रार्थविचार- प्रसितोत्सुक में तृतीया विभक्ति और सप्तमी विभक्ति होती है यह वाक्य योजना है। प्रसितोत्सुकाभ्याम् यह तृतीया बल से योग में है ऐसा आक्षेपित है। प्रातिपदिक से यह आक्षेपित है। इस प्रकार सूत्रार्थ होता है। प्रसितयोग और उत्सुकयोग में प्रातिपदिक से तृतीया विभक्ति और सप्तमी विभक्ति

ध्यान दें:

होती है।

उदाहरण - हरिणा प्रसितः, हरौ प्रसितः। हरिणा उत्सुकः, हरौ उत्सुकः।

सूत्रार्थसमन्वय- हरिणा प्रसितः, हरौ प्रसितः। हरिणा उत्सुकः, हरौ उत्सुकः। इन उदाहरणों में सूत्रार्थ का समन्वय किया गया है।

हरिपूजनेन प्रसितः भक्तः, हरिपूजने प्रसितः भक्तः। यहां वाक्य में प्रसित शब्द का प्रयोग है। इस प्रकार प्रसित शब्द के योग में प्रातिपदिक से प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च इस सूत्र से तृतीया और सप्तमी प्राप्त है। वहां इस वाक्य में दो प्रातिपदिक है हरिपूजन और भक्त। वहां किस प्रातिपदिक से तृतीया और सप्तमी होती है ऐसा प्रसितशब्द का तत्पर अर्थ है। इसी प्रकार जिस विषय में तत्पर है उस वाचक शब्द से ही तृतीया और सप्तमी होंगी। प्रकृत में कोई भक्तः हरिपूजनविषय में तत्पर है, और उसका वाचक हरिपूजन यह प्रातिपदिक है, अतः उससे जब तृतीया होती है तब हरिपूजनेन प्रसितः भक्तः यह सिद्ध है। जब सप्तमी होती है तब हरिपूजने प्रसितः भक्तः यह सिद्ध है।

हरिपूजनेन उत्सुकः भक्तः, हरपूजने उत्सुकः भक्तः। यहां वाक्य में उत्सुकशब्द का प्रयोग है। इस प्रकार उत्सुकशब्दयोग में प्रातिपदिक से प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च इस सूत्र से तृतीया और सप्तमी प्राप्त है। वहां इस वाक्य में दो प्रातिपदिक हैं हरिपूजन और भक्त। वहां किस प्रातिपदिक से तृतीया और सप्तमी होती है यह ही उत्सुकशब्द का तत्पर अर्थ है। इसी प्रकार जिस विषय में तत्पर है उसका वाचक शब्द से ही तृतीया और सप्तमी होंगे। प्रकृत में कोई भक्तः हरिपूजन विषय में तत्पर है, उसका वाचक हरिपूजन प्रातिपदिक है, अतः उससे जब तृतीया होती है तब हरिपूजनेन उत्सुकः भक्तः यह सिद्ध है। जब सप्तमी होती है तब हरिपूजने उत्सुकः भक्तः यह सिद्ध है।

25.10 साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः॥ (2.3.43)

सूत्रार्थ- अर्चा गम्यमान साधुयोग और निपुणयोग में प्रातिपदिक से सप्तमी विभक्ति होती है प्रति अप्रयोग में।

सूत्रावतरण- मातरि साधुः कृष्णः, मातरि निपुणः कृष्णः, आदि साधुनिपुणशब्दप्रयोग में राज्ञः पुरुषः आदि जैसे केवल षष्ठी प्राप्त थी, सप्तमी तो किसी भी सूत्र से प्राप्त नहीं होती, उसके विधान के लिये साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः यह सूत्र समागत है।

सूत्र व्याख्या- यह विधिसूत्र है। यह सूत्र सप्तमी विभक्ति का विधान करता है। इस सूत्र में तीन पद हैं। साधुनिपुणाभ्याम् यह तृतीया द्विवचनान्त पद है। अर्चायाम् यह सप्तम्येकवचनान्त पद है। सप्तमी यह प्रथमान्त पद है। अप्रतेः यह षष्ठ्यन्त पद है। साधुनिपुणाभ्याम् यह पद समस्त है। यहां इतरेतरयोगद्वन्द्वसमास है। इसका विग्रह होता है साधुश्च निपुणश्च इति साधुनिपुणौ, ताभ्यां साधुनिपुणाभ्याम।

सूत्रार्थ विचार- अर्चा साधुनिपुणों में सप्तमी विभक्ति होती है प्रति अप्रयोग में ऐसी वाक्य योजना है। साधुनिपुणाभ्याम् यह तृतीयाबल से योग में है ऐसा आक्षेपित है। और प्रातिपदिकात् यह आक्षेपित है। और गम्यमानायाम् आक्षेपित है। इस प्रकार सूत्रार्थ होता है अर्चा गम्यमान साधुयोग और निपुणयोग में प्रातिपदिक से सप्तमी विभक्ति होती है किन्तु प्रति के प्रयोग में नहीं होती है।

उदाहरण - मातरि साधुः कृष्णः। मातरि निपुणः कृष्णः।

सूत्रार्थ समन्वय- मातरि साधुः कृष्णः। मातरि निपुणः कृष्णः, इन उदाहरणों में सूत्रार्थ का समन्वय किया गया है।

ध्यान दें:

मातरि साधुः कृष्णः। यहां वाक्य में साधु शब्द का प्रयोग है। पुनः यहां अर्चा भी गम्यमान है। इसी प्रकार अर्चा गम्यमान साधुयोग में मातृ इस प्रातिपदिक से साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः इस सूत्र से जब सप्तमी होती है तब मातरि साधुः कृष्णः यह वाक्य सिद्ध है।

मातरि निपुणः कृष्णः। यहां वाक्य में निपुणशब्द का प्रयोग है। पुनः यहां अर्चा भी गम्यमान है। इसी प्रकार अर्चा गम्यमान निपुणयोग में मातृ इस प्रातिपदिक से साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः इस सूत्र से जब सप्तमी होती है तब मातरि निपुणः कृष्णः यह वाक्य सिद्ध है।

25.11 स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च॥ (2.3.39)

सूत्रार्थ- स्वामियोग ईश्वरयोग अधिपतियोग दायादयोग साक्षियोग प्रतिभूयोग और प्रसूतयोग में प्रातिपदिक से षष्ठी और सप्तमी होती है।

सूत्रावतरण- वहां स्वामीश्वरादि शब्दों के प्रयोग मं केवल षष्ठी प्राप्त थी, किन्तु इनके प्रयोग में सप्तमी भी इष्ट है अतः सप्तमी विधान के लिये यह सूत्र समागत है।

सूत्र व्याख्या- यह विधिसूत्र है। यह सूत्र षष्ठी विभक्ति और सप्तमी विभक्ति का विधान करता है। इस सूत्र में तीन पद हैं। स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैः यह तृतीया बहुवचनान्त पद है। च यह अव्ययपद है। यहां सप्तम्यधिकरणे च इस सूत्र से सप्तमी यह पद अनुवर्तित है। षष्ठी चानादरे इस सूत्र से षष्ठी यह पद अनुवर्तित है। यहां स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैः यह पद समस्त है। यहां इतरेतरयोगद्वन्द्वसमास है। इसका विग्रह है स्वामी च ईश्वरश्च अधिपतिश्च दायादश्च साक्षी च प्रतिभूश्च प्रसूतश्च इति स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूताः। तैः स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैः।

सूत्रार्थ विचार- स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूत में षष्ठी और सप्तमी होती है यह वाक्य योजना है। स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैः यह तृतीयाबल से योग में है ऐसा आक्षेपित है। और प्रातिपदिकात् यह आक्षेपित है। इसी प्रकार सूत्रार्थ होता है स्वामियोग ईश्वरयोग अधिपतियोग दायादयोग साक्षियोग प्रतिभूयोग और प्रसूतयोग में प्रातिपदिक से षष्ठी और सप्तमी होती है। दायमादत्ते स दायादः।

उदाहरण- गवां स्वामी कृष्णः, गोषु स्वामी कृष्णः। गवाम् ईश्वरः, गोषु ईश्वरः। गवाम् अधिपतिः, गोषु अधिपतिः। गवां दायादः, गोषु दायादः। गवां साक्षी, गोषु साक्षी। गवां प्रतिभूः, गोषु प्रतिभूः। गवां प्रसूतः, गोषु प्रसूतः।

सूत्रार्थ समन्वय- गवां स्वामी कृष्णः, गोषु स्वामी कृष्णः इन उदाहरण में सूत्रार्थ का समन्वय प्रस्तुत है।

गवां स्वामी कृष्णः, गोषु स्वामी कृष्णः। यहां वाक्य में स्वामिशब्द का प्रयोग है। इसी प्रकार यहां स्वामिशब्द का योग में प्रातिपदिक से षष्ठी और सप्तमी होता है। इस अंश से षष्ठी व सप्तमी प्राप्त होती है वहां स्वामिशब्द के प्रयोग में किससे षष्ठी व सप्तमी होता है यह जिसका स्वामि है उसका वाचक प्रातिपदिक से ही है। प्रकृत में स्वामिशब्द का प्रयोग गवां स्वामी कृष्णः अस्ति ऐसा तात्पर्य है। उससे गवां स्वामी प्रतिपादित होता है। अतः गोवाचक प्रातिपदिक से षष्ठी और सप्तमी होंगे। इसी प्रकार जब षष्ठी होती है तब गवां स्वामी कृष्णः ऐसा सिद्ध है। जब सप्तमी होती है तब गोषु स्वामी कृष्णः यह सिद्ध है। इसी प्रकार अन्य में प्रयोग भी जानने चाहिए।

ध्यान दें:

25.12 यतश्च निर्धारणम्।। (2.3.41)

सूत्रार्थ- जिस समुदाय से पृथक् किया जाता, उसके जैसे समुदायवाचक शब्दों से षष्ठी और सप्तमी होती है।

सूत्र व्याख्या- यह विधि सूत्र है। यह सूत्र षष्ठी विभक्ति को बतलाता है। इस सूत्र में तीन पद है। क्योंकि यह तसिल्प्रत्ययान्तमव्ययपद है। च यह अव्ययपद है। निर्धारणम् यह प्रथमैकवचनान्त पद है। षष्ठी चानादरे इस सूत्र से षष्ठी इस पद की अनुवृति है। सप्तम्यधिकरणे च इस सूत्र से सप्तमी यह पद अनुवर्तित है। जहां निर्धारण करना हो वहां षष्ठी और सप्तमी होती है यह वाक्य योजना है। यहां यत: इसका जिस समुदाय से यह अर्थ है। निर्धारणम् इसका पृथक्करण अर्थ है। पृथक्करणम् इसका स्वभिन्न समुदायावृत्तिधर्मवत्त्वबोध यह अर्थ है। वहां से इति इसका अध्याहार किया जाता है। इस प्रकार सूत्रार्थ होता है - जिस समुदाय से पृथक् किया जाता है उसके जैसे समुदायवाचक शब्दों से षष्ठी और सप्तमी होती है। अर्थात् जिस समुदाय से उस एक देश के स्वभिन्न समुदायावृत्तिधर्मवत्त्वबोध होता है उस समुदायवाचक प्रातिपदिक से षष्ठी और सप्तमी होती है।

उदाहरण- नृणां ब्राह्मण: श्रेष्ठ:, नृषु ब्राह्मण: श्रेष्ठ:। गवां कृष्णा बहुक्षीरा, गोषु कृष्णा बहुक्षीरा। गच्छतां धावन् शीघ्र:, गच्छत्सु धावन् शीघ्र:। छात्राणां मैत्र: पटु:, छात्रेषु मैत्र: पटु:।

सूत्रार्थ समन्वय- नृणां ब्राह्मण: श्रेष्ठ:, नृषु ब्राह्मण: श्रेष्ठ:। यह इस सूत्र का उदाहरण है। यहां यह जानना चाहिए कि जब मनुष्य समुदाय में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र होते हैं। अत: ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र समुदाय ही मनुष्य शब्द से व्यवहित होते हैं। वहां ब्राह्मण भिन्न समुदाय क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र समुदाय होता है। और श्रेष्ठत्व केवल ब्राह्मण में ही अभिमत है न कि क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रों में। इसी प्रकार इस वाक्य का तात्पर्य है कि मनुष्य समुदाय के एकदेशभूत जो ब्राह्मण समुदाय है वह ब्राह्मण भिन्न क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रावृत्तिश्रेष्ठत्व धर्मवान् है। इसी प्रकार प्रकृत में मनुष्य समुदाय से उस एक देशभूत ब्राह्मण समुदाय के ब्राह्मणभिन्न समुदायावृत्ति धर्मवत्त्वबोधन किया जाता है। अत: उसके जैसे मनुष्य समुदाय वाचक नृ शब्द से षष्ठी और सप्तमी होती है। उससे नृणां ब्राह्मण: श्रेष्ठ:, और नृषु ब्राह्मण: श्रेष्ठ: यह सिद्ध है। ऐसे ही नृणां क्षत्रिय: शूर:, नृषु क्षत्रिय: शूर:। नृणां वैश्य: धनिक:, नृषु वैश्य: धनिक: आदि भी जानने चाहिए।

गवां कृष्णा बहुक्षीरा, गोषु कृष्णा बहुक्षीरा। यह इस सूत्र का उदाहरण है। यहां जब तक यह जानें कि गोसमुदाय में कपिला, कृष्णा, रक्ता और चित्रा गाय होती हैं। वहां कृष्णगोभिन्न गोसमुदाय चित्र रक्त कपिल गोसमुदाय होता है। यद्यपि सभी गायें दुग्ध देती हैं किन्तु बहुक्षीरत्व केवल कृष्णा गाय में ही है न कि चित्र रक्त कपिल गोसमुदाय में। इस प्रकार इस वाक्य का तात्पर्य है जो गोसमुदाय के एकदेशभूत है जो कृष्ण गो समुदाय है वह कृष्ण गोभिन्न चित्र रक्त, कपिल गोसमुदायावृत्तिबहुक्षीरत्वधर्मवान् है। इसी प्रकार प्रकृत में गोसमुदाय से उस एकदेशभूत कृष्णगोसमुदाय के कृष्णगोभिन्न गोसमुदायावृत्ति बहुक्षीरत्व धर्मवत्त्व बोधन किया जाता है अत: उसके गोसमुदाय वाचक गो शब्द से षष्ठी और सप्तमी होती है। इससे गवां कृष्णा बहुक्षीरा, गोषु कृष्णा बहुक्षीरा यह सिद्ध है।

छात्राणां मैत्र: पटु:, छात्रेषु मैत्र: पटु:। यह इस सूत्र का उदाहरण है। यहां जब तक यह जाने कि छात्र समुदाय में चैत्र, राम, हरि, कृष्ण, मैत्र इत्यादि विविध नामक छात्र होते हैं। वहां मैत्र भिन्न समुदाय राम कृष्ण हरि चैत्र छात्र समुदाय होता है। और पटुत्व केवल मैत्र में ही है न कि राम कृष्ण हरि चैत्र छात्र समुदाय में। इस प्रकार इस वाक्य का तात्पर्य है कि जो छात्र समुदाय के एकदेशभूत है जो मैत्र नामक छात्र है वह मैत्र भिन्न राम कृष्ण हरि चैत्र छात्र समुदायावृत्ति पटुत्व धर्मवान है। इसी प्रकार प्रकृत में छात्र

पाठ-25

उप पद विभक्ति में षष्ठी और सप्तमी

ध्यान दें:

समुदाय से उस एक देशभूत मैत्र नामक छात्र के मैत्रभिन्न समुदायावृत्ति पटुत्व धर्मवत्त्व बोध किया जाता है। अतः उस जैसे छात्र समुदाय वाचक छात्र शब्द से षष्ठी और सप्तमी हुई है।

गच्छतां धावन् शीघ्रः, गच्छत्सु धावन् शीघ्रः। यह इस सूत्र का उदाहरण है। यहां जब तक यह जानें कि गच्छत्समुदाय में कुछ जाते हैं और कुछ दौङते हैं। अतः गच्छत् और धावत् समुदाय ही गच्छत् समुदाय शब्द से व्यवहित है। वहां धावत् समुदाय से भिन्न समुदाय गच्छत्समुदाय होता है। और शीघ्रत्व केवल धावत्समुदाय में ही स्थित है न कि गच्छत्समुदाय में। इस प्रकार इस वाक्य का तात्पर्य है कि गच्छत्समुदाय एकदेशभूत है जो धावत्समुदाय है वह धावत्समुदाय से भिन्न गच्छत्समुदायावृत्ति शीघ्रत्व धर्मवान् है। इसी प्रकार प्रकृत में गच्छत्समुदाय से उस एक देशभूत धावत्समुदाय का धावत्समुदाय गच्छत्समुदायावृत्ति शीघ्रधर्मवत्त्व बोधन किया जाता है। अतः उस गच्छत्समुदाय वाचक से गच्छत् शब्द से षष्ठी और सप्तमी हुई है। उससे गच्छतां धावन् शीघ्रः, गच्छत्सु धावन् शीघ्रः यह दो वाक्य सिद्ध है।

पाठगत प्रश्न-4

यहां कुछ पाठगत प्रश्न दिए जाते हैं।

23. साधुनिपुणाभ्याम् इस पद में कौन-सा समास है और विग्रह क्या है?

24. मातरि साधुः कृष्णः यहां सप्तमी किस सूत्र से है?

25. स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैः यहां कौन-सा समास है और विग्रह क्या है?

26. निर्धारणम् इसका क्या अर्थ है?

पाठ सार

यहां पाठ में अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते इस सूत्र का व्याख्यान है। कर्म करण सम्प्रदान अपदान अधिकरणरूप अर्थ और प्रातिपदिकार्थ कहे गये हैं, उनसे अन्य सम्बन्ध होता है वह सम्बन्ध ही शेष पद का अर्थ है। इसी प्रकार के सम्बन्ध अर्थ में षष्ठी शेषे इस सूत्र से षष्ठी विभक्ति होती है। उससे अन्य चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः, षष्ठी हेतुप्रयोगे, सर्वनाम्नस्तृतीया च, षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन, एनपा द्वितीया, तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयान्यतरस्याम्, आयुक्तकुशलाभ्यां चासेवायाम्, प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च, साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः, स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च, और यतश्च निर्धारणम् सूत्रों की व्याख्या है। इन सूत्रों व उनके उदाहरणों को सम्यक् अध्ययन करने वालों के लिये सविस्तार बताया गया है।

पाठान्त प्रश्न

यहां परीक्षोपयोगी पूछने वाले प्रश्न दिए जाते हैं।

1. षष्ठी शेषे इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।

2. अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते इस सूत्र की व्याख्या लिखिए।

3. तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयान्यतरस्याम् इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।

ध्यान दें:

4. आयुक्तकुशलाभ्यां चासेवायाम् इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
5. प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
6. साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
7. स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
8. यतश्च निर्धारणम् इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।
9. राज्ञः पुरुषः इसका प्रयोग सिद्ध कीजिए।
10. नृणां नृषु वा ब्राह्मणः श्रेष्ठः इसका प्रयोग सिद्ध कीजिए।
11. रामाद् अन्यः कृष्णः इसका प्रयोग सिद्ध कीजिए।
12. मातरि साधुः कृष्णः इसका प्रयोगं सिद्ध कीजिए।

पाठगत प्रश्नोत्तर

उत्तर-1

1. कर्म, करण, सम्प्रदान, अपदान, अधिकरण रूप अर्थ और प्रातिपदिकार्थ कहे गये हैं, उनसे अन्य सम्बन्ध होता है, उस सम्बन्ध का ही शेषपद का अर्थ है।
2. सम्बन्ध के दो संबंधी होते हैं एक प्रतियोगी और दूसरा अनुयोगी।
3. प्रतियोगी।
4. राज्ञः पुरुषः।

उत्तर-2

5. चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः।
6. आयुष्यं देवदत्ताय देवदत्तस्य वा भूयात।
7. हेतु शब्द के प्रयोग में हेतौ से दो तरह से षष्ठी होती है।
8. षष्ठी हेतुप्रयोगे।
9. निमित्तपर्यायप्रयोगे सर्वासां प्रायदर्शनम् इस वार्तिक से।
10. प्रथमा से सप्तमी तक सभी विभक्तयां होती है।

उत्तर-3

11. दिग्देशकालरूपः अर्थः।
12. षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन।
13. ग्रामस्य दक्षिणतः।
14. एनपा द्वितीया।

ध्यान दें:

15. दक्षिणेन।

16. एनबन्तेन योगे द्वितीया और षष्ठी होती है।

17. तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयान्तरस्याम् इस सूत्र से।

18. दोनों से भी।

19. दोनों से भी।

20. अतुलोपमाभ्याम् यहां द्वन्द्वगर्भतत्पुरुषसमास है। इसका विग्रह होता है- तुला च उपमा च इति तुलोपमे। न तुलोपमे इति अतुलोपमे। ताभ्याम् अतुलोपमाभ्याम्।

21. आयुक्तकुशलाभ्याम् इस पद इतरेतरयोगद्वन्द्वसमास है। इसका विग्रह होता है आयुक्तश्च कुशलश्च इति आयुक्तकुशलौ, ताभ्याम् आयुक्तकुशलाभ्याम्।

22. प्रसितोत्सुकाभ्याम् इस पद में इतरेतरयोगद्वन्द्वसमास है। इसका विग्रह होता है प्रसितश्च उत्सुकश्च इति प्रसितोत्सुकौ, ताभ्याम् प्रसितोत्सुकाभ्याम्।

उत्तर-4

23. साधुनिपुणाभ्याम् इस पद में इतरेतरयोगद्वन्द्वसमास है। इसका विग्रह होता है साधुश्च निपुणश्च इति साधुनिपुणौ, ताभ्यां साधुनिपुणाभ्याम्।

24. साधुनिपुणामर्चायां सप्तम्यप्रतेः।

25. स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैः इस पद में इतरेतरयोगद्वन्द्वसमास है। इसका विग्रह है स्वामी च ईश्वरश्च अधिपतिश्च दायादश्च साक्षी च प्रतिभूश्च प्रसूतश्च इति स्वामीश्वराधि पतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूताः। तैः स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैः।

26. निर्धारणम् इसका पृथक्करणम् यह अर्थ है, स्वभिन्नसमुदायावृत्तिधर्मवत्त्वबोधनम् इति यावत्।

26

कृत्य प्रकरण

ध्यान दें:

इससे पूर्व सप्त विभक्त्यर्थ प्रकरण समाप्त हुआ। इसके बाद चार कृत्-प्रत्यय प्रकरण होंगे। उनमें से कृत्य प्रकरण प्रथम है।

धातु से दो प्रकार के प्रत्यय होते हैं। वे हैं तिङ् और कृत। और वे धातु से कहे जाते हैं। तिङ् प्रत्याहार में स्थित प्रत्यय धातु के अन्त में होता है इसलिए तिङन्तशब्द व्यवहार किया जाता है। कृत् प्रत्यय धातु के अन्त में होता है इसलिए कृदन्त शब्द से व्यवहार किया जाता है। तिङ् यह प्रत्याहार है। वह प्रत्याहार तिप्प्रत्यय से आरम्भ होकर महिङ्प्रत्यय तक अष्टादश प्रत्ययों का भ्वादिप्रकरण में बोधक है। वे तिङ्प्रत्यय धातु विहित लकार के स्थान में विधित है। कृत् तिङ् इस सूत्र से धातु के लिये विहित तिङ्प्रत्ययों को छोडकर उससे भिन्न अच् -ण्यत् -णमुल् इत्यादि प्रत्ययों की कृत्संज्ञा का विधान करते हैं। जब धातु से परे कृत्प्रत्यय होता है तब कृदन्तशब्द उत्पन्न होते हैं। उस कृदन्तशब्द का प्रयोग तिङन्तस्थल में कर सकते है। यथा- सोऽगमत्, सोऽपश्यत् इत्यादि तिङन्त प्रयोग स्थल पर सः गतः, सः गतवान्, तेन दृष्टम्, सः दृष्टवान् आदि कृदन्तप्रयोग का सौन्दर्य लेकर आते हैं। हितोपदेश, पञ्चतन्त्र, संस्कृतनाटक इत्यादि में कृदन्त प्रयोग का प्राचुर्य है। यह समग्र कृदन्त प्रकरण कृत्य -पूर्वकृदन्त -उणादि -उत्तरकृदन्त भेद से चार प्रकार का है। इनमें उणादि की आलोचना यहां पाठों में नहीं करेंगे। अपितु पूर्वकृदन्त के दो भाग विहित है इन्हें मिलाकर समग्र कृदन्त प्रकरण के चार पाठ कल्पित हैं। कृत्प्रत्ययों में कुछ की कृत्यसंज्ञा भी होती है। अत एव कृत्य प्रकरण कहा जाता है। यह प्रकरण ही इस पाठ में आलोचित है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे-

- कृत्प्रत्यय और कृत्य प्रत्यय क्या हैं यह जान पाने में;
- कितने कृत्य प्रत्यय होते हैं यह भी जान पाने में;
- कृत्प्रत्यय किससे और किस अर्थ में होता है यह भी जान पाने में;
- कृत्य प्रत्यय किस अर्थ में होता है यह जाने पाने में;

ध्यान दें:

- उत्सर्गापवाद प्रत्ययों के विकल्प से प्रवृत्तिनियम को जान पाने में;
- बहुल-शब्दार्थ जान पाने में;
- लोक में व्यवहार उपयोगी कुछ कृदन्त शब्दों की प्रक्रिया यहां प्रदर्शित हैं उनको जान पाने में;

26.1 धातोः॥ (3.1.91)

सूत्रार्थ- प्रत्यय से धातु परे होने पर तृतीयाध्याय समाप्ति तक यह सूत्र चलेगा।

सूत्र व्याख्या- यह अधिकार सूत्र एकपदात्मक है। धातोः यह पञ्चम्येकवचनान्त है। प्रत्ययः (1/1), परः (1/1) ये दो अधिकृत है। धातोः इसका अधिकार तृतीयाध्याय समाप्ति तक है। सूत्र का आशय है कि- यहां से आरम्भ करके तृतीयाध्याय की समाप्ति तक जो भी प्रत्यय विहित हैं वे धातु से परे होते हैं। उन प्रत्ययों से तिङ्प्रत्यय, कृत्प्रत्यय ये दो प्रकार के प्रत्यय होते हैं। तिङ्प्रत्यय से भिन्न जो प्रत्यय होते हैं उनकी कृत् तिङ् इस सूत्र से कृत् संज्ञा होती है। कृत्संज्ञा का प्रयोजन- कर्तरि कृत् इत्यादि सूत्र से कृत्प्रत्ययों का अर्थनिर्देश है। किन्तु धातु से कृत्प्रत्यय में विहित होने पर कृदन्त समुदाय होता है। उसका कृत्तद्धितसमासाश्च इससे प्रातिपदिकसंज्ञा होती है। उससे स्वादिप्रत्ययों की उत्पत्ति होती हैं। तिङ् की कृत्संज्ञा नहीं होती हैं। इससे उनकी प्रातिपदिकसंज्ञा भी नहीं होती है। उसके अभाव उनका स्वादिप्रत्ययविधान भी नहीं होता है यही यहां विशेष है।

अब कृदन्तप्रकरण में बहुप्रयोजनवती यह परिभाषा आरम्भ करते हैं -

26.2 वासरूपोऽस्त्रियाम्॥ (3.1.94)

सूत्रार्थ- इस धातु अधिकार में ऽसरूपोऽपवादप्रत्ययः उत्सर्गस्य बाधको वा स्यात् स्त्र्यधिकार के विना।

सूत्र व्याख्या- इस परिभाषा सूत्र में तीन पद है। इस सूत्र से उत्सर्ग व अपवाद प्रत्ययों की विकल्प से प्रवृत्ति का नियम बताया जाता है। वा (अव्यय) असरूपः (1/1) अस्त्रियाम् (7/1) यह सूत्रगत पदच्छेद हैं। समानं रूपं यस्य स सरूपः यहां बहुव्रीहि समास है, न सरूपः असरूपः यहां नञ्समास है। तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् इस सूत्र से तत्र इस अव्ययपद की अनुवृति होती है। इससे यहां धातोः इस अधिकार सूत्र का परामर्श किया जाता है। वहां धात्वधिकार में यह अर्थ है। न स्त्री अस्त्रि यहां नञ्तत्पुरुष समास है। तस्याम् अस्त्रियाम्। लिङ्गवती परिभाषा यह परिभाषा का लक्षण है। असरूपः यह लिङ्ग निर्देश है। जहां असरूप प्रत्यय का विधान किया जाता है वहां यह विकल्प से तिष्ठित होता है। या यह पहले का बाधक है इस पद को समझना चाहिए। असरूप विकल्प से बाधक होता है। अपवाद प्रत्यय विकल्प से किसके बाधक होते हैं इस आकाङ्क्षा में उत्सर्ग का यह प्राप्त होता है। अत एव धातोः इस अधिकार में विधीयमान असरूप अपवादप्रत्यय से उत्सर्गप्रत्ययों का विकल्प से बाधक होते हैं यह सूत्रार्थ प्राप्त होता है। सरूप तो अपवाद प्रत्यय उत्सर्ग के नित्य बाधक है यह अर्थ पर्यालोचना से प्राप्त होता है।

यहां रूपम् इससे अनुबन्ध रहित आनुपूर्वी जानना चहिए। जिस अनुबन्ध रहित प्रत्यय से जिस अपर प्रत्यय का आनुपूर्वी तुल्य हो वह प्रत्यय अपरप्रत्यय का सरूप होता है। आनुपूर्वी का भेद है इसलिए असरूप होता है।

उदाहरण में सूत्रार्थ समन्वय- यहां दिङ्मात्र उदाहरण को प्रदर्शित करते हैं। जैसे कि ण्वुल्तृचौ यह उत्सर्ग है। इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः यह विशेष विहित होने से अपवाद है। कौन सा प्रत्यय असरूप है।

ध्यान दें:

वह प्रकृत परिभाषा से विकल्प से उत्सर्गों का ण्वुल् और तृच बाधक होता है। उससे पक्ष में ण्वुल् वा तृच भी होता है। ऐसे ही (कप्रत्यय में) विक्षिप, (ण्वुल्प्रत्यय में) विक्षेपक, (तृच्प्रत्यय) विक्षेप्ता ये तीन रूप सम्भव होते हैं। ण्वुल् तृच् और क ये तीन प्रत्यय। अनुबन्ध रहित होने पर वु तृ अ ये शेष रहते हैं। यहां ण्वुल आनुपूर्वी वु है। तृच आनुपूर्वी तृ है। क -प्रत्यय का आनुपूर्वी अ है। इनमें से आनुपूर्वियों के भेद होते हैं। अतः वे परस्पर असरूप हैं।

कर्मण्यण् यह उत्सर्ग सूत्र है। आतोऽनुपसर्गे कः यह अपवादसूत्र है। कप्रत्यय का अण्-प्रत्यय के अनुबन्ध विनिर्मुक्त का, अश्मात्रशेष का, समानरूप होने से कप्रत्यय अण्-प्रत्यय का नित्य बाधक होता है। अर्थात् कप्रत्यय में ककार अनुबन्ध है। अनुबन्धलोप में 'अ' यह मात्र अवशेष रहता है। यह कप्रत्यय का रूप है। अण् यह प्रत्यय है। उसका णकार इत्संज्ञक है। णलोप में 'अ' यह मात्र शेष रहता है। यह उसका रूप है। कप्रत्यय का जो रूप है वह ही अण् इस प्रत्यय का रूप है। अतः अण् का सरूप क -प्रत्यय होता है। उससे गां ददाति इस विग्रह में अण्बाधक किसके विधान से गोदः यह रूप सिद्ध है।

अस्त्रियाम् यह सूत्र का अपरांश है। अस्त्रियाम् यहां स्त्री शब्द स्वरित होता है। स्त्रियां क्तिन् यह अधिकार सूत्र है। यहां स्त्रियाम् यह पद अधिकृत है। स्त्र्यधिकार में स्थित असरूप प्रत्यय उत्सर्ग का नित्य ही बाधक है। वैसे ही स्त्रियां क्तिन् यह उत्सर्ग सूत्र है। 'अ' प्रत्यय प्रत्ययान्त से विहित अकार प्रत्यय उसका अपवाद है। और वह नित्य ही बाधक होता है। चिकीर्षा इत्यादि इसके उदाहरण हैं।

यहां इसका सार है-

1. धातोः इस अधिकार में असरूप अपवाद प्रत्यय उत्सर्ग का विकल्प से बाधक है।
2. उसी अधिकार में सरूप अपवाद प्रत्यय उत्सर्ग को नित्य बाधित करता है।
3. स्त्रियां क्तिन् इस अधिकार में असरूप अपवाद प्रत्यय उत्सर्ग का नित्य बाधक है।

26.3 कृत्याः॥ (3.1.95)

सूत्रार्थ- ण्वुल्तृचौ (3.1.133) इससे पूर्व कृत्य संज्ञा थी॥

सूत्र व्याख्या- यह अधिकार सूत्र एक पदात्मक है। इस सूत्र से कृत्य संज्ञा होती है। कृत्याः यह प्रथमा बहुवचनान्त है। आगे ण्वुल्तृचौ (3.1.133) इस सूत्र से पूर्व जो प्रत्यय विधित होते हैं वे भी कृत्यसंज्ञा होते हैं यह सूत्रार्थ है। यहां कृत्संज्ञक प्रत्ययों की कृत्य संज्ञा होती है। इसी तरह यहां प्रकरण में धातु विहित प्रत्यय की दो प्रकार की संज्ञा होती है यह विशेष है। कृत्य संज्ञा का प्रयोजन- उनको ही कृत्यक्तखलर्थाः, कृत्यलुटो बहुलम् इत्यादि सूत्रों से कहा गया है। कृत्संज्ञा के प्रयोजन को तो आगे बताया गया है। समग्र कृत्य प्रकरण में सात प्रत्यय वर्णित हैं। इस प्रसङ्ग में एक कारिका प्रसिद्ध है-

तव्यं च तव्यतञ्चैवानीयर-केलिमरौ तथा।

यतं ण्यतं क्यपं चापि कृत्यान् सप्त प्रचक्षते॥ इति

कृत्य प्रकरण स्थानों में प्रत्ययों की अर्थनिर्देश के लिए आदि में सामान्य सूत्र प्रस्तुत है-

26.4 कर्तरि कृत॥ (3.4.67)

सूत्रार्थ- कृत्प्रत्यय कर्ता से होता है।

सूत्र व्याख्या- इस विधि सूत्र में दो पद है। इस सूत्र से कृत्-प्रत्ययों के कर्ता अर्थ का विधान

ध्यान दें:

है। कर्तरि (7/1) कृत् (1/1) यह सूत्रगत पदों का विभक्ति निर्देश है। प्रत्ययः (1/1), परः (1/1), धातोः (5/1) ये तीन अधिकृत है। धातु से परे कृत्संज्ञक प्रत्यय से कर्तृ अर्थ में होते हैं यह सूत्रार्थ है। यहां विशिष्ट अर्थ का निर्देश नहीं हैं वहां कर्ता अर्थ में कृत्प्रत्यय प्रवर्तित होते हैं। जैसे ण्वुल्तृचौ। यहां अर्थ विशेष नहीं निर्दिष्ट है अतः इनमें कर्तृ अर्थ में होता है।

उदाहरण- करोति इति कारकः, कर्ता।

तव्यत्, तव्य, अनीर्य आदि वक्ष्यमाण कृत्य प्रत्यय भी कृत्संज्ञक होते हैं। अतः उनका कर्तरि विधान प्राप्त होने पर इस अपवाद का योग आरम्भ होता है-

26.5 तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः।। (3.4.70)

सूत्रार्थ- कृत्यक्तखलर्थप्रत्यय भाव और कर्म में ही होते हैं।

सूत्र व्याख्या- यह विधि सूत्र पदत्रयात्मक है। इस सूत्र से कृत्यक्तखलर्थ प्रत्यय भाव में और कर्म में होते हैं ऐसा विधान है। तयोः (7/2) एवं (अव्यय) कृत्यक्तखलर्थाः (1/3) यह सूत्रस्थ पदच्छेद है। प्रत्ययः (1/1), परः (1/1), धातोः (5/1) ये तीन अधिकृत है। प्रत्ययः परः अर्थात् इनसे प्रत्यय परे होने पर प्रथमा बहुवचनान्त का विपरिणाम है। कृत्याश्च क्तश्च खलर्थाश्च कृत्यक्तखलर्थाः यहां इतरेतरयोग द्वन्द्व है। उस शब्द से लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः (3.1.69) इस सूत्र में विद्यमान भाव में कर्म पद में ग्रहण होता है। धातु से परे उनके ही भाव व कर्मों से कृत्यसंज्ञक क्त और खलर्थ प्रत्यय होते हैं यह सूत्रार्थ है। उस कृत्य प्रत्यय से भाव और कर्म अर्थ में प्रवर्तित होते हैं। यहां ये प्रत्यय धातु से अकर्मक भाव में, और सकर्मक कर्म में होते हैं।

उदाहरण में सूत्रार्थ समन्वय-

कृत्याः- तव्यत्, तव्य, अनीयर आदि कृत्य प्रत्यय हैं। कर्तव्यों कटो भवता, करणीयः कटो भवता। यहां कृत्य प्रत्यय कृ धातु सकर्मक होने से कर्म में विहित होता है। भवता शयितव्यम्, भवता शयनीयम् आदि तो शीधातु से अकर्मक होने से भाव में कृत्यप्रत्यय हैं।

क्तः- कृतो घटस्त्वया। यहां क्त प्रत्यय कृधातु सकर्मक होने से कर्म में विहित है। भवता शयितम् आदि तो शीधातु अकर्मक होने से भाव में क्त प्रत्यय होता है।

खलर्थः- ईष्त्करः कटो भवता। सुकरः कटो भवता। यहां कृ धातु सकर्मक होने से ईषदुस्सुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् यह कर्म में खल्प्रत्यय है। दुर्जीवमपथ्यभुजा रोगिणा यहां जीव् -धातु अकर्मक होने से पूर्वोक्त सूत्रे से भाव में खल्प्रत्यय है।

पाठगत प्रश्न-1

1. धातोः इसका अधिकार कहां तक है?
2. वासरूपोऽस्त्रियाम् इसका क्या अर्थ है?
3. कृत्याः यह किस तरह का सूत्र है?
4. कृत्याः इसका अधिकार कहां तक है?

ध्यान दें:

5. वासरूपोऽस्त्रियाम् यह किस तरह का सूत्र है?

6. कृत्यक्तखलर्थाः किस अर्थ में होता हैं?

7. तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः यह किसका अपवाद सूत्र है?

8. एक ही प्रत्यय की कृत्संज्ञा और कृत्यसंज्ञा ये दो संज्ञा सम्भव होती है या नहीं?

9. कितने कृत्य प्रत्यय होते हैं?

10. कृत्य प्रत्ययों की संख्या विषय में प्रसिद्ध कारिका कौन-सी है?

अब कृत्य प्रत्यय विधायक अतीव प्रसिद्ध सूत्र आरम्भ करते हैं-

26.6 तव्यत्तव्यानीयरः॥ (3.1.93)

सूत्रार्थ- धातु से तव्यत्तव्यानीयर प्रत्यय होते हैं।

सूत्र व्याख्या- यह विधि सूत्र एकपदात्मक है। इस सूत्र से तव्यत्तव्यानीयर प्रत्यय होते हैं। तव्यत्तव्यानीयरः यह प्रथमाबहुवचनान्त पद है। प्रत्ययः (1/1), परः (1/1), धातोः (5/1) ये तीन अधिकृत है। तव्यत् च तव्यश्च अनीर्य च तव्यत्तव्यानीयरः यहां इतरेतरयोगद्वन्द्व है। सूत्रार्थ यह है कि जब धातु से परे तव्यत्तव्यानीयर प्रत्यय होते हैं। इस सूत्र में विहित प्रत्यय कृत्संज्ञक और कृत्यसंज्ञक होते हैं। तव्यत् अनीयर यहां तकार और रेफ ये हलन्त्यम् से इत् होते हैं। तव्यत् और तव्य में रूप भेद होने पर भी स्वर ही उन्हें भिन्न करता है। तव्यतः तित्त्वात् तित्स्वरितम् ये तव्यत्प्रत्ययान्त शब्द स्वरितान्त हैं। निरनुबन्धक तव्य के प्रत्यय स्वर से आदि उदात्त है। अनीयर इसके भी रित्त्व से उपोत्तमं रिति इस सूत्र से अनीयर नी यह स्वरित होता है।

उदाहरण- एधितव्यम्, एधनीयं त्वया। चेतव्यः चयनीयो वा धर्मस्त्वया।

सूत्रार्थ समन्वय- एधनीयम्, एधितव्यम्। तव्य तव्यत् अनीयर इन तीन प्रत्ययों का धात्वधिकार में पठित तिङ्भिन्नत्व धातु विहित होने से कृदतिङ् कृत्संज्ञा होती है। पुनः कृत्याः इस सूत्र से कृत्यसंज्ञा भी है। कर्तरि कृत् इससे कर्ता अर्थ में विधान प्राप्त होने से उसके निषेध से भाव में प्रकृत सूत्र से वृद्ध्यर्थक भ्वादिगण अकर्मक सेट एध्-धातु से अनीयर-प्रत्यय से निष्पन्न एधनीय शब्द स्वरूप का कृदन्तत्व कृत्तद्धितसमासाश्च इस सूत्र से प्रातिपदिकसंज्ञा में सौ नपुसंकलिङ्गे सोरमादेशे अमि पूर्वः इससे पूर्व रूप एकादेश एधनीयम् यह रूप सिद्ध होता है। भाव में यह उदाहरण है। तिङ्वाच्य भावना असत्त्वरूप होती है। लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः इस सूत्र से भी असत्त्वरूप ही भाव ग्रहण होता है। अतः तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः इस सूत्र से उस शब्द से उसका ही भाव परामर्शित है। असत्त्व में लिङ्ग का और संख्या का अन्वय नहीं होता है। अतः एधनीयम् यहां द्विवचन या बहुवचन का प्रत्यय नहीं होता है। पुल्लिंग या स्त्रिलिंग में प्रत्यय नहीं होता है। अत एव भाव में औत्सर्गिकमेकवचनं क्लीबत्वं च। तव्ये या तव्यति आर्धधातुकस्येड्वलादेः से इड आगम में प्रक्रिया से एधितव्यम् यह रूप बनता है।

कर्म में उदाहरण- चयनीयं, चेतव्यं वा पुष्पं त्वया इत्यादि। चिञ् चयने (स्वादि. उभय. अनिट्) यह धातु सकर्मकत्व होने से प्रकृत सूत्र से तव्यति या तव्य प्रत्यय में तव्य से या तव्य का आर्धधातुकत्व होने से आर्धधातुकस्येड्वलादेः इस सूत्र से इडागम प्राप्त होने में एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् इस सूत्र से इण् निषेध में सार्वधातुकार्धधातुकयोः इस सूत्र से आर्धधातुकगुण एकार में चेतव्य यह बनता है। तब इस समुदाय का कृदन्तत्व होने से कृत्तद्धितसमासाश्च इस सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा में सुविभक्तौ नपुसंकलिङ्गे

ध्यान दें:

सोरमादेशे अमि पूर्वः इस सूत्र से पूर्व रूप एकादेश में चेतव्यम् इति रूप सिद्ध होता है।

अनीयर चेः इकार का गुण में एचोऽयवायावः इससे अय आदेश प्रक्रिया से चयनीयम् यह रूप सिद्ध होता है।

केलिमर् प्रत्ययः- केलमिर् -प्रत्यय विधायक वार्तिक केलिमर उपसंख्यानम् है। यह वार्तिक महाभाष्य में तव्यत्तव्यानीयरः इस सूत्र में पठित है। तव्यदादि प्रत्यय के साथ केलिमर-प्रत्यय की भी परिगणना का कार्य यह इस वार्तिक का अर्थ है। अर्थात् धातु से परे जैसे तव्यदादिप्रत्यय होते हैं वैसे ही केलिमर भी होता है यह भाव है। केलमिर का ककार लशक्वतद्धित् इस सूत्र से इत्संज्ञक है। रेफ हलन्त्यम् सूत्र से इत् होता है। तब एलिम यह शेष रहता है। पच् धातु से प्रकृतवार्तिक कर्म से केलिमर-प्रत्यय में अनुबन्धलोप से पचेलिम यह कृदन्त शब्द होता है। तब कृदन्तत्व होने से कृत्तद्धितसमासाश्च इस सूत्र से प्रातिपदिकसंज्ञा होती है। उसके बाद माषाः इति विशेष्य अनुसार लिङ्गविभक्तिवचनों से होता हैं। उससे प्रथमाबहुवचन में जस् से पचेलिमाः यह रूप होता है।

कृत्य प्रत्ययों के विषय में प्रसिद्ध एक नियम आगे के सूत्र से प्रदर्शित है-

26.7 कृत्यल्युटो बहुलम्॥ (3.3.113)

सूत्रार्थ- कृत्यसंज्ञक प्रत्यय और ल्युट् बहुल होते हैं।

सूत्रव्याख्या- यह विधिसूत्र दो पदात्मक है। इस सूत्र से कृत्यसंज्ञा प्रत्यय और ल्युट् के बहुल का विधान है। कृत्यलुटः (1/3) बहुलम् (1/1) यह सूत्रगत पदच्छेद हैं। बहून् अर्थान् लाति-आदत्ते इति बहुलम् यह बहुलम् -शब्द नानार्थग्राहक है। बहुलम्-शब्द पारिभाषिक नहीं हैं। वहां सूत्र में बहुलम् शब्द का प्रयोग दिखाई देता है कि यहां भी आचार्य पाणिनि किसी अर्थ को प्रतिपादित करने की इच्छा रखते हैं यह अर्थ है। यह अर्थ बहुलम्-शब्द योजना से प्राप्त होता है। इस अर्थ में प्रत्यय में विहित उससे अन्य अर्थ में भी होता है यह सूत्र का भाव है। भाव और कर्म अर्थों से कृत्य विहित कारकान्तर में भी होता है। बहुलम्-शब्द का चार प्रकार का अर्थ पूर्वाचार्यों ने कहा हैं। तथा च उपेन्द्रवज्रा छन्द में उपनिबद्ध पद्य है-

क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव।
विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति॥

क्वचित्प्रवृत्तिः- बहुलम् -शब्द युक्त सूत्र का कार्य सूत्रप्रवृत्ति योग्यस्थल में तो होता ही है, कहीं पर प्रवृत्ति योग्यस्थल में भी होता है।

क्वचिदप्रवृत्तिः- बहुलम्-शब्द युक्त सूत्र का कार्य कभी सूत्रप्रवृत्ति योग्यस्थल में भी नहीं होता है।

क्वचिद्विभाषा- बहुलम् -शब्दयुक्त सूत्र का कार्य कहीं विकल्प से होता है।

क्वचिदन्यदेव- बहुलम् -शब्दयुक्त सूत्र का कार्य कहीं भिन्न ही होता है। अर्थात् निर्दिष्ट अर्थ के अतिरिक्त अर्थ में भी होता है।

उदाहरण में सूत्रार्थ समन्वय- प्रकृतसूत्र में कृत्यप्रत्यय और ल्युट्प्रत्यय से बहुल अर्थों में होता है ऐसा कहा गया है। अतः वे प्रत्यय पूर्वोक्त नियम से भिन्न अर्थ स्थल में भी होता हैं। जैसे भाव और कर्म अर्थों में विहित कृत्य करण सम्प्रदानादि कारकों में भी होता है।

ध्यान दें:

स्नाति अनेन स्नानीयम् चूर्णम्- अत्र स्ना (ष्णा शौचे, अदादि. परस्मै. अनिट्) इति धातु से करण में कृत्यसंज्ञक अनीयर -प्रत्यय के अनुबन्धलोप सवर्णदीर्घ में स्नानीयम् यह रूप सिद्ध होता है। दीयतेऽस्मै दानीयो विप्रः- यहां दा (डुदाञ् दाने, जुहोत्यादि. उभय. अनिट्) धातु से सम्प्रदान में कृत्यसंज्ञक अनीयर-प्रत्यय के अनुबन्धलोप सवर्णदीर्घ में दानीयः यह रूप सिद्ध होता है।

इसी प्रकार ल्युट् में भी। भाव ल्युट् में हस्-धातु से हसनम्, गम् -धातु से गमनम् इत्यादि रूप सिद्ध होते हैं। उपमीयते अनेन इति उपमानम्- करण में उपपूर्वकम धातु से ल्युट् में उपमानम् यह रूप बनता है। गावो दुह्यन्ते अस्यामिति गोदोहनी पात्री यहां पर भी अधिकरणार्थ में ल्युट्प्रत्यय से विहित है। किन्तु प्रकृत सूत्र में बहुलम् -शब्द प्रयोग कारण से कारकान्तर में भी ल्युट् होता है- प्रस्कन्दति अस्माद् इति प्रस्कन्दनम्। यहां प्रपूर्वक होने से स्कन्द् (स्कन्दिर गतिशोषणयोः, भ्वादि. परस्मै. अनिट्) धातु से अपादान में ल्युट् में जिस स्थान में युवोरनाकौ इस अनादेश में प्रस्कन्दनम् यह रूपम् सिद्ध होता है।

26.8 अचो यत्॥ (3.1.97)

सूत्रार्थ- अजन्त धातु से यत् प्रत्यय होता है।

सूत्रव्याख्या- यह विधिसूत्र पदद्वयात्मक है। इस सूत्र से यत्प्रत्यय होता है। अचः (5/1) यत् (1/1) यह सूत्रगत पदच्छेद है। प्रत्ययः (1/1), परः (1/1), धातोः (5/1) ये तीन अधिकृत सूत्र है। अचः यह धातु का विशेषण है। इससे तदन्त विधि से अजन्त से धातु का अर्थलाभ है। सूत्रार्थ है अजन्त से धातु परे होने पर यत्प्रत्यय होता है। इस सूत्र से विहित प्रत्यय कृत्संज्ञक और कृत्यसंज्ञक होता है। कृत्य संज्ञकत्व होने से उसका ही कृत्यक्तखलर्थ इस भाव और कर्म में यत्प्रत्यय होता है। क्योंकि तकार हलन्त्यम् सूत्र से इत्संज्ञक है। जिससे य -मात्र शेष रहता है। तकारानुबन्धः यतोऽनावः इससे आदि उदात्तस्वर का विधान यह अर्थ है।

उदाहरणम्- चेयम्, जेयम् इत्यादि। स्वादिगण उभयपद अनिट सकर्मक अजन्त होने से चि (चिञ् चयने) इस धातु से प्रकृतसूत्र से यत् अनुबन्धलोप में सार्वधातुकार्धधातुकयोः इस सूत्र से धातु के इकार का गुण एकार में निष्पन्न चेय शब्द स्वरूप का कृदन्तत्व होने से प्रातिपदिक संज्ञा में नपुंसक में सौ प्रक्रियया चेयम् यह बनता है। उससे ही कृत्यक्तखलर्थाः इस सूत्र निर्देश से जो यह कृत्यप्रत्यय भाव और कर्म में ही विधान होता है। और भी पुष्पाणि त्वया चेयानि, त्वया जेयम् इत्यादि वाक्य सम्भव होते हैं।

दानक्रियावाची जुहोत्यादिगण में पठित होने से भूवादयो धातवः इससे धातुसंज्ञक ञितः उभयपदिनः सकर्मकात् अनिटः दाधातोः कृत्याः इस अधिकार में पढ़ने से उसका ही कृत्यक्तखलर्थाः इस सूत्र कृत नियम से अचो यत् इस सूत्र से कर्म में कृत्संज्ञक यत्प्रत्यय के अनुबन्धलोप में दा य इति स्थित होने में यह सूत्र आरम्भ करते है-

26.9 ईद्यति॥ (6.4.65)

सूत्रार्थः- यत् प्रत्यय परे होने पर आत को ईत् हो जाता है।

सूत्रव्याख्या- यह विधिसूत्र पदद्वयात्मक है। इस सूत्र से ईकार आदेश का विधान होता है। ईत् (1/1) यति (7/1) ये सूत्रगत पदच्छेद हैं। आतो लोप इटि च इससे आतः (6/1) यह पद अनुवर्त है। अङ्गस्य (6/1) यह अधिकृत है। अनुवृत्त आतः यह पद अङ्ग के अधिकृत पद का विशेषण है। अतः तदन्त विधि आदन्त अङ्ग का यह अर्थलाभ है। इस प्रकार सूत्रार्थ होता है- आकारान्त अङ्ग के स्थान पर ईकार आदेश होता है यत् परे होने पर। अलोऽन्त्यस्य इस परिभाषा से यह आदेश आकारान्त अङ्ग के

ध्यान दें:

अन्त्य अल के स्थान में होता है।

उदाहरणम- देयम्।

सूत्रार्थसमन्वय- पूर्वोक्त प्रकार से दा य इस स्थिति में दा इति आकारान्त अङ्ग है। अत: अलोऽन्त्यस्य इस परिभाषा से परिष्कृत ईद्यति इस सूत्र से ददातेराकार के ईकार में दी य यह होने पर तिङ्शद्भ्यो भिन्नत्वेन धातो: विहितत्वेन च जो प्रत्यय के आर्धधातुकं शेष: इस आर्धधातुकसंज्ञा को इको गुणवृद्धी इससे अलोऽन्त्यस्य इस परिभाषा से परिष्कृत सार्वधातुकार्धधातुकयो: इससे इगन्ताङ्ग के दी के ईकार के गुण एकार संयोग में निष्पन्न देय शब्द स्वरूप का कृदन्तत्व होने से कृत्तद्धितसमासाश्च इस प्रातिपदिकसंज्ञा में विशेष्यनिघ्न से सामान्य में नपुंसकम् इस नियम से नपुंसक के वर्तमान होने से वहां स सौ सोरमि पूर्वरूप में देयम् इति रूप सिद्ध होता है।

आक्रोश क्रियावाची भ्वादिगण में पठित होने से भूवादयो धातव: इससे धातुसंज्ञक सकर्मक होने से आत्मनेपदिन: शप् में -धातो: कृत्या: इस अधिकार में पठित होने से उनका ही कृत्यक्तखलर्था: इस सूत्रकृत नियम से ऋहलोर्ण्यत् इस वक्ष्यमाण सूत्र से ण्यत् प्राप्ति में यह सूत्र आरम्भ करते हैं-

26.10 पोरदुपधात्॥ (3.1.98)

सूत्रार्थ- पवर्ग हो और उपधा में अ हो तो यत् प्रत्यय होता है।

सूत्रव्याख्या- यह विधि सूत्र पदद्वयात्मक है। इस सूत्र से यत् प्रत्यय का विधान होता है। पो: (5/1) अदुपधात् (5/1) ये सूत्रस्थ पदच्छेद है। प्रत्यय: (1/1), पर: (1/1), धातो: (5/1) ये तीन अधिकृत है। अचो यत् इत्यत: यत् (1/1) इस पद की अनुवृति है। अत् उपधा यस्य स: अदुपध:, तस्मात् अदुपधात् यहां बहुव्रीहिसमास है। पो: यह धातु का विशेषण है। विशेषण होने से तदन्त विधि में पवर्गान्त धातु से यह अर्थलाभ है। सूत्रार्थ है कि- पवर्गान्त अदुपधा से धातु से यत्प्रत्यय होता है। यह योग ऋहलोर्ण्यत् इसका अपवाद है। इस सूत्र से विहित प्रत्यय कृत्संज्ञक और कृत्यसंज्ञक होता है।

उदाहरण- शप्यम्। लभ्यम्।

सूत्रार्थ समन्वय- पूर्वोक्त प्रकार से शप् -धातु से प्राप्त ण्यत् का प्रकृतसूत्र से बाध होकर शप्धतु से पवर्गान्त और अदुपधत्व होने से। वहां पोरदुपधात् इस प्रकृतसूत्र से शप्-धातु में कर्म में कृत्संज्ञक यत्प्रत्यय में अनुबन्धलोप में शप् य इसके स्थित संयोग में निष्पन्न शप्य शब्द स्वरूप का कृदन्तत्व से कृत्तद्धितसमासाश्च इस प्रातिपदिक संज्ञा में विशेष्यनिघ्न होने से सामान्य में नपुंसकम् इस नियम से नपुंसक में वर्तमान वहां से सौ अतोऽम् इस सोरमि शप्य अम् होने पर अमि पूर्व: इस पूर्वरूप में शप्यम् यह रूप सिद्ध होता है। इसी प्रकार लभ् धातु की प्रकृतसूत्र से यत् प्रक्रिया से लभ्यम् यह रूप सिद्ध होता है।

पाठगत प्रश्न-2

11. तव्य और तव्यत् प्रत्ययों में क्या भेद है?
12. केलिमर उपसंख्यानम् इस वार्तिक का उदाहरण लिखिए?
13. बहुलम् कितने प्रकार से होता है।
14. अचो यत् इसका क्या अर्थ है।

ध्यान दें:

15. ईद्यति इसका उदाहरण क्या है?

16. लभ्यम् यहां कौन सा प्रत्यय और किससे होता है?

17. बहुलम्-विषय में प्रसिद्ध कारिका क्या है?

अब क्यप् प्रत्यय विधायक सूत्र को आरम्भ करते हैं-

26.11 एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप्॥ (3.1.109)

सूत्रार्थ- इन धातुओं से क्यप् प्रत्यय होता है-इण् शास् व। दृ जुष् क्यप्।

सूत्रव्याख्या- यह विधिसूत्र पदद्वयात्मक है। इस सूत्र से क्यप्प्रत्यय का विधान होता है। एतिस्तुशास्वृदृजुषः (5/1) क्यप् (1/1) ये सूत्रगत पदों का विभक्ति निर्देश है। प्रत्ययः (1/1), परः (1/1), धातोः (5/1) ये तीन अधिकृत है। एति यह इण्गतौ इससे धातु से श्तिप्प्रत्ययान्त रूप है (इक्श्तपौ धातुनिर्देशे)। एतिश्च स्तुश्च शास् च वृ च दृ च जुष् च एतिस्तुशास्वृदृजुष् च यहां समाहारद्वन्द्व है। तस्मात् एतिस्तुशास्वृदृजुषः। इण्, स्तु, शा, वृ, दृ, जुष् इन धातु से परे क्यप्-प्रत्यय होता है। क्यप् का ककार लशक्वतद्धिते इससे इत्संज्ञक, और पकार हलन्त्यम् से इत् होता है। इससे य-मात्र शेष रहता है। ककार अनुबन्ध गुणवृद्धिनिषेधार्थ है। पकार अनुबन्ध तुक् आगमार्थ है। इस सूत्र से विहित प्रत्यय कृत्संज्ञक और कृत्यसंज्ञक होता है।

उदाहरण- क्रमशः सूत्र के उदाहरणों को प्रदर्शित किया जाता है-

इ (इण् गतौ अदादि. परस्मै. अनिट्)- एत्यः।

स्तु (ष्टुञ् स्तुतौ अदादि. उभय. अनिट्)- स्तुत्यः।

शास् (शासु अनुशिष्टौ अदादि. परस्मै. अनिट्)- शिष्यः।

वृ (वृञ् वरणे स्वादि./क्र्यादि. उभय. सेट्)- वृत्यः।

दृ (दृङ् आदरणे - प्रायेण आङ्पूर्वः। तुदादि. आत्मने. अनिट्)- आदृत्यः।

जुष् (जुषी प्रीतिसेवनयोः तुदादि. आत्मने. सेट्)- जुष्यः।

सूत्रार्थ समन्वय- शिष्य- अनुशिष्ट क्रियावाची अदादिगण में पठित होने से भूवादयो धातवः इस सूत्र से धातुसंज्ञक परस्मैपदि सकर्मक होने से सेटः शासः कृत्याः इनका अधिकार पठित होने से उनका ही कृत्यक्तखलर्थाः इस सूत्रकृत नियम से एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप् इस सूत्र से कर्म को कृत्संज्ञक क्यप्प्रत्यय अनुबन्धलोप में शास् य इस स्थिति में यह सूत्र आरम्भ करते है-

26.12 शास इदङ्हलोः॥ (6.4.34)

सूत्रार्थ- शास धातु के आ को इ होता है, बाद में अङ् या हलादि कित् ङित् प्रत्यय हो तो।

सूत्रव्याख्या- यह विधिसूत्र पदत्रयात्मक है। इस सूत्र से इड् आदेश विधित होता है। शासः (6/1) इत् (1/1) अङ्हलोः (7/2) ये सूत्रगत पदच्छेद हैं। अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति इससे, उपधायाः (6/1) क्ङिति (7/1) ये पद अनुवर्तित है। अङ् च हल् च अङ्हलौ यहां इतरेतरयोगद्वन्द्व हैं, तयोः अङ्हलोः। क्ङिति का विशेषण हल् है। अतः यस्मिन्विधिस्तदादावल्ग्रहणे इस परिभाषा से उसके आदि

ध्यान दें:

विधि में हलादि क्ङिति यह अर्थलाभ है। सूत्रार्थ है कि- अङ्गसंज्ञक शास का उपधा के स्थान पर ह्रस्व इकार आदेश होता है अङि हलादौ क्ङिति च परतः इससे।

उदाहरण सूत्रार्थ समन्वय- पूर्वोक्त प्रकार से शास् य यह क्यपः हलादित्वात् कित्त्वाच्च शास इदङ्हलोः इस प्रकृत सूत्र से शास उपधा से आकार के इकार में शिस् य यह होने पर तिङ् और शिद् भिन्नत्व धातु के विहितत्व होने से आर्धधातुकं शेषः इससे क्यप् होता है आर्धधातुकत्व में भी कित् से पुगन्तलघूपधस्य च इससे लघूपध अङ्ग के इक स्थान में प्राप्त गुण का क्ङिति च इससे निषेध में शासिवसिघसीनाञ्च इससे शास् के स का ष् संयोग में निष्पन्न शिष्य शब्द स्वरूप का कृदन्तत्व से कृत्तद्धितसमासाश्च इससे प्रातिपदिकसंज्ञाया में विशेष्यनिघ्न होने से सौ विभक्ति कार्य में शिष्यः यह रूप सिद्ध होता है। गुरुणा शिष्यः शिष्यः इत्याद्युदाहरणम्। धातु से यहां कर्म में प्रत्ययविधान से कर्म उक्त होने से प्रातिपदिकार्थ मात्र में वहां प्रथमा कर्तुरनुक्तत्व और कर्तृवाचक होने से गुरुशब्द से कर्तृकरणयोस्तृतीया इस सूत्र से तृतीया सिद्ध होती है। जुष् धातु से क्यप् प्रत्यय में कित् लघूपधा गुणनिषेध में जुषः यह रूप सिद्ध होता है।

ष्टुञ् स्तुतौ इस धातु से धात्वादेः षः सः इस सूत्र से षकार के स्थान में सकार आदेश निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः इससे षकार रूपनिमित्तापाय में नैमित्तिक टकार का भी अपाय में तकार होता है। तब स्तु धातु से एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप् इस सूत्र से क्यप् के अनुबन्धलोप में स्तु य यह होने पर यह सूत्र आरम्भ करते हैं-

26.13 ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्॥ (6.1.71)

सूत्रार्थ- धातु के ह्रस्व स्वर के बाद् तुक् हो जाता है यदि बाद में कोई पित् कृत् प्रत्यय हो तो।

सूत्र व्याख्या- यह विधिसूत्र पदचतुष्टयात्मक है। इस सूत्र से तुक् आगम का विधान किया जाता है। ह्रस्वस्य (6/1) पिति (7/1) कृति (7/1) तुक् (1/1) इन सूत्रगत पदों से विभक्ति निर्देश है। प् इत् यस्य सः पित् तस्मिन् पिति इसमें बहुव्रीहिसमास है। शप्, तिप्, सिप्, क्यप् ये पित् हैं। सूत्रार्थ है कि- कृत्संज्ञक पित् के पर होने पर ह्रस्व तुक् का आगम होता है। तुक् का ककार हलन्त्यम् सूत्र से इत्संज्ञक और उकार उच्चारणार्थ है। तुक् कित् है अतः आद्यन्तौ टकितौ इस परिभाषा से ह्रस्व का अन्त्यावयव होता है।

उदाहरण सूत्रार्थ समन्वय- पूर्वोक्त प्रकार से स्तु य यह होने पर क्यप् कृदतिङ् से कृत्संज्ञक पित् भी है। अतः प्रकृत सूत्र से स्त के ह्रस्व उकार के तुक् आगम अनुबन्ध लोप में स्तु त् य यह होने पर संयोग से निष्पन्न स्तुत्य शब्द स्वरूप का कृदन्तत्व होने से कृत्तद्धितसमासाश्च इससे प्रातिपदिकसंज्ञा में विशेष्यनिघ्न होने से सौ विभक्ति कार्य में स्तुत्यः यह रूप सिद्ध है। इसी प्रकार प्रक्रिया से अन्य रूप को जानना चहिए।

(मृजु संशुद्धौ, अदादि. परस्मै. वेट्) मृज् धातु से ऋदुपधाच्चाकर्घपिचृतेः इससे नित्य क्यप् प्राप्त होने पर विकल्प से क्यप्-प्रत्यय विधान के लिए यह सूत्र आरम्भ करते हैं-

[सूत्रम् ऋदुपधाच्चाकर्घपिचृतेः (3.1.110)-ऋदुपधात् धातु से क्यप् होता है क्लृप् और चृत् इन धातुओं के विना।]

ध्यान दें:

26.14 मृजेर्विभाषा॥ (3.1.113)

सूत्रार्थ- मृज् धातु से विकल्प से क्यप् होता है।

सूत्र व्याख्या- यह विधिसूत्र पदद्वयात्मक है। इस सूत्र से विकल्प से क्यप् प्रत्यय का विधान किया जाता है। मृजे: (5/1) विभाषा (अव्यय) ये सूत्रगत पदच्छेद हैं। एतिस्तुशास्वृदृजुष: क्यप् इससे क्यप् (1/1) इस पद की अनुवृति है। मृजे: यहां मृज्-धातु से इक्प्रत्यय धातुनिर्देशार्थ है इक्शितपौ धातुनिर्देशे इस योग से। मृज्-धातु में क्यप्प्रत्यय परे होता है विकल्प से यह सूत्रार्थ है।

उदाहरण सूत्रार्थ समन्वय- मृज्य:। पूर्वोक्त प्रकार से मृज् धातु से नित्य क्यप् प्राप्त होने पर उस अपवाद से प्रबाध्य इस सूत्र से विकल्प से क्यप् के अनुबन्धलोप में मृज् य यह होने पर मृजेर्वृद्धि: इस वक्ष्यमाण सूत्र से वृद्धि प्राप्त होने से क्ङिति च इससे निषेध संयोग में निष्पन्न मृज्य शब्द स्वरूप का कृदन्तत्व होने से कृत्तद्धितसमासाश्च इससे प्रातिपदिकसंज्ञा में विशेष्यनिघ्न होने से सौ विभक्ति कार्य में मृज्य: यह रूप सिद्ध होता है।

क्यप् प्रत्यय के अभाव मे अग्रिम सूत्र का प्रवर्तन करते हैं-

26.15 ऋहलोर्ण्यत्॥ (3.1.124)

सूत्रार्थ:- ऋवर्णान्त और हलन्त धातुओं से ण्यत् होता है।

सूत्रव्याख्या - विधिसूत्रमिदम् पदद्वयात्मकम्। अनेन सूत्रेण ण्यत्प्रत्यय: विधीयते। ऋहलो: (6/2) ण्यत् (1/1) ये सूत्रगत पदच्छेद है। प्रत्यय: (1/1), पर: (1/1), धातो: (5/1) ये तीन अधिकृत है। ऋहलो: यहां पञ्चम्यर्थ में षष्ठीप्रयोग है। ऋवर्णश्च हल् च तयो: इतरेतरयोगद्वन्द्व में ऋहलौ तयो: ऋहलो:। ऋहलो: यह धातो: का विशेषण है। अत: तदन्तविधि में ऋवर्णान्त हलन्त धातु होने से यह अर्थलाभ है। सूत्रार्थ है कि- ऋवर्णान्त और हलन्त धातु से ण्यत्प्रत्यय परे होता है। इस सूत्र से विहित प्रत्यय कृत्संज्ञक और कृत्यसंज्ञक होता है। ऋवर्णान्त धातु से अचो यत् इसके प्राप्त होने से यह अपवाद ण्यत्प्रत्यय है। ण्यत् का णकार चुटू से इत्संज्ञक होता है। तकार हलन्त्यम् से इत् है। इससे य-मात्र शेष रहता है। तकार अनुबन्ध स्वरार्थ है। णकारानुबन्ध अचो ञ्णिति से वृद्ध यर्थ है।

उदाहरण में सूत्रार्थ समन्वय- पूर्वोक्त प्रकार से मृज् धातु से ण्यत अनुबन्धलोप में मृज् य होने पर अग्रिम सूत्र का प्रवर्तन करते हैं-

26.16 चजो: कु घिण्ण्यतो:॥ (7.3.52)

सूत्रार्थ- च् को क् और ज् को ग् होता है बाद में घित् या ण्यत् प्रत्यय हो तो।

सूत्र व्याख्या- यह विधिसूत्र पदत्रयात्मक है। इस सूत्र से कुत्व का विधान है। चजो: (6/2) कु (1/1- लुप्तविभक्ति का पद है) घिण्ण्यतो: (7/2) यह सूत्रगत पदच्छेद है। चश्च ज् च चजौ यहां इतरेतर योग द्वन्द्व, तयो: चजो:। चकार से अकार उच्चारणार्थ है। घ् इत् यस्य स: घित् यहां बहुव्रीहि समास है। घित् ण्यत् च घिण्ण्यतौ यहां इतरेतर योग द्वन्द्व हैं, तयो: घिण्ण्यतो:। सूत्रार्थ है कि- घित् और ण्यत् प्रत्यय परे होने पर चकार या जकार के स्थान पर कवर्ग आदेश होता है।

उदाहरण में सूत्रार्थ समन्वय- पूर्वोक्त प्रकार से मृज् य इसके स्थित होने से स्थानेऽन्तरतम: इससे परिभाषा सहयोग से प्रकृत सूत्र से जकार के स्थान में गकार आदेश मृग् य होने पर अग्रिम सूत्र आरम्भ करते हैं-

ध्यान दें:

26.17 मृजेर्वृद्धिः॥ (7.2.114)

सूत्र व्याख्या- यह विधि सूत्र पदद्वयात्मकम है। इस सूत्र से वृद्धि का विधान है। मृजे: (6/1) वृद्धि: (1/1) ये सूत्रगत पदच्छेद है। इको गुणवृद्धी इस परिभाषा से इक: यह षष्ठ्यन्त पद उपतिष्ठित होता है। सूत्रार्थ है कि- मृज् -धातु से इक के स्थान पर वृद्धि होता है। यहां किसी प्रत्यय के परे वृद्धि होता है यह निर्देश नहीं हैं। परन्तु धातोरुच्यमान कार्य उस प्रत्यय में होता है इस परिभाषा बल से मृज् में विहित प्रत्यय में ही वृद्धि रूप कार्य होता है। मृज् से दो प्रकार से प्रत्यय विधान सम्भव है सार्वधातुक प्रत्यय और आर्धधातुक प्रत्यय। यहां सूत्रार्थ होता है मृज्-धात से इक स्थान पर वृद्धि होता है सार्वधातुक और आर्धधातुक से।

उदाहरण में सूत्रार्थ समन्वय- पूर्वोक्त प्रकार से मृग् य इस स्थिति में ण्यत् आर्धधातुकत्व से मृज: (एकदेशविकृतमनन्यवत् इस न्याय से) ऋकार के वृद्धि उरण् रपर: इससे रपरत्व में मार्ग्य यह होता है। फिर इस समुदाय के कृदन्तत्व होने से कृत्तद्धितसमासाश्च इस सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा में सुविभक्ति से मार्ग्य: यह रूप सिद्ध होता है। इसी प्रकार मृज्धातु से क्यप् में मृज्य:, ण्यत् में मार्ग्य: यह रूप सिद्ध होता है।

इस प्रकार ऋहलोर्ण्यत् इससे हलन्तधातु आलोचित है। ऋकार का उदाहरण- कृधातु से कार्यम्- कृ धातु ऋकारान्त होती है। अत: ऋहलोर्ण्यत् इस सूत्र से कृधातु के ण्यत्प्रत्यय में णकार और तकार के अनुबन्ध लोप में कृ य यह स्थिति ण्यत्प्रत्यय में णित् है इससे अचो ञ्णिति इस सूत्र से कृ के ऋकार का वृद्धि आकार में उरण् रपर: इससे रपरत्व में कार्य यह होने पर वर्णसंयोग में कार्य यह होने पर यह कृदन्त इस हेतु से कृत्तद्धितसमासाश्च इस सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा में सुप्रत्यय विभक्तिकार्य में कार्यम् यह रूप होता है। इसी तरह हृधातु से हार्यम्, धृधातु से धार्यम् इत्यादि सिद्ध होता है।

मार्ग्य: इसका रूपसाधन- शुद्धि क्रियावाची अदादिगण में पठित होने से भूवादयो धातव: इससे धातुसंज्ञक परस्मैपदी सकर्मक होने से वेट: ऋदुपधात् मृज्धातो: कृत्या: इस अधिकार में पठित होने से ऋदुधाच्चाकर्घपिचृते: इस सूत्र से नित्य क्यप् प्राप्त होने पर मृजेर्विभाषा इससे विकल्प से उसका विधान होने से क्यबभावपक्ष में ऋहलोर्ण्यत् इस सूत्र से कर्म में कृत्संज्ञक ण्यत्प्रत्यय में ण् और त् की यथाक्रम चुटू और हलन्त्यम् इन दो सूत्र से इत्संज्ञा होकर तस्य लोप: से लोप करने पर मृज् य इस स्थिति में ण्यत् के णित्व से उसके परे स्थान में अन्तरतम इस परिभाषा से परिष्कृत चजो: कु घिण्ण्यतो: इस सूत्र से मृज् में संवार नाद घोष अल्पप्राण जकार कुत्व में उसके जैसे गकार में मृग् य यह होने पर तिङ् और शिद् से भिन्नत्व होने से धातु से विहित होने से आर्धधातुकं शेष: इससे ण्यत् होने से आर्धधातुकत्व से लघूपधा गुण को बाध कर इको गुणवृद्धी इस परिभाषा से परिष्कृत मृजेर्वृद्धि: इस सूत्र से मृज के ऋकार की वृद्धि उरण् रपर: इससे रपरत्व करने पर संयोग में निष्पन्न मार्ग्य शब्द स्वरूप के कृदन्तत्व होने से कृत्तद्धितसमासाश्च इस सूत्र से प्रातिपदिकसंज्ञा में विशेष्यनिघ्न होने से सौ विभक्तिकार्य में मार्ग्य: यह रूप सिद्ध होता है।

पाठगत प्रश्न-3

18. शिष्य: यहां कौन-सा प्रत्यय है और किससे है?

19. शिष्य: यहां शास्धातु से आकार को इकार कैसे होता है?

20. स्तुत्य: यहां तुगागम किससे होता है?

ध्यान दें:

21. मृज् धातु से कितने कृत्प्रत्यय होते हैं?

22. चजोः कु घिण्यतोः इसका क्या अर्थ है?

23. मार्ग्यः यहां वृद्धि किससे है?

24. मृज् धातु में क्यप् किस सूत्र से है?

पाठ सार

कृत्य प्रकरणाख्य इस पाठ में तव्य, तव्यत्, अनीयर, यत्, ण्यत्, क्यप्, केलिमर ये सप्त प्रत्यय आलोचित हैं। इनमें से कृदतिङ् इस अधिकार में पठित होने से कृत्संज्ञा होती है। पुनः कृत्याः इस अधिकार में पठित होने से कृत्य संज्ञक होता है। इन प्रत्ययों से कर्तरि कृत् इससे कर्तृर्थ विधान प्राप्त होने से उसका ही कृत्यक्तखलर्थाः इस सूत्र से भाव और कर्म अर्थ में ही उनका विधान है। अतः कर्तृर्थ कृत्यप्रत्यय नहीं होते हैं। पहले तव्यत्तव्यानीयरः इससे तव्य-तव्यत्-अनीयर इन तीनों के विषय में कहा गया है। यहां ही केलिमर उपसंख्यानम् इस वार्तिक से केलिमर-प्रत्यय विधान होता है यह आलोचित है। अचो यत् इस सूत्र से यत् प्रत्यय, ऋहलोर्ण्यत् से ण्यत्प्रत्ययः, एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप् से क्यप् प्रत्ययः इन तीनों को अच्छी तरह से बताया गया है। उन उन सूत्र स्थलों किन्हीं कृत्यप्रत्ययान्त शब्दों की प्रक्रिया भी प्रदर्शित होती है।

पाठान्त प्रश्न

1. कृत्य प्रत्ययों के विषय में लघु प्रबन्ध लिखिए।

2. वासरूपोऽस्त्रियाम् इस सूत्र की व्याख्या कीजिए।

3. तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः इस सूत्र की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।

4. कृत्यलुटो बहुलम् इस सूत्र की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।

5. तव्यत्तव्यानीयरः इस सूत्र की उदाहरण सहीत व्याख्या कीजिए।

6. एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप् इस सूत्र की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।

7. ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् इस सूत्र की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।

8. एधितव्यम्, एधनीयम् इनकी रूपसिद्धि कीजिए।

9. पचेलिमा इसकी रूपसिद्धि कीजिए।

10. शिष्यः इसकी रूपसिद्धि कीजिए।

11. मार्ग्यः इसकी रूपसिद्धि कीजिए।

12. देयम् इसकी रूपसिद्धि कीजिए।

ध्यान दें:

पाठगत प्रश्नोत्तर

उत्तर-1

1. धातोः इसका अधिकार तृतीयाध्याय समाप्ति तक है।
2. इस धात्वधिकार में सरूप अपवाद प्रत्यय उत्सर्ग का विकल्प से बाधक होता है स्त्रियधिकार उक्त के विना।
3. अधिकारसूत्र।
4. ण्वुल्तृचौ (3.1.133) इससे प्हले
5. परिभाषासूत्र।
6. भाव और कर्म में।
7. कर्तरि कृत् इससे।
8. दो संज्ञा होगी।
9. सप्त।
10. तव्यं च तव्यतञ्चौवानीयर-केलिमरौ तथा।

यतं ण्यतं क्यपं चापि कृत्यान् सप्त प्रचक्षते। इति

उत्तर-2

11. रूपाभेद में भी स्वर भेद होता है।
12. पचेलिमा माषाः। पक्तव्या माषाः यह अर्थ है।
13. चतुर्विध।
14. अजन्त धातु से परे कृत्संज्ञक और कृत्यसंज्ञक यत्प्रत्यय होता है।
15. देयम्।
16. पोरदुपधात् इस सूत्र से यत्प्रत्यय होता है।
17. क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव

विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति॥

उत्तर-3

18. एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप्
19. शास इदङ्हलोः।
20. ह्रस्वस्य पिति कृति तुम्।
21. क्यप् और ण्यत् ये कृत्प्रत्यय दो हैं।
22. च-ज को कुत्व हो जाता है घिति और ण्यति परे होने पर।
23. मृजेर्वृद्धिः।
24. मृजेर्विभाषा

27

पूर्व कृदन्त-1

ध्यान दें:

इससे पहले के पाठ में आपने कृत्य प्रत्ययों का परिचय प्राप्त किया। इस पाठ में पूर्व कृदन्त प्रथम भाग की आलोचना करेंगे। द्वितीय भाग की तो उत्तर पाठ में। इसमें आलोचित प्रत्ययों की कृत्संज्ञा मात्र है न कि कृत्य संज्ञा। कृत्प्रत्यय सामान्यतया कर्त्रर्थ होते हैं। किन्तु कहीं भिन्नार्थ में भी सूत्र द्वारा जानते हैं। कहीं कृत्प्रत्यय धातुमात्र से बताये गये हैं। कहीं कोई शब्द विशेष उप पद होता है उससे ही धातु से कृत्प्रत्यय को बताते हैं। इस पाठ में ण्वुल्, तृच्, ल्यु, णिनि, अच्, क, अण्, ट इन प्रत्ययों की आलोचना करेंगे। वहां कृत्प्रत्यय के संयोजन से निष्पन्न शब्दों की प्रक्रिया भी प्रदर्शित करेंगे। किन्तु अन्त में निष्ठासंज्ञक प्रत्यय सम्बन्धी चर्चा भी करेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे-

- ण्वुल्तृचौ इस बहुप्रयोजनवत सूत्र का अर्थ जान पाने में;
- कर्त्रर्थ अतिरिक्त कर्माद्यर्थ में कृत्प्रत्ययों के प्रयोग को जान पाने में;
- निष्ठासंज्ञक प्रत्ययों के प्रयोगों को समझ पाने में;
- कारकः, कर्ता, गृहम्, प्रियः, कुम्भकारः, कुरुचरः, स्तुतः, कृतवान, शीर्णः, शुष्कः, पक्वः, भावितः, दत्तः इनका लौकिक व्यवहार उपयोगी कृदन्त शब्दों की प्रक्रिया जान पाने में;
- उनके अनुबन्धों के प्रयोजन को जान पाने में;

27.1 ण्वुल्तृचौ॥ (3.1.133)

सूत्रार्थ- धातु से ण्वुल् और तृच प्रत्यय होते हैं।

सूत्र व्याख्या- यह विधि सूत्र एकपदात्मक है। इस सूत्र से ण्वुल् और तृच प्रत्यय होते हैं। ण्वुल्तृचौ यह प्रथमा द्विवचनान्त हैं। इस सूत्र में प्रत्ययः (1/1), परः (1/1), धातोः (5/1) ये तीन अधिकृत हैं। कृत् तिङ्, कर्तरि कृत् ये दोनों सूत्र भी अधिकृत हैं। वहां प्रत्ययः इस सूत्र से प्रत्ययों के (1/2), परः

ध्यान दें:

इससे परे होने पर (1/2) इनसे द्विवचनान्त विपरिणाम होता है। ण्वुल् च तृच् च ण्वुल्तृचौ यहां इतरेतरयोगद्वन्द्वसमास है। धातु से ण्वुल् और तृच करके प्रत्ययों से परे कर्ता में यह पदयोजना है। सूत्रार्थ है कि- धातु से ण्वुल् और तृच कृत्संज्ञक प्रत्यय परे होने पर कर्ता में होता है। इस प्रकार इस सूत्र से धातु से विहित प्रत्यय कृत्संज्ञक होते हैं। ये कर्त्रर्थ होते हैं। ण्वुल् के णकार की चुटू सूत्र से इत्संज्ञा होती है, अतः ण्वुल्प्रत्यय णित् होता है। इसका फल अचो ञ्णिति इस सूत्र से धातु के अन्त्य अच की वृद्धि होती है, अतः उपधा से धातु के उपधा की वृद्धि होती है। ण्वुल् का लकार हलन्त्यम् सूत्र से इत्संज्ञक होता है, इससे लित का लित्स्वर सिद्ध होता है। तब वु-मात्र शेष रहता है। तृच् का चकार हलन्त्यम् सूत्र से इत्संज्ञक, जिससे तृ-मात्र शेष रहता है।

उदाहरण- कारकः। कर्ता।

सूत्रार्थ समन्वय- कृ (डुकृञ् करणे, तनादि. उभय. अनिट्) धातु प्रकृतसूत्र से कर्त्रर्थ में तृच् के अनुबन्धलोप में कृ तृ स्थित होने में तृच् के धात्वधिकारोक्त तिङ्शिद्भिन्न होने पर आर्धधातुकं शेषः इस सूत्र से आर्धधातुकसंज्ञा में आर्धधातुकस्येड्वलादेः इस सूत्र से इडागम प्राप्त होने पर कृ धातु से उपदेश में एकाच्त्व और अनुदात्तत्व का एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् इस सूत्र से निषेध होता है। तब सार्वधातुक और आर्धधातुकों से कृ के ऋकार की गुण अकार होने पर उरण् रपरः इस सूत्र से रपरत्व क् अर् तृ यह होता है। तब कर्तृ समुदाय के कृदन्तत्व होने से कृत्तद्धितसमासाश्च इस सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा में सुविभक्तौ ऋदुशनस्पुरुदंसोनेहसां च इससे अनङ् में कर्, त् अन् स् यह होता है। वहां अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृ प्रशास्तृणाम् इस सूत्र से उपधा दीर्घ में आन् स् यह होने पर हल्ङ्यादि लोप में न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य इस सूत्र से पदान्त नकार के लोप में कर्ता रूप सिद्ध होता है।

कृधातु से प्रकृतसूत्र ण्वुल् अनुबन्धलोप में कृ वु होने पर यह सूत्र आरम्भ करते हैं-

27.2 युवोरनाकौ॥ (7.1.1)

सूत्रार्थ- यु और वु इनके स्थान पर अन् और अक् होता है।

सूत्र व्याख्या- यह विधि सूत्र पदद्वयात्मक है। इस सूत्र से अन् और अक् आदेश होता है। युवोः (6/1) अनाकौ (1/2) यह सूत्रगत पदच्छेद है। युश्च वुश्च युवुः तस्य युवोः यहां समाहारद्वन्द्व है (सौत्रं पुंस्त्वम्)। अनश्च अकश्च अनाकौ यहां इतरेतरयोगद्वन्द्व है। अन् अक् ये दोनों भी अदन्त आदेश हैं। यहां स्थान्यादेशयोः संख्यासाम्यात् यथासंख्यमनुदेशः समानाम् यह परिभाषा प्रवर्तित है। सूत्रार्थ है कि- यु इसके स्थान पर अन् आदेश और वु इसके स्थान पर अक् आदेश होता है। अन् अक् इन दोनों में भी अनेकाल है। अतः अनेकाल्शित् सर्वस्य इस परिभाषा से दोनों का भी सर्वादेश होता है।

उदाहरण- कारकः।

सूत्रार्थ समन्वय- ऊपर उक्त प्रकार से कृ वु इस दशा में प्रकृत सूत्र से वु के स्थान पर अक् आदेश में कृ अक् स्थित होने पर स्थानिवद्भाव से अक् आदेशों भी णित् है। इससे अचो ञ्णिति इस सूत्र से कृ के ऋकार का वृद्धि आकार में उरण् रपरः इस सूत्र से रपरत्व क् आर् अक होने पर वर्णसम्मेलन में कारक होता है। वहां इस समुदाय के कृदन्त होने से कृत्तद्धितसमासाश्च इस सूत्र से प्रातिपदिकसंज्ञा में सुविभक्ति में कारकः रूप सिद्ध होता है।

कारकः रूपसाधन- करणार्थक होने से तनादिगणपठित भूवादयो धातवः इस सूत्र से धातुसंज्ञक उभयपद सकर्मक से अनिट कृधातु करता है इस विग्रह में कर्तरि कृत् इससे कर्त्रर्थ में कृत्संज्ञक कृत् तिङ्

ध्यान दें:

इस अधिकार में पठित होने से ण्वुल्तृचौ इस सूत्र से ण्वुल्प्रत्यय में यथाक्रम चुटू तथा हलन्त्यम् इन सूत्रों से ण् और ल् की इत्संज्ञा होकर तस्य लोपः से उनका लोप होने पर कृ वु होने पर ण्वुल् के णित्त्व की अचो ञ्णिति इस सूत्र से धातु के ऋकार के वृद्धि आकार में उरण रपरः इससे रपरत्व में कार् वु होने पर यथासंख्यमनुदेशः समानाम् इस परिभाषा से परिष्कृत युवोरनाकौ इस सूत्र से वोरकादेश से निष्पन्न कारकशब्दस्वरूप की कृदन्तत्व होने से कृत्तद्धितसमासाश्च इस सूत्र से प्रातिपदिकसंज्ञा में विशेष्यनिघ्नत्व होने से प्रसङ्ग से यहां पुंसि वर्तमानात् ततः सौ सकार के रुत्व का रेफ होकर विसर्ग में कारकः इस रूप की सिद्धि होती है।

अन् आदेश के उदाहरण के लिए यह सूत्र प्रारम्भ करते हैं-

27.3 नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः॥ (3.1.134)

सूत्रार्थः- नन्द् आदि धातुओं से ल्यु(अन्), ग्रह् आदि से णिनि(इन्) और पच् आदि से अच् (अ) प्रत्यय होता है।

सूत्र व्याख्या- यह विधि पदद्वयात्मक है। इस सूत्र से ल्यु-णिनि-अच् अदेश होते हैं। नन्दिग्रहिपचादिभ्यः (5/3) ल्युणिन्यचः (1/3) यह सूत्रगत पदच्छेद है। प्रत्ययः (1/1), परः (1/1), धातोः (5/1) ये तीन अधिकृत हैं। कृत् तिङ्, कर्तरि कृत् ये दोनों सूत्र भी अधिकृत हैं। नन्दिश्च ग्रहिश्च पच् च नन्दिग्रहिपच्, समाहार द्वन्द्व समास है। नन्दिग्रहिपच् आदिः येषां ते नन्दिग्रहिपचादयः, तेभ्यः नन्दिग्रहिपचादिभ्यः यहां द्वन्द्वगर्भ बहुव्रीहिसमास है। आदि शब्द प्रत्येक से सम्बन्धित है। नन्द्यादिगणः, ग्रह्यादिगणः, पचादिगणः ये गणत्रय पाणिनीय गणपाठ में पठित हैं। टुनदि समृद्धौ (भ्वादि. परस्मै. सेट्) धातु से हेतुमति च इस सूत्र से णिचि नन्दि होता है। ऐसे ही नन्द्यादिगण है, अन्य नहीं। ग्रह् इसमें इक्ष्तपौ धातुनिर्देशे से इक्प्रत्यय है। पचादि आकृतिगण है। ल्युश्च णिनिश्च अच् च ल्युणिन्यचः यहां इतरेतरयोगद्वन्द्व है। यहां धातु और प्रत्ययों से संख्यासाम्य होने से यथासंख्यमनुदेशः समानाम् इससे परिभाषा प्रवर्तित है। सूत्रार्थ है कि- नन्द्यादिगण पठित धातुओं से ल्युप्रत्यय, ग्रह्यादिगण पठित धातुओं से णिनिप्रत्यय, पचादिगण पठित धातुओं से अच्- प्रत्यय परे होता है। इस सूत्र से विहित प्रत्यय कृत्संज्ञक होते हैं। वे कर्त्रर्थ में होते हैं। ल्यु का लकार इत्संज्ञक है अतः यु यह ही शेष रहता है। णिनि का णकार चुटू से इत्संज्ञक और नकारोत्तरवर्ति इकार उपदेशेऽजनुनासिक इत् से इत्संज्ञक है। इनमें इन् ही शेष रहता है। णिनि का णित् करण की अत उपधायाः से उपधा वृद्धि होती है। अचः का चकार हलन्त्यम् से इत्संज्ञक है।

उदाहरण- नन्दनः। ग्राही। पचः।

सूत्रार्थ समन्वय- नन्दयतीति नन्दनः- समृद्ध यर्थक भ्वादिगण में पठित की भूवादयो धातवः से धातु संज्ञक की परस्मैपदिनः सकर्मकस्य सेटः से नद् (टुनदि) इससे मिदचोऽन्त्यात्परः इस परिभाषा से परिष्कृत नुम् धातु रित् से नुमि अनुबन्धलोप मे न् द् के स्थित न होने से नश्चापदान्तस्य झलि इस सूत्र से नकार के झल् के दकार से पर अनुस्वार होकर नंद् होता है। अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः इससे अनुस्वार के परसवर्ण नकार में नन्द् होता है। तब णिच् से विहित नन्दि यह णिजन्त समुदाय होता है। इस णिजन्त नन्द्यादिगण में पठित होने से प्रकृत सूत्र से कर्त्रर्थ ल्यु प्रत्यय में नन्दि ल्यु स्थित होने पर लशक्वतद्धिते से लस्येत्संज्ञा वाले का तस्य लोप से लस्य लोप होने पर नन्दि यु ऐसा होने पर णेरनिटि से णेर्लोप में नन्द् यु होने पर यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम् से परिभाषा परिष्कृत युवोरनाकौ इस सूत्र से योरनादेश में निष्पन्न नन्दन शब्दस्वरूप का कृदन्त होने से कृत्तद्धितसमासाश्च सूत्र से प्रातिपदिकसंज्ञा में विशेष्यनिघ्न होने से प्रसङ्ग से यहां पुंसि वर्तमानात् सौ अनुबन्धलोप में स के रुत्व के विसर्ग में नन्दन यह रूपं सिद्ध होता है। इसी तरह जनमर्दयतीति जनार्दनः।

ध्यान दें:

गृह्णातीति ग्राही- ग्रह उपादाने (क्र्यादि. उभय .सेट्) इस धातु से ग्रह्यादित्व प्रकृत सूत्र से कर्त्रर्थ णिनिप्रत्यय के अनुबन्धलोप में ग्रह् इन् होने पर णिनि के णित्त्व की अत उपधायाः से उपधा के अकार की वृद्धि आकार में ग्राहिन् होने पर कृदन्त प्रातिपदिकसंज्ञाया के सुप्रत्यय में सौ च से उपधादीर्घे हल्ङ्यादिलोपे नलोपः प्रातिपदिकान्त से पदान्त नकार के लोप में ग्राही यह रूप सिद्ध होता है। इसी तरह तिष्ठति इति स्थायी, मन्त्रयते इति मन्त्री इत्यादि रूप सिद्ध होते हैं।

[सूत्रम्. सौ च (6.4.13)=इन्नादीनामुपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सौ।]

पचतीति पचः- डुपचष् पाके इस धातु से कर्त्रर्थ में प्रकृत सूत्र से अच् प्रत्यय अनुबन्धलोप में पच् अ होता है। तब इस समुदाय के प्रातिपदिक होने से सुविभक्ति से पचः यह रूप सिद्ध होता है। इसी तरह वदतीति वदः, वक्तीति वचः, चलतीति चलः इत्यादि रूप होते हैं।

27.4 इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः॥ (3.1.135)

सूत्रार्थ- इगुपध, ज्ञा, प्री और क॥ धातुओं से क प्रत्यय होता है।

सूत्र व्याख्या- यह विधि सूत्र पदद्वयात्मक है। इस सूत्र से कप्रत्यय होता है। इगुपधज्ञाप्रीकिरः (5/1) कः (1/1) यह सूत्रगत पदों का विभक्तिनिर्देश है। प्रत्ययः (1/1), परः (1/1), धातोः (5/1) ये तीन अधिकृत हैं। कृदतिङ्, कर्तरि कृत् ये दोनों सूत्र भी अधिकृत हैं। इक् (प्रत्याहार) उपधा यस्य सः इगुपधः यहां बहुव्रीहिसमास है। इगुपधश्च ज्ञा च प्री च कृ च तेषां समाहारद्वन्द्वे इगुपधज्ञाप्रीकिर्, तस्मात् इगुपधज्ञाप्रीकिरः। समाहार नपुंसकत्व में भी ह्रस्व का अभाव है अतः प्रकृतिवद अनुकरण होता है इस परिभाषा से प्रकृतिवद् भाव से ऋत इद्धातु से रपरत्व में इर आदेश होता है। इगुपधधातु, ज्ञाधातु, प्रीधातु, और कृधातु से कृत्संज्ञक कप्रत्यय परे होने पर कर्ता में यह सूत्रार्थ है। इस सूत्र से पूर्वोक्त धातुओं से विहित कप्रत्यय कृत्संज्ञक ही होता है। वह कर्त्रर्थ होता है। कप्रत्यय के ककार का लशक्वतद्धिते सूत्र से इत्संज्ञा होकर अकारमात्र शेष रहता है। कप्रत्यय के कित्त्व से गुणनिषेध होकर और आतो लोप इटि च से आकारलोप सिद्ध होता है।

उदाहरण- बुधः। कृशः। ज्ञः। प्रियः। किरः।

सूत्रार्थ समन्वय- बुध्यते इति वा बुधः यहां बुध अवगमने इस धातु से उपधा में इक्प्रत्याहार में स्थित उकार है। अतः इस धातु से इगुपध होने से प्रकृतसूत्र से कर्त्रर्थ कप्रत्यय के अनुबन्धलोप में बुध् अ यह होता है। तब कप्रत्यय के आर्धधातुकसंज्ञा में पुगन्तलघूपधस्य च सूत्र से लघूपधगुण प्राप्त होने पर कप्रत्यय के कित्त्व से क्ङिति च सूत्र से उसका निषेध होता है। तब बुध समुदाय के कृदन्त होने से प्रातिपदिकसंज्ञा में स्वादिकार्य बुधः यह रूप सिद्ध होता है।

इसी तरह कृश्यति इति कृशः, लिखति इति लिखः, क्षिपति इति क्षिपः इत्यादि सिद्ध होते हैं।

जानाति इति ज्ञः। यहां ज्ञा अवबोधने (क्र्यादि. परस्मै. अनिट्) धातु से प्रकृत सूत्र में कर्त्रर्थ कप्रत्यय के अनुबन्धलोप में कप्रत्यय के कित्त्व से आतो लोप इटि च इससे ज्ञाधातु के आकार के लोप में कृदन्त होने से प्रातिपदिकसंज्ञा में स्वादिकार्य होकर ज्ञः यह रूप सिद्ध होता है।

प्रीणाति इति प्रियः। यहां प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च (क्र्यादि. उभय. अनिट्) इस धातु से कर्त्रर्थ में प्रकृत सूत्र से कप्रत्यय के अनुबन्धलोप में कित्त्व से गुणनिषेध में अचि श्नुधातुध्रुवां य्वोरियङुवङौ सूत्र से ईकार के स्थान पर इयङादेश स्वादिकार्य होकर प्रियः यह रूप सिद्ध होता है।

किरति इति किरः। यहां कृ विक्षेपे (तुदादि. परस्मै. सेट्) इस धातु से कर्त्रर्थ में प्रकृतसूत्र से

ध्यान दें:

कप्रत्यय के अनुबन्धलोप में कित्त्व से आर्धधातुक निबन्धन गुणनिषेध है। तब ऋत इद्धातोः ऋकारस्य के रपरे इर् आदेश में स्वादिकार्य होकर किरः रूप सिद्ध होता है।

27.5 गेहे कः॥ (3.1.144)

सूत्रार्थ- गृह अर्थ में ग्रह् धातु से क प्रत्यय होता है।

सूत्र व्याख्या- यह विधिसूत्र पदद्वयात्मक है। इस सूत्र से कप्रत्यय का विधान हैं। गेहे (7/1) कः (1/1) यह सूत्रगत पदों का विभक्तिनिर्देश है। प्रत्ययः (1/1), परः (1/1), धातोः (5/1) ये तीन अधिकृत है। कृत् तिङ्, कर्तरि कृत् ये दोनों सूत्र भी अधिकृत हैं। विभाषा ग्रहः यहां से ग्रहः (5/1) पद अनुवर्तित है। सूत्रार्थ है कि- ग्रहधातु से कृत्संज्ञक कप्रत्यय परे होता है गृह कर्ता अर्थ में। इस सूत्र के धातु से विहित प्रत्यय कृत्संज्ञक होता है। वह कर्त्रर्थ में होता है।

उदाहरणम्- **गृहम्।**

सूत्रार्थ समन्वय- गृह्णाति धान्यादिकम् इति गृहम् यहां ग्रहधातु प्रकृत सूत्र से कप्रत्यय के अनुबन्ध लोप में ग्रह् अ होने पर कित्त्व से ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च से रेफ के सम्प्रसारण ऋकार में सम्प्रसारणाच्च से पूर्वरूप एकादेश में गृह् अ होता है। तब इस समुदाय के कृदन्तत्व होने से प्रातिपदिक संज्ञा में स्वादिकार्य होकर गृह रूप सिद्ध होता है।

कर्म के उपपद में धातु से कृत्प्रत्यय विधायक सूत्र आरम्भ करते हैं-

27.6 कर्मण्य॥ (3.2.1)

सूत्रार्थ- कर्म पहले होने पर धातु से अण् प्रत्यय होता है।

सूत्र व्याख्या- यह विधिसूत्र पदद्वयात्मक है। इस सूत्र से अण्प्रत्यय होता है। कर्मणि (7/1) अण् (1/1) ये सूत्रगत पदच्छेद हैं। प्रत्ययः (1/1), परः (1/1), धातोः (5/1) ये तीन अधिकृत हैं। कृत् तिङ्, कर्तरि कृत् ये दोनों सूत्र भी अधिकृत हैं। वहां उपपदं सप्तमीस्थम् इस सूत्रानुसार कर्म में सप्तम्यन्त उपपद संज्ञक है। सूत्रार्थ है कि- कर्म में उपपद में धातु से कृत्संज्ञक अण्प्रत्यय परे होता है कर्ता में। इस सूत्र से धातु में विहित प्रत्यय कृत्संज्ञक होता है। वह कर्त्रर्थ में होता हैं। अण् का णकार इत्संज्ञक हलन्त्यम् इत्यनेन। तेन अकारमात्रं शिष्यते। इसका फल अचो ञ्णिति सूत्र से धातु के अन्त्य अच का वृद्धि है, अतः उपधा से धातु के उपधा की वृद्धि होती है। आतो युक्चिण्कृतोः सूत्र से युक् आगम भी होता है।

उदाहरणम्- **कुम्भकारः।**

सूत्रार्थ समन्वयः- कुम्भं करोतीति कुम्भकारः यहां कुम्भ कर्म उपपद है अतः प्रकृत सूत्र से कृधातु के अण् अनुबन्धलोप में कुम्भ अम् कृ अ होने पर अण् के णित्त्व से अचो ञ्णिति से ऋकार का वृद्धि कुम्भ अम् कार् अ होने पर कार कृदन्तयोग से कुम्भरूप कर्म के कर्तृकर्मणोः कृति इस सूत्र से षष्ठी विभक्ति में कुम्भ ङस् कार होकर गतिकारक उप पदों का कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः इस परिभाषा से उपपदमतिङ् से उप पद समास में समास होने से कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिकसंज्ञायां सुपो धातुप्रातिपदिकयोः से ङसो लुकि कुम्भकार इस समुदाय के एकदेशविकृतमनन्यवत् इस न्याय से समास होने से प्रातिपदिक संज्ञा में स्वादिकार्य होकर कुम्भकारः यह रूप सिद्ध होता है। इसी प्रकार भाष्यं करोति इति भाष्यकारः, सूत्रं करोति इति सूत्रकारः आदि प्रक्रिया को जानना चाहिए।

ध्यान दें:

27.7 आतोऽनुपसर्गे कः॥ (3.2.3)

सूत्रार्थ- उपसर्ग रहित आकारान्त धातु से कर्म पहले होने पर क प्रत्यय होता है।

सूत्रव्याख्या- यह विधिसूत्र पदत्रयात्मक है। इस सूत्र से क प्रत्यय का विधान होता है। आतः (5/1) अनुपसर्गे (6/1) कः (1/1) ये सूत्रगत पदच्छेद है। प्रत्ययः (1/1), परः (1/1), धातोः (5/1) ये तीन अधिकृत हैं। कर्मण्यण् इससे कर्मणि (7/1) यह पद अनुवर्तित है। कृदतिङ्, कर्तरि कृत् ये दोनों सूत्र भी अधिकृत है। अविद्यमानः उपसर्गः यस्य असौ अनुपसर्गः तस्मिन् अनुपसर्गे यहां बहुव्रीहिसमास है। यहां पञ्चम्यर्थ में सप्तमी है। आतः यह धातोः का विशेषण है, अतः विशेषण होने से तदन्तविधि से आदन्त धातु से यह अर्थ होता है। सूत्रार्थ है कि- कर्म के उपपद में अनुपसर्ग आदन्त धातु से कृत्संज्ञक कप्रत्यय परे होता है कर्ता अर्थ में। यह सूत्र कर्मण्यण् का अपवादभूत है। इस सूत्रेण धातु से विहित प्रत्यय कृत्संज्ञक होता है। वह कर्ता अर्थ में होता है। कप्रत्यय का ककार इत्संज्ञक है। इसका फल तो पहले ही बताया गया है।

उदाहरण- गोदः।

सूत्रार्थ समन्वय- गां ददातीति गोदः। यहां गो यह कर्म उपपद है। किन्तु दा (डुदाञ् दाने) इससे उपसर्गरहित आकारान्तधातु है। अतः प्रकृतसूत्र से अण्-अपवाद कप्रत्यय के अनुबन्धलोप में गो अम् दा अ होने पर कप्रत्यय के कित्त्व का आतो लोप इटि च इस सूत्र से दा के आकार का लोप द इस कृदन्तयोग से गोरूपकर्म की कर्तृकर्मणोः कृति इससे षष्ठी विभक्ति होती है। ततः गो ङस् द ऐसा होने पर गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः इस परिभाषा से सुबुत्पत्ति में पूर्व ही उपपदमतिङ् से उपपदसमास में कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिकसंज्ञा में सुपो धातुप्रातिपदिकयोः से ङस लोप एकदेशविकृतमनन्यवत् इस न्याय से समास होने से कृत्तद्धितसमासाश्च सूत्र से प्रातिपदिकसंज्ञा से स्वादिकार्य होकर गोदः यह रूप सिद्ध होता है। इसी तरह धनं ददाति इति धनदः, कम्बलं ददाति इति कम्बलदः आदि की प्रक्रिया है।

27.8 चरेष्टः॥ (3.2.16)

सूत्रार्थ- अधिकरण पहले हो तो चर धातु से ट प्रत्यय होता है।

सूत्रव्याख्या- यह विधिसूत्र पदद्वयात्मक है। इस सूत्र से टप्रत्यय होता है। चरेः (5/1) टः (1/1) ये सूत्रगत पदच्छेद हैं। प्रत्ययः (1/1), परः (1/1), धातोः (5/1) ये तीन अधिकृत हैं। अधिकरणे शेतेः इससे अधिकरणे (7/1) पद अनुवर्तित है और तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् सूत्र से उपपदसंज्ञक होता है। चरेः यहां धातुनिर्देश में चर्-धातु से इक्ष्तिपौ धातुनिर्देशे से इक्प्रत्यय होता है। कृदतिङ्, कर्तरि कृत् ये दोनों सूत्र भी अधिकृत है। अधिकरण उपपद में चर्-धातु से कृत्संज्ञक टप्रत्यय परे होता है कर्ता में यह सूत्रार्थ है। इस सूत्र से धातु में विहित प्रत्यय कृत्संज्ञक होता है। वह कर्त्रर्थ में होता है। टप्रत्यय का टकार इत्संज्ञक है। इससे अ-मात्र शेष रहता है। टित्करण का प्रयोजन टिड्ढाणञादि सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में ङीप्-प्रत्यय होता है।

उदाहरण- कुरुचरः।

सूत्रार्थ समन्वय- कुरुषु चरति इति कुरुचरः। यहां कुरु अधिकरण उपपद है। किन्तु चर गतिभक्षणयोः (भ्वादि. परस्मै. सेट्) से धातु भी है। अतः प्रकृत सूत्र से कर्त्रर्थ टप्रत्यय अनुबन्धलोप में कुरु सुप् च् र् अ होने पर गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः इस परिभाषा से

सुबुत्पत्ति से पूर्व ही उपपदमतिङ् इससे उपपदसमास में कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिकसंज्ञा में सुपो धातुप्रातिपदिकयोः से सुप् लोप एकदेशविकृतमनन्यवत् इस न्याय से समास होने से कृत्तद्धितसमासाश्च सूत्र से प्रातिपदिकसंज्ञा में स्वादिकार्य होकर कुरुचरः यह रूप सिद्ध होता है।

पाठगत प्रश्न-1

1. ण्वुल्तृचौ इसका क्या अर्थ है?
2. ण्वुल्तृचौ इसका उदाहरण क्या है?
3. कारकः यहां अक् आदेश किससे होता है?
4. पचः यहां किससे और कौन सा प्रत्यय होता है?
5. प्रियः इसमें कौन-सा और किससे प्रत्यय है?
6. गेहे कः इसका उदाहरण क्या है?
7. कर्मण्यण् इसका उदाहरण क्या है?
8. आतोऽनुपसर्गे कः इसका उदाहरण क्या है?
9. कुरुचरः यहां किससे और कौन-सा प्रत्यय है?
10. टप्रत्यय के टित्करण का क्या अर्थ है?
11. सूत्रकारः इसका क्या अर्थ है?
12. भाष्यकारः इसमें कौन-सा प्रत्यय है?

अब निष्ठाप्रकरण आरम्भ करते हैं। वहां आदि में निष्ठासंज्ञाविधायक सूत्र आरम्भ करते हैं-

27.9 क्तक्तवतू निष्ठा॥ (1.1.26)

सूत्रार्थ- क्त और क्तवतु निष्ठासंज्ञक होते हैं।

सूत्र व्याख्या- यह संज्ञासूत्र पदद्वयात्मक है। इस सूत्र से निष्ठा संज्ञा होती है। क्तक्तवतू निष्ठा यह सूत्रगत पदों का विभक्तिनिर्देश है। क्तश्च क्तवतुश्च क्तक्तवतू यहां इतरेतरयोगद्वन्द्व है। जहां सूत्र में निष्ठा पदं सुनते हैं वहां निष्ठापद से क्तप्रत्यय और क्तवतुप्रत्यय का ग्रहण सूत्र का आशय है। क्त क्तवतु इन दोनों का ककार इत्संज्ञक लशक्वतद्धिते से होता है। किन्तु क्तवतु का उकार भी इत्संज्ञक उपदेशेऽजनुनासिक इत् से होता है। दोनों प्रत्यय आर्धधातुकं शेषः से आर्धधातुकसंज्ञक होता है। उनसे वलादी भी होता है। अतः आर्धधातुकस्येड्वलादेः से कहीं इट प्राप्ति, या कहीं इण्निषेध होता है। दोनों प्रत्ययों का ककारानुबन्ध से गुणवृद्धिनिषेध सम्प्रसाणादि कार्य होता है। क्तवतु का उकारानुबन्ध तो उगितश्च से उगित्कार्यार्थ है। यहां प्रत्यय भेद से यद्यपि रूपभेद होता है। फिर भी प्रक्रिया से वैसा तारताम्य नहीं है।

उदाहरण- अग्रिम सूत्रों को कहते हैं।

ध्यान दें:

ध्यान दें:

22.10 निष्ठा॥ (3.2.102)

सूत्रार्थ- भूतार्थ में धातु से निष्ठा प्रत्यय होता है।

सूत्रव्याख्या- यह विधिसूत्र एकपदात्मक है। इस सूत्र से निष्ठासंज्ञक प्रत्यय होता है। निष्ठा (1/1) यह प्रथमैकवचनान्त है। प्रत्ययः (1/1), परः (1/1), धातोः (5/1), भूते (7/1) ये चार अधिकृत हैं। कृत् तिङ्, कर्तरि कृत् ये दोनों सूत्र भी अधिकृत है। सूत्रार्थ है कि- भूतकालवृत्ति की विवक्षा में धातु से निष्ठासंज्ञक क्तक्तवतुप्रत्यय परे होते हैं। इस सूत्र से धातु में विहित प्रत्यय कृत्संज्ञक होता है। किन्तु कर्तरि कृत् से अपवादभूत उनके ही कृत्यक्तखलर्थाः सूत्र से क्तप्रत्यय भाव और कर्मार्थ में होता है। अकर्मकधातुस्थल पर क्तप्रत्यय भाव में, सकर्मकधातुस्थल पर कर्म में होता है। अकर्मक स्थल में कर्ता प्रथमान्त होता है, सकर्मक स्थल में कर्ता तृतीयान्त होता है। क्तवतुप्रत्यय तो कर्तरि कृत् इससे नियमानुसार कर्ता ही अकर्मकधातु स्थल या सकर्मकधातु स्थल में होते है। अत्र कर्ता प्रथमान्त होता है यह इन प्रत्ययों का विशेष होता है।

उदाहरण- स्नातं मया। स्तुतस्त्वया विष्णुः। विश्वं कृतवान् विष्णुः।

सूत्रार्थ समन्वय- अकर्मकधातुस्थल में क्तप्रत्यय के उदाहरण-

स्नातं मया- स्ना (ष्णा शौचे, अदा.परस्मै.अनिट्) धातु से अकर्मक है। उससे धातोः भूतकालवृत्तित्वविवक्षायाम् निष्ठा इस प्रकृत सूत्र से भाव में (धात्वर्थ) क्तप्रत्यय अनुबन्धलोप में क्तप्रत्यय के आर्धधातुकत्व होने से आर्धधातुकस्येड्वलादेः इस सूत्र से इडागम प्राप्त होने पर एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् इससे उसका निषेध होता है। तब स्नात का अद्रव्यत्व होने से भाव में सामान्ये नपुसंकम् से नपुंसकलिङ्ग में औत्सर्गिक एकवचन होता है। तब स्नात इस समुदाय के कृदन्तत्व होने से प्रातिपदिकसंज्ञा में प्रथमा एकवचन के सुप्रत्यय में अतोऽम् इसस सु को अमादेश होकर अमि पूर्वः सूत्र से पूर्वरूप एकादेश में स्नातम् रूप सिद्ध होता है। स्नातं मया यहां मया अनभिहित (अनुक्त) कर्ता में तृतीया कर्तृकरणयोस्तृतीया से होती है।

सकर्मकधातुस्थल में क्तप्रत्यय का उदाहरण-

स्तुतस्त्वया विष्णुः- स्तु (ष्टुञ् स्तुतौ, अदादि.उभय.अनिट्) इस सकर्मकधातु से भूतार्थ वृत्तित्व विवक्षा में प्रकृत सूत्र से क्तप्रत्यय के पूर्ववत् इण्निषेध में कित्त्व से सार्वधातुकार्धधातुकयोः के प्राप्त गुण का क्ङिति च से निषेध है। यहां क्तप्रत्यय कर्म में विहित है यहां कर्म विष्णु हैं। अतः उसके अनुसार कृदन्त होने से लिङ्गवचन विहित स्तुतः यह रूप सिद्ध होता है। कर्म के अभिहित होने से विष्णुः यहां प्रथमाविभक्ति होता है। कर्ता के अनभिहित होने से कर्तृकरणयोस्तृतीया सूत्र से तृतीयाविभक्ति होती है।

कर्त्रर्थ मात्र में क्तवतु प्रत्यय का उदाहरण-

विश्वं कृतवान् विष्णुः- भूतकाल वृत्तित्व विवक्षा में कृ (डुकृञ् करणे, तनादि.उभय.अनिट्) इससे धातु से कर्त्रर्थ में क्तवतुप्रत्यय के अनुबन्धलोप में इण्निषेध में कित्त्व होने से आर्धधातुक निबन्धन गुणनिषेध में कृ तवत् यह होता है। तब कृतवत् इस समुदाय के कृदन्तत्व होने से कृत्तद्धितसमासाश्च सूत्र से प्रातिपदिकसंज्ञा में सुवभिक्तौ अत्वसन्तस्य चाधातोः से उपधासंज्ञक वकारोत्तरवर्ति अकार के दीर्घे मिदचोऽन्त्यात्परः इस परिभाषा से परिष्कृत उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः से नुमागम अनुबन्धलोप में कृतवान् त् स् होने पर हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल् सूत्र से सकार का लोप संयोगान्तस्य लोपेः से संयोगान्त तकार का भी लोप होने पर कृतवान् यह रूप होता है। यहां क्तवतुस्थल में कर्त्रनुसार लिङ्गवचन होता है। यथा प्रकृत में विष्णुः में कर्त्रनुसार लिङ्गवचन होते हैं। अन्य विश्वं कृतवती देवी, विश्वं कृतवन्तः

ध्यान दें:

देवाः, भाग्यं कृतवत् जगत् आदि में भी कर्त्रनुसार लिङ्गवचन हैं।

[सूत्रम् अत्वसन्तस्य चाधातोः (6.4.14) = अत्वन्तस्योपधाया दीर्घो धातुभिन्नासन्तस्य चासम्बुद्धौ सौ परे।]

[सूत्रम् उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः (7.1.70 = अधातोरुगितो नलोपिनोऽञ्चतेश्च नुम् स्यात्सर्वनामस्थाने परे।]

यहां विशेष- क्तवतुप्रत्यय कर्त्रर्थ में होते हैं हेतोः से कर्म अनुक्त होता है। इससे कर्मणि द्वितीया सूत्र से द्वितीयाविभक्ति होती है। यहां कृद्योग में कर्तृकर्मणोः कृति सूत्र से प्राप्त षष्ठीविभक्ति में न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतघ्नाम् से निषेध होता है।

शृ हिंसायाम् (क्रयादि परस्मै. सेट्) इस धातु से भूतकालवृत्तित्व विवक्षा में निष्ठा से कर्म में निष्ठासंज्ञक क्तप्रत्यय के अनुबन्धलोप में आर्धधातुकस्येड्वलादेः से प्राप्त इडाग श्युकः किति से निषेध होता है, सार्वधातुकार्धधातुकयोः से प्राप्त गुण का क्ङिति च से निषेध होता है। तब ऋत् इद्धातोः से धातु के ऋकार का इत्व में उरण् रपरः से रपरत्वे हलि च से रेफान्त उपधासंज्ञक इकार की दीर्घ में शीर्त होने पर अग्रिम सूत्र आरम्भ करते हैं-

[सूत्र श्युकः किति (7.2.11 = श्रिञ एकाच उगन्ताच्च गित्कितोरिण् न।]

27.11 रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः॥ (8.2.42)

सूत्रार्थ- र और द के बाद निष्ठा के त को न होता है और निष्ठा के पूर्ववर्ति धातु के द् को भी न होता है।

सूत्र व्याख्या- इस विधिसूत्र में षट् पद हैं। रदाभ्याम् (5/2) निष्ठातः (6/1) नः (1/1) पूर्वस्य (6/1) च (अव्यय) दः (6/1) यह सूत्रगत पदच्छेद ह। नः यहां नकार से अकार उच्चारण अर्थ है। रश्च दश्च रदौ ताभ्याम् रदाभ्याम् यहां इतरेतरयोगद्वन्द्व है। निष्ठायाः त् इति निष्ठात्, तस्य निष्ठातः यहां षष्ठी तत्पुरुष समास है। सूत्र में प्रयुक्त पूर्व शब्द सापेक्ष है। वहां किससे पूर्व यह जिज्ञासा होती है। अतः निकटस्थ निष्ठाशब्द का ही यहां ग्रहण होता है। उससे निष्ठासंज्ञक प्रत्यय से पूर्व (दकार के स्थान पर) यह अर्थलाभ है। सूत्रार्थ है कि- रेफ और दकार से परे निष्ठासंज्ञक त् के स्थान पर न् आदेश होता है किन्तु निष्ठासंज्ञक प्रत्यय से पूर्व दकार के स्थान पर भी न आदेश होता है।

उदाहरण- शीर्णः। भिन्नः।

सूत्रार्थ समन्वय- ऊपर उक्त प्रकार से शृधातु से प्रत्यय में शीर्त् होने पर प्रकृत सूत्र से निष्ठा संज्ञक क्तप्रत्यय के तकार के स्थान पर नकार आदेश होता है। क्योंकि यह तकार रेफ से परे है। तब शीर्न् अ ऐसा होने पर रषाभ्यां नो णः समानपद में नकार के णकारादेश में शीर्ण यह होता है। तब इस समुदाय के कृदन्तत्व होने से कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिकसंज्ञा में स्वादिकार्य में शीर्णः यह रूप सिद्ध होता है।

कर्ता में क्तवतुप्रत्यय में प्रक्रिया से शीर्णवान् रूप भी होता है।

भिदिर विदारणे (रुधादि. उभय. अनिट्) यह धातु सकर्मक है। अतः निष्ठा सूत्र से कर्म में क्तप्रत्यय के अनुबन्धलोप में भिद् त होने पर आर्धधातुकस्येड्वलादेः से प्राप्त इडागम के एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् से निषेध होने पर, सार्वधातुकार्धधातुकयोः से प्राप्त गुण का क्ङिति च से निषेध होता है क्तप्रयय के कित्त्व होने से। तब प्रकृत सूत्र से दकार के परे तकार के नकार के पूर्व दकार का भी

ध्यान दें:

नकार में भिन्न यह होता है। तब इस समुदाय के कृदन्तत्व होने से कृत्तद्धितसमासाश्च इससे प्रातिपदिक संज्ञा में स्वादिकार्य में छिन्नः रूप सिद्ध होता है।

कर्ता के क्तवतु प्रत्यय में प्रक्रिया से छिन्नवान् यह रूप भी होता है।

द्रा कुत्सायां गतौ (अदादि.परस्मै.अनिट्) इस धातु से भूतकालवृत्तित्व विवक्षा में निष्ठा से निष्ठासंज्ञक क्तप्रत्यय अनुबन्धलोप में धातु से एकाच्त्व होने से और अनुदात्तत्व होने से प्राप्त इडागम का निषेध होकर द्रा त यह होता है, यह सूत्र आरम्भ करते हैं-

27.12 संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः॥ (8.2.43)

सूत्रार्थ- संयोग आदि और यण् वाली आकारान्त धातु के बाद निष्ठा के त को न आदेश होता है।

सूत्र व्याख्या- यह विधिसूत्र पदचतुष्टयात्मक है। इस सूत्र से निष्ठा से नत्व का विधान किया जाता है। संयोगादेः (5/1) आतः (5/1) धातोः (5/1) यण्वतः (5/1) ये सूत्रगत पदच्छेद है। रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः इस सूत्र से निष्ठातः (6/1) नः (1/1) ये दो पद अनुवर्तित है। संयोगः आदिः यस्य सः संयोगादिः तस्मात् संयोगादेः यहां बहुव्रीहि समास है। यण् अस्य अस्तीति यण्वान् (तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् इससे मतुप्रत्यय है, मादुपधायाश्च इससे मतुप् के मकार का वकार होता है।) तस्माद् यण्वतः। निष्ठायाः त् इति निष्ठात् तस्य निष्ठातः यहां षष्ठीतत्पुरुषसमास है। आतः इस धातु के विशेषण से अतः तदन्त विधि से आदन्त धातु यह अर्थलाभ है। सूत्रार्थ है कि- संयोगादि यण्वत आदन्त धातु के परे निष्ठासंज्ञक तकार के स्थान पर नकार आदेश होता है। अर्थात् धातु के आदि में संयोगवर्ण होता है, उससे उसमें ही धातु से यण्प्रत्याहार स्थान य्-व्-र्-ल् -वर्णों से होता है किन्तु वह धातु आकारन्त होती है ये तीन अपेक्षित है निष्ठासंज्ञक तकार का नकार आदेश विधित होता है।

उदाहरण- द्राणः। ग्लानः।

सूत्रार्थ समन्वय- ऊपर उक्त प्रकार से द्रा त यहां द्रा यह संयोगादि धातु है, फिर भी यह धातु आकारान्त है, किन्तु धातु से यण्प्रत्याहारस्थ रेफवर्ण है यह अपेक्षित तीन होता है। अतः प्रकृत सूत्र से निष्ठा के तकार का नकार आदेश में अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि इससे नकार के णत्व में द्राण होता है। तब इस समुदाय के कृदन्त होने से कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिक संज्ञा में स्वादिकार्य होने पर द्राणः यह रूप सिद्ध होता है। कर्ता के क्तवतु- प्रत्यय में द्राणवान् भी रूप है। इसी प्रकार की प्रक्रिया ग्लानः, ग्लानवान् यहां भी होती है।

शुष्-धातु से विहित निष्ठातकार के ककार आदेश विधान के लिए यह सूत्र आरम्भ करते हैं-

27.13 शुषः कः॥ (8.2.51)

सूत्रार्थ- शुष के बाद निष्ठा के त को क होता है।

सूत्र व्याख्या- यह विधिसूत्र पदद्वयात्मक है। इस सूत्र से ककार आदेश होता है। शुषः (5/1) कः (1/1) यह सूत्रगत पदों का विभक्तिनिर्देश है। कः के ककार का अकार उच्चारणार्थ है। रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः इस सूत्र से निष्ठातः (6/1) यह पद अनुवर्तित है। सूत्रार्थ है कि- शुष्धातु से विहित निष्ठा के तकार के स्थान पर ककार आदेश होता है।

उदाहरण- शुष्कः।

ध्यान दें:

सूत्रार्थ समन्वय- शुष शोषणे (दिवादि. परस्मै. अनिट्) इससे अकर्मक धातु से भूतकालवृत्तित्व विवक्षा में कर्ता में क्तप्रत्यय के अनुबन्धलोप में शुष् त यह होने पर ष्टुना ष्टुः इससे शुष के क का युगपत् प्राप्त होता है। उससे पूर्वत्रासिद्धम् इससे सूत्रानुसार शुषः कः (8.2.51) पूर्वत्रिपादिस्थ सूत्र के प्रति ष्टुना ष्टुः (8.4.41) इससे परत्रिपादिस्थसूत्र के असिद्धत्व होने से शुषः कः सूत्र से निष्ठा के तकार के स्थान पर ककार आदेश में शुष्क यह होता है। तब इस समुदाय के कृदन्त होने से कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिकसंज्ञा में स्वादिकार्य में शुष्कः रूप सिद्ध होता है। कर्ता के क्तवतुप्रत्यय में तो शुष्कवान् यह रूप भी होता है।

डुपचष् पाके (भ्वादि. उभय. अनिट्) इस धातु से निष्ठा से भूतकालवृत्तित्व विवक्षा में कर्म में क्तप्रत्यय के अनुबन्धलोप में पच् त के स्थित होने पर यह सूत्र आरम्भ करते हैं-

27.14 पचो वः॥ (8.2.52)

सूत्रार्थ- पच् धातु के बाद निष्ठा के त को व होता है।

सूत्र व्याख्या- यह विधि सूत्र पदद्वयात्मक है। इस सूत्र से वकार आदेश होता है। पचः (5/1) वः (1/1) यह सूत्रगत पदच्छेद है। ककार से अकार उच्चारणार्थ है। रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः सूत्र से निष्ठातः (6/1) यह पद अनुवर्तित है। सूत्रार्थ है कि- शपच्धातु में विहित निष्ठा के तकार के स्थान पर वकार आदेश होता है। उदाहरण-पक्वः।

सूत्रार्थ समन्वय- पूर्वोक्त प्रकार से पच् त इस स्थिति में पचो वः सूत्र से तकार के स्थान पर वकार आदेश से पच् व होता है। तब पचो वः (8.2.52) से परत्रिपादित्वेन असिद्धत्वात् चोः कुः (8.2.30) से चकार के कुत्व ककार होने पर पक्व होता है। तब इस समुदाय के कृदन्तत्व होने से कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिक संज्ञा में स्वादिकार्य होकर पक्वः रूप सिद्ध होता है।

कर्ता में क्तवतुप्रत्यय में पक्ववान् रूप होता है।

भूधातु से हेतुमति च से हेतुमण्णिच् में णित्त्व से अचो ञ्णिति सूत्र से अजन्त लक्षणा वृद्धि औकार में एचोऽयवायावः इससे औकार के स्थान पर आवादेशे भावि से णिजन्त शब्दरूप होता है। तब सनाद्यन्ता धातवः सूत्र से भाव में धातुसंज्ञा है। वह सकर्मक भी है। तब भूतकालवृत्तित्व विवक्षा में निष्ठा सूत्र से कर्म के क्तप्रत्यय के अनुबन्धलोप भाव में त होता है, धातोः अनेकाच् सेट् होने से आर्धधातुकस्येड्वलादेः से इडागम में अनुबन्धलोप भाव में इ त इत होने पर यह सूत्र आरम्भ करते हैं-

27.15 निष्ठायां सेटि॥ (6.4.52)

सूत्रार्थ- सेट् निष्ठा बाद में हो तो णि का लोप होता है।

सूत्र व्याख्या- यह विधिसूत्र पदद्वयात्मक है। इस सूत्र से णिलोप होता है। निष्ठायाम् (7/1) सेटि (7/1) यह सूत्रगत पदच्छेद है। णेरनिटि से णेः (6/1) पद अनुवर्तित है। अतो लोपः से लोप पद है। इटा सह वर्तते सेट्, तस्मिन् सेटि यहां बहुव्रीहि समास है। सूत्रार्थ है कि- सेट् निष्ठा में णिच्प्रत्यय का लोप होता है। निष्ठा प्रत्यय के इडागम में इट्परत्व होने से णेरनिटि से न प्रवर्तित है। अतः प्रकृत सूत्रारम्भ इट्स्थल में णिलोप के लिए।

उदाहरण- भावितः।

सूत्रार्थ समन्वय- पूर्वोक्त प्रकार से भाव में इत सेट् से निष्ठाप्रत्यय परे है। अतः निष्ठायां सेटि

ध्यान दें:

से णेर्लोप में भाव् इत होता है। तब इस समुदाय के कृदन्तत्व होने से कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिक संज्ञा में स्वादिकार्य होकर भावितः रूप सिद्ध होता है।

भाव में इस क्तवतु प्रत्यय के इडागम में भावि इ तवत् होने पर प्रकृत सूत्र से णिलोप में भावितवत् होता है। तब इस समुदाय के कृदन्तत्व होने से कृत्तद्धितसमासाश्च सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा में सुप्रत्यय के भाव के समान सु होने पर अत्व होने से चाधातोः इस अत्वन्त के उपधा से दीर्घ में उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः सूत्र से नुम आगम के अनुबन्धलोप में हल्ङ्यादि लोप में संयोगान्त तकार के लोप और वर्णसम्मेलन में भावितवान् रूपं सिद्ध होता है। इस सूत्र से स्वार्थणिच् हेतुमण्णिच् इन दोनों से णिच् का लोप होता है।

डुदाञ् दाने (जुहोत्यादि. उभय. अनिट्) यह सकर्मक धातु घुसंज्ञक है दाधाघ्वदाप् से। इस धातु से भूतार्थवृत्तित्व विवक्षा में निष्ठा से कर्म के क्तप्रत्यय के अनुबन्धलोप में दा त यह होता है, धातु से अनुदात्तत्व होने से इडागम निषेध में दा के घुसंज्ञक होने से घुमास्थागापाजहातिसां हलि से आकार का ईत्त्व प्राप्त होने पर यह सूत्र आरम्भ करते हैं-

27.16 दो दघ्दोः॥ (7.4.46)

सूत्रार्थ- घुसंज्ञक दा को दथ् होता है बाद में तादि कित् हो तो।

सूत्रव्याख्या- यह विधिसूत्र पदत्रयात्मक है। इस सूत्र से दथ्- आदेश होता है। दः (6/1) दथ् (1/1) घोः (6/1) इससे सूत्रगत पदच्छेद है। द्यतिस्यतिमास्थामित्तिकिति से ति (7/1) किति (7/1) इन दो पदों की अनुवृति होती है। दाशब्द के षष्ठी एकवचन में आतो धातोः से अकारलोप में दः रूप होता है। ति किति का विशेषण है। अतः यस्मिन्विधिस्तदादावल्ग्रहणे इस परिभाषा से तदादि विधि में तादि कित् है यह अर्थलाभ है। सूत्रार्थ है कि- तादि कित् घुसंज्ञक दाधातु के स्थान पर दथ् यह आदेश होता है। दथ् अनेकाल् है। अतः अनेकाल्शित्सर्वस्य इस परिभाषा से दा इस सम्पूर्णस्थान पर दथ् आदेश होता है।

[सूत्रम्. आतो धातोः (6.4.140) = आकारान्तो यो धातुस्तदन्तस्य भस्याङ्गस्य लोपः।]

यहां विशेष- दो दघ्दोः सूत्र से विधीयमान आदेश के स्वरूपविषय में मतचतुष्टय है-

तकारान्त आदेश - दत् (दत् + घोः = दघ्दोः)।

दकारान्त आदेश - दद् (दद् + घोः = दघ्दोः)।

धकारान्त आदेश - दध् (दध् + घोः = दघ्दोः)।

थकारान्त आदेश - दथ् (दथ् + घोः = दघ्दोः)।

यहां सभी जगह जश्त्वे सूत्र में स्थित दद्घोः यह निर्देश उपपन्न होता है। भाष्यकृत तो थान्त ही पाठ समर्थित है। वह ही यहां उपन्यस्त है। उदाहरण- दत्तः।

सूत्रार्थ समन्वय- पूर्वोक्त प्रकार से दा त होने पर प्रकृत सूत्र से दा के स्थान पर दथ् सर्वादेश में दथ् त होने पर खरि च से तकार के स्थान पर चर्त्व तकार में दत्त होता है। वहां इस समुदाय के कृदन्त होने से कृत्तद्धितसमासाश्च सूत्र से प्रातिपदिकसंज्ञा में स्वादिकार्य से दत्तः रूप सिद्ध होता है।

कर्ता से क्तवतुप्रत्यय में तो दत्तवान् रूप भी होता है।

ध्यान दें:

पाठगत प्रश्न-2

13. निष्ठा संज्ञा विधायक सूत्र कौन-सा है?
14. निष्ठा इसका क्या अर्थ है?
15. शीर्णः यहां निष्ठातकार का णत्व किससे है?
16. शुष्कः इसमें किससे और कौन-सा प्रत्यय है?
17. पचों वः इसका उदाहरण क्या है?
18. भावितः यहां णेर्लोप किससे होता है?
19. दो दद्घोः इसका उदाहरण क्या है?
20. ग्लानः यहां निष्ठात का नत्व किससे है?
21. भिद्-धातु से क्त प्रत्यय और क्तवतु प्रत्यय में क्या रूप बनते हैं?
22. पक्तः पक्वः इनमें से कौन-सा साधु है।

पाठ सार

इस पाठ में ण्वुल्-तृच्-ल्यु-णिनि-अच्-क-अण्-ट ये प्रत्यय आलोचित हैं। यद्यपि कर्तरि कृत् इस सामान्यसूत्र से कर्त्रर्थ कृत्प्रत्यय होता है। तथापि कुछ प्रत्यय भिन्नार्थे में भी होते हैं। यथा क्त प्रत्यय अकर्मकधातुस्थल में कर्ता के सकर्मक धातुस्थल में कर्म होता है। भाव में भी क्त प्रत्यय होता है, यह अन्तिमपाठ में कहते हैं। क्तवतु प्रत्यय कर्त्रर्थ में ही होता है। कारकः, कर्ता, गृहम्, प्रियः, कुम्भकारः, कुरुचरः, स्तुतः, कृतवान्, शीर्णः, शुष्कः, पक्वः, भावितः, दत्तः इन कृदन्त शब्दों से प्रक्रिया प्रदर्शित हैं। अन्त में निष्ठासंज्ञक क्त क्तवतु प्रत्ययों की आलोचना विहित है। निष्ठा त के स्थान पर कभी नकार, कभी ककार, और कभी वकार होता है। इससे सर्वत्र निष्ठा का तकार नहीं सुना जाता है यथा- शुष्कः, शीर्णः, पक्वः इत्यादि में।

पाठान्त प्रश्न

1. कर्मण्यण् सूत्र की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।
2. आतोऽनुपसर्गे कः सूत्र की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।
3. निष्ठासंज्ञक प्रत्यय विषय में लघुप्रबन्ध लिखिए।
4. रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः सूत्र की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।
5. संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः सूत्र की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।
6. कुम्भकारः इसकी रूप सिद्धि कीजिए।
7. गोदः इसकी रूप सिद्धि कीजिए।

पाठ-27

पूर्वकृदन्त-1

ध्यान दें:

8. कारकः, कर्ता इनकी रूपसिद्धि कीजिए।
9. नन्दनः इसकी रूप सिद्धि कीजिए।
10. भावितः इसकी रूप सिद्धि कीजिए।

पाठगत प्रश्नोत्तर

उत्तर-1

1. धातु से ण्वुल्तृच कृत्संज्ञक प्रत्यय परे होने पर कर्ता में होता है।
2. कारकः, कर्ता।
3. युवोरनाकौ इससे।
4. नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः इससे अच्-प्रत्यय।
5. क प्रत्यय इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः इससे होता है।
6. गृहम्।
7. कुम्भकारः।
8. गोदः।
9. चरेष्टः इससे टप्रत्यय होता है।
10. टिड्ढाणञादि सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में ङीप्-प्रत्यय का विधान है।
11. सूत्र करता है।
12. अण्प्रत्यय।

उत्तर-2

13. क्तक्तवतू निष्ठा।
14. भूतार्थवृत्त में धातु से निष्ठा होता है।
15. रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः।
16. निष्ठा इससे क्त प्रत्यय है।
17. पक्वः।
18. निष्ठायां सेटि।
19. दत्तः।
20. संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः।
21. भिन्नः, भिन्नवान्।
22. पक्वः।

28

पूर्व कृदन्त-2

ध्यान दें:

आपने पूर्व पाठ में पूर्वकृदन्त के प्रथमभाग का परिचय प्राप्त किया। इस तृतीयपाठ में उसके ही द्वितीयभाग का परिचय प्राप्त किया। यहां कानच्-क्वसु-शतृ-शानच्-तृन्-ष्ट्रन्-उ ये कृत्प्रत्यय आलोचित होंगे। इनमें से कानच्-क्वसु ये प्रत्यय वैदिक हैं। यद्यपि लोक में कहीं पर क्वसुप्रत्ययान्त पद का भी प्रयोग देखा जाता है। उपर उक्त प्रत्ययों की शतृ शानच् सत्संज्ञा होती है। सत्संज्ञा का क्या प्रयोजन है यह आगे जानेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे-

- कानच्-क्वसु इन वैदिक प्रत्ययों के प्रयोग को जान पाने में;
- सत्संज्ञक प्रत्यय किस अर्थ में होते हैं यह जान पाने में;
- सत्संज्ञकप्रत्ययान्ता शब्दों की प्रक्रिया जान पाने में;
- चक्राणः, जगन्वान्, पचन्तम्, पचमानम्, विद्वान्, करिष्यन्तम्, करिष्यमाणम्, कर्ता, चिकीर्षुः, प्राट्, नद्ध्री, दंष्ट्रा, पत्त्रम्, मेढ्रम्, सेक्त्रम्, सेत्रम्, तोत्त्रम्, स्तोत्रम्, योक्त्रम्, योत्रम्, शस्त्रम्, नेत्रम्, दात्रम् इन कृदन्त शब्दों की प्रक्रिया को समझेंगे।
- उनके अनुबन्धों के प्रयोजन को जान पाने में;

28.1 लिटः कानज्वा॥ (3.2.106)

28.2 क्वसुश्च॥ (3.2.107)

सूत्रार्थ- लिट को विकल्प से कानच् और क्वसु आदेश होते हैं।

सूत्र व्याख्या- ये दोनों विधि सूत्र हैं। लिटः (6/1) कानच् (1/1) वा (अव्यय) ये प्रथम सूत्रगत पदच्छेद हैं। क्वसुः (1/1) च (अव्यय) यह द्वितीय सूत्रगत पदच्छेद है। द्वितीय सूत्र में लिटः कानच् वा से लिटः वा यह पद अनुवर्तित है। लिट के स्थान पर कानच्-आदेश विकल्प से होता है यह प्रथम सूत्रार्थ

ध्यान दें:

है। लिट के स्थान पर क्वसु आदेश भी विकल्प से होता है यह द्वितीय सूत्रार्थ है। लिट के स्थान पर कानच् और क्वसु आदेश विकल्प से होते हैं यह सम्मिलितार्थ होता है। इन सूत्रों से पूर्व छन्दसि लिट् (3.2.105) यह सूत्र है। इसका अर्थ वेद भूत सामान्य में लिट्प्रत्यय होता है। इस ही वैदिक लिट स्थान पर उन सूत्रों से विधीयमान आदेश होता है। इन प्रत्ययों का वेद में ही प्रयोग होता है यह पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि मुनित्रय का मत है। लोक में यद्यपि क्वसुप्रत्ययान्त पद का प्रयोग देखा जाता है। यथा कालिदास रघुवंश में लिखते हैं कि- तं तस्थिवांसम्, श्रेयांसि सर्वाण्यधिजग्मुषस्ते इत्यादि। कानच्प्रत्यय की तङानावात्मनेपदम् सूत्र से आत्मनेपद संज्ञा होती है। कानच के ककार और चकार इत् होते हैं। अत: उनके लोप होने पर आन ही शेष रहता है। चित्करणं चित: इससे अन्तोदात्त स्वरार्थ, कित्करण को गुणवृद्धि निषेध होता है यह अर्थ है। क्वसु यहां उकार और ककार इत्संज्ञक होते हैं। अत: वस्-मात्र शेष रहता है। उकारानुबन्ध उगित्कार्यार्थम है, कित्प्रयोजन तो उक्त ही है। लिट्प्रत्यय कृदतिङ् से कृत्संज्ञक है। अत: स्थानिवद् भाव से उन कानच्-क्वसु प्रत्ययों की कृत्संज्ञा सिद्ध होती है। पुन: क्वसु और कानच का यद्यपि आदेश होता है तथापि स्थानिवद्भाव से प्रत्यय दोनों ही हैं। अत: यहां कानच्प्रत्यय, और क्वसुप्रत्यय है यह व्यवहार है। कानच्प्रत्यय तङानावात्मनेपदम् सूत्र से आत्मनेपदसंज्ञक होता है। अत: अनुदात्तङित आत्मनेपदम्, स्वरितञित: कर्त्रभिप्राये क्रियाफले इत्यादि सूत्रों से जिन धातुओं से आत्मनेपद होता है उनसे ही विहित लिट के स्थान पर क्वसु और कानच् आदेश होता है। क्वसु आदेश तो ल: परस्मैपदम् से लादेशो होता है। अत: परस्मैपदसंज्ञ है। उससे परस्मैपद में धातुस्थल पर ही यह आदेश होता है न कि आत्मनेपद धातुस्थल पर।

उदाहरण- चक्राण:। तस्थिवांसम्।

सूत्रार्थ समन्वय- कानच का उदाहरण- चक्राण:। यहां करणार्थक कृधातु से कर्तृत्व विवक्षा भूतसामान्य में छन्दसि लिट् से लिट्प्रत्यय है। पुन: क्रियाफलस्य कर्तृगामित्वे लिट: कानज्वा से लिट के स्थान पर आत्मनेपद संज्ञक कानजादेश अनुबन्धलोप में कृ आन इति होता है। तब लिडादेश कानच् के स्थानिवद्भाव से लिड्वद्भाव में लिट धातु के अनभ्यास से द्वित्वे उरत् से अत्त्व में उरण् रपर: से रपरत्व में हलादिशेषे कुहोश्चु: से अभ्यास के ककार को चकारादेश में चकृ आन होने पर आन: आर्धधातुकत्वात् सार्वधातुकार्धधातुकयो: से गुण प्राप्त में कानच: कित्त्व होने पर क्ङिति च से गुणनिषेध होता है। तब इको यणचि से यणि रेफे अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि से न के णत्व में चक्राण: होता है। तब इस समुदाय के कृदन्तत्व होने से कृत्तद्धितसमासाश्च सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा से स्वादिकार्य में चक्राण: रूप सिद्ध होता है। वेद प्रयोग में जैसे- अग्निर्भुवद् रयिपतो रयीणां सत्रा चक्राणो अमृतानि विश्वा (ऋग्वेद: सं. 1.72.1)।

कानच् विकल्प से होता है इससे कहीं तिङ् भी सुना जाता है जैसे अहं सूर्यमुभयतो ददर्श (यजु: 8.9)। यहां भूतसामान्य में लिट् है।

क्वसु का उदाहरण- जगन्वान्।

गम् गतौ (भ्वादि.प.अनिट्) इस धातु से कर्तृत्व विवक्षा भूतसामान्य में छन्दसि लिट् इससे लिटि क्वसुश्च इससे लिट के स्थान पर क्वसु-आदेश अनुबन्धलोप में गम् वस् होता है। तब लिडादेश क्वसु के स्थानिवद्भाव से लिड्वद्भाव में लिटि धातोरनभ्यासस्य से द्वित्व में द्वित्व के पूर्वभाग का अभ्याससंज्ञा में हलादिशेषे कुहोश्चु: से अभ्यास के गकार के स्थान पर जकारादेश में जगम् वस् होता है। तब क्वसु के आर्धधातुकत्व होने से आर्धधातुकस्येड्वलादे: से प्राप्त इडागम को नेड्वशि कृति से निषेध होता है। फिर भी क्रादिनियम से इडागम प्राप्त ही है। तब वस्वेकाजाद्घसाम् से पुन: इण् निषेध में विभाषा गन -हन -विद -विशाम् से विकल्प से इडागम होता है। इट्पक्ष में- गमहनजनखनघसां लोप: क्ङित्यनङि से उपधलोप में जग् मिवस् होता है। इडभावपक्ष में जगम् वस् की स्थिति में यह सूत्र आरम्भ करते हैं-

ध्यान दें:

[सूत्रम् वस्वेकाजाद्घसाम् (7.2.67) = कृतद्विर्वचनानामेकाचामादन्तानां घसेश्च वसोरिट्, नान्येषाम्।]

[सूत्रम् विभाषा गनहनविदविशाम् (7.2.68) = गम् -हन् -विद् -विश् -धातुभ्यः वसोरिड्वा।]

[सूत्रम् गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि (6.4.98) = गमहनजनखनघसामुपधाया लोपः स्यादजादौ क्ङिति न त्वङि।]

[28.3] म्वोश्च॥ (8.2.65)

सूत्रार्थ- मकारान्त धातु के म् को न् होता है, बाद में म और व हो तो।

सूत्र व्याख्या- यह विधि सूत्र पदद्वयात्मक है। इस सूत्र से नकारादेश होता है। म्वोः (7/2) च (अव्ययपद) यह सूत्रगत पदच्छेद है। मो नो धातोः यह सूत्र अधिकृत है। उस सूत्र के मः (6/1) नः (1/1) धातोः (6/1) ये पदच्छेद हैं। म् च व् च म्वौ तयोः म्वोः यहां इतरेतरयोगद्वन्द्व है। मः धातु का विशेषण है अतः विशेषणत्व होने से तदन्तविधि में मान्त का धातु से यह अर्थ होता है। सूत्रार्थ है कि- मकार या वकार से परे मान्त धातु के स्थान पर न् आदेश होता है। मो नो धातोः इस सूत्र से मान्त धातु के स्थान पर नत्व का विधान पदान्त में है। किन्तु मकार या वकार परे होने पर भ् नकारादेश विधानार्थ म्वोश्च सूत्र में चकारपद प्रयोग है। अलोऽन्त्यस्य इस परिभाषा से यह नकारादेश अन्त्य अलः स्थान पर ही है अर्थात् मकार के स्थान पर होता है।

उदाहरण- जगन्वान।

सूत्रार्थ समन्वय- पूर्वोक्त प्रकार से जगम् वस् यहां वस् का वकार मकार से परे है। अतः प्रकृत सूत्र से जगम् यह मकारान्त धातु के अन्त्य मकार के स्थान पर नकारादेश जगन्वस् होता है। इसी तरह जग्मिवस्, जगन्वस् इन दोनों समुदायों के कृदन्तत्व होने से कृत्तद्धितसमासाश्च सूत्र से प्रातिपदिकसंज्ञा में सुप्रत्यय में मिदचोऽन्त्यात्परः इस परिभाषा के सहयोग से उगिदचां सर्वनामस्थाने से नुमागमे सान्तमहतः संयोगस्य इस उपधा से दीर्घ में जग्मिवान् स् स्, जगन्वान् स् स् होने पर हल्ङ्यादिलोपे संयोगान्तस्य लोपः से संयोगान्त के सकार का लोप होने पर जग्मिवान्, जगन्वान् ये दो रूप सिद्ध होते हैं।

[सूत्रम् सान्तमहतः संयोगस्य (6.4.10) = सान्तसंयोगस्य महतश्च यो नकारस्तस्योपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने।] अब शतृशानच् प्रकरण आरम्भ करते हैं-

28.4 लटः शतृशानच्वप्रथमासमानाधिकरणे॥ (3.2.124)

सूत्रार्थ- प्रथमान्त पद से भिन्न समानाधिकरण होने पर लट् के स्थान पर शतृ और शानच् होते हैं।

सूत्र व्याख्या- यह विधि सूत्र पदत्रयात्मक है। इस सूत्र से शतृ और शानच् प्रत्यय हते हैं। लटः (6/1) शतृशानचौ (1/2) अप्रथमासमानाधिकरणे (7/1) यह सूत्रगत पदच्छेद है। शता च शानच् च शतृशानचौ यहां इतरेतरयोगद्वन्द्व है। न प्रथमा अप्रथमा यहां नञ्तत्पुरुष है, पर्युदासप्रतिषेध है। सु औ जस् इन प्रत्ययों की प्रथमासंज्ञा वैयाकरणसम्प्रदाय में प्रसिद्ध है। प्रत्ययग्रहणे तदन्ता ग्राह्याः इस परिभाषा के अनुसार प्रथमा से प्रथमान्त का ग्रहण है। समान अधिकरण है जिसका वह समानाधिकरण है। अप्रथमया (अप्रथमान्तेन द्वितीयान्तादिना) समानाधिकरणः अप्रथमासमानाधिकरणः तस्मिन् अप्रथमासमानाधिकरणे (लटि सति) यहां तृतीया तत्पुरुष है, भाव में सप्तमी है। सूत्रार्थ है कि- अप्रथमासमानाधिकरण वाच्य में लट् के स्थान पर शतृ और शानच् आदेश होता है। द्वितीयान्तादि पद जिस अर्थ के (कर्तुः कर्मणः वा) वाचक होते हैं, धातुओं से विहित लट् भी यदि उसका ही वाचक होता है तो लट् अप्रथमा समानाधिकरण होता है। तब लट् के स्थान पर शतृ और शानच् आदेश होते हैं यही तात्पर्य है। यथा- पचन्तं चैत्रं

ध्यान दें:

पश्य इस उदाहरण में चैत्रम् यह द्वितीयान्त (अप्रथमान्त) पद जिस अधिकरण के वाचक है, पच्धातु से वर्तमानकाल में विहित लट् भी उसका ही वाचक है अतः लट् अप्रथमान्त के साथ समानाधिकरण है। अतः प्रकृत सूत्र से लट् के स्थान पर शतृ और शानच् आदेश होते हैं। लट् के स्थान पर विधीयमान शतृशानच् से कृत्संज्ञा और प्रत्ययंसज्ञा होती है। शतृप्रत्यय के ऋकार की उपदेशेऽजनुनासिक इत् से इत्संज्ञा, शकार की लशक्वतद्धिते से इत् होती है। अतः अत्-मात्र शेष रहता है। यहां ऋकार की इत्संज्ञाकरण उगित्कार्यार्थ है। शानच् के शकार की लशक्वतद्धिते से इत्संज्ञा होती है, चकार की तो हलन्त्यम् इसे होती है। यहां चित्करणं चितः से अन्तोदात्त स्वरार्थ है। तब आन ही शेष रहता है। शतृप्रत्यय लः परस्मैपदम् से परस्मैपदसंज्ञक होता है, शानचः तङानावात्मनेपदम् इससे आत्मनेपदसंज्ञा होती है। इसी तरह परस्मैपदिधातुओं से शतृप्रत्यय, आत्मनेपदिधातुओं से शानच् प्रत्यय होता है। दोनों ही प्रत्यय शित है अतः तिङ्शत्सार्वधातुकम् से सार्वधातुकसंज्ञक होते हैं। अतः उन प्रत्ययों से परे कर्तृवाच्यविवक्षा में धातु के कर्तरि शप् से शप्, दिवादिभ्यः श्यन् से श्यन् आदि विकरण प्रत्यय होते हैं। किन्तु कर्मवाच्य में धातु से सार्वधातुके यक् से यक्-विकरणप्रत्यय होता है। शतृप्रत्यय कर्ता में ही होता है। शानच् कर्ता और कर्म में होता है।

उदाहरण- (शतृप्रत्यय में) पचन्तम् चैत्रं पश्य। (शानच् प्रत्यय में) पचमानम् चैत्रं पश्य।

सूत्रार्थसमन्वय- (शतृ प्रत्यय में) पचन्तं चैत्रं पश्य। (चैत्रः पचति। तम् पश्य।)

डुपचष् पाके (भ्वादि. उभय. अनिट्) इस धातु से कर्तृवाच्य में वर्तमाने लट् से लट् के अनुबन्ध लोप में पच् ल् होता है। यहां लट् वाच्य वह ही है जो चैत्रम् अप्रथमान्त द्वितीयान्त से वाच्य है। अतः अप्रथमान्त समानाधिकरण लट् के स्थान पर प्रकृतसूत्र से शतृ आदेश के अनुबन्धलोप में पच् अत् होने पर शतृप्रत्यय के सार्वधातुक होने से कर्तरि शप् से शपि अनुबन्धलोप में पच् अ अत् होने पर अतो गुणे से पररूप एकादेश में पचत् समुदाय के कृदन्तत्व होने से कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिकसंज्ञा में कर्मत्वविवक्षा में अम् -विभक्ति से पचत् अम् होता है। तब उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः से नुमागम के अनुबन्धलोप में अपदान्तनकार के अनुस्वार में अनुस्वार का परसवर्ण पचन्तम् शतृप्रत्ययान्त रूप सिद्ध होता है। इसी तरह अन्यत्र भी होता है।

(शानच्प्रत्यये) पचमानम् चैत्रं पश्य। (चैत्रः पचते। तम् पश्य।)

डुपचष् पाके (भ्वादि. उभय. अनिट्) इस धातु से कर्तृवाच्य में वर्तमाने लट् से लटि अनुबन्ध लोप में पच् ल् होता है। यहां लट् वाच्य वह ही है जो चैत्रम् इस अप्रथमान्त द्वितीयान्त से वाच्य है। अतः अप्रथमान्त समानाधिकरण लट् के स्थान पर प्रकृतसूत्र से आत्मनेपदसंज्ञक शानच्प्रत्यय होता है। शतृप्रत्यय तो नहीं होता है क्योंकि डुपचष् पाके यहां धातु स्वरित है। अतः क्रियाफल के कर्तृगामित्व में स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले से पच्धातु आत्मनेपद होता है। तब वह आत्मनेपद होता है। शानच् के शित्त्व से सार्वधातुकसंज्ञा में कर्तरि शप् के शपि पच् अ आन=पच आन होने पर अग्रिम सूत्र आरम्भ करते हैं-

28.5 आने मुक्॥ (7.2.82)

सूत्रार्थ- अदन्त अङ्ग के बाद मुक् आगम होता है बाद में आन हो तो।

सूत्र व्याख्या- यह विधि सूत्र पदद्वयात्मक है। इस सूत्र से मुगागम होता है। आने (7/1) मुक् (1/1) ये सूत्रगत पदों का विभक्ति निर्देश है। अतो येयः इससे अनुवृत्त अत् का पञ्चम्यन्त अत् से षष्ठ्यन्त विपरिणाम होता है। अङ्गस्य (6/1) यह अधिकृत है। अतः अङ्ग का विशेषणम् है जिससे तदन्तविधि में अदन्त अङ्ग का यह अर्थलाभ है। सूत्रार्थ है कि अदन्त अङ्ग के बाद मुक्-आगम होता है बाद में आन् हो तो। मुक् का ककार और उकार इत्संज्ञक है हलन्त्यम् से यह उच्चारणार्थ है। मुगागम कित्त्व होने से आद्यन्तौ टकितौ से अदन्ताङ्ग का अन्त्यावयव होता है।

ध्यान दें:

उदाहरण- पचमानं चैत्रं पश्य।

सूत्रार्थ समन्वय- पूर्वोक्त प्रकार से पच आन इस स्थिति में अदन्ताङ्ग पच के मुगागम अनुबन्ध लोप में कित्त्व होने से आद्यन्तौ टकितौ इस परिभाषा से अदन्ताङ्ग के अन्त्यावयव में पचम् आन होकर पचमान समुदाय होता है। इस समुदाय के कृदन्त होने से कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिकसंज्ञा की द्वितीया एकवचन विवक्षा में अमि अमि पूर्वः से पूर्वरूप एकादेश में पचमानम् रूप सिद्ध होता है।

यहां विशेष- शतृप्रत्यय कर्तृवाच्य में ही होता है। कर्तृवाच्य में शानज भी होता है। किन्तु कर्मवाच्य में भावकर्मणोः से आत्मनेपदविधान होने से शानच् प्रत्यय ही होता है न कि शतृप्रत्यय। यथा पीडयन्तम् में कर्तृवाच्य होने से शतृप्रत्यय है। पीड्यमानम् यहां कर्मवाच्य होने से शानच्प्रत्यय में यक्-विकरण होता है कर्तृवाच्य में शानचः उदाहरण उक्त ही है। कहीं प्रथमा-सामानाधिकरण में भी शतृशानच् प्रत्यय होते हैं लटः शतृशानचावाप्रथमासमानाधिकरणे इस सूत्र में लडिति अनुवर्तमान में पुनः लट् का ग्रहण से। इससे अस्ति द्विजः यहां शतृप्रत्यय में सन् द्विजः यह प्रयोग है। विद्यते ब्राह्मणः यहां शानच्प्रत्यय में विद्यमानः ब्राह्मणः यह प्रयोग है।

अदादिगण के परस्मैपदि से विद् ज्ञाने इस धातु से कर्तृवाच्य में विहित लट् के स्थान पर शतृप्रत्यय के अनुबन्धलोप में विद् अत् होने पर शतृप्रत्यय के सार्वधातुकत्व होने से कर्तरि शप् से शप् में अदिप्रभृतिभ्यः शपः से शप् का लोप होने से विद् अत् इस स्थिति में यह सूत्र आरम्भ करते हैं-

28.6 विदेः शतुर्वसुः॥ (7.1.36)

सूत्रार्थ- विद् धातु के बाद शतृ को विकल्प से वसु आदेश होता है।

सूत्र व्याख्या- यह विधिसूत्र पदत्रयात्मक है। इस सूत्र से वसु आदेश होता है। विदेः (5/1) शतुः (6/1) वसुः (1/1) ये सूत्रगत पदच्छेद है। तुह्योस्तातङाशिष्यन्यतरस्याम् इससे अन्यतरस्याम् (7/1) इस अव्यय की अनुवृति होती है। धातुनिर्देश के लिए अदादिगणीय-विद्-धातु से इक्ष्तपौ धातुनिर्देशे से इक् प्रत्यय में विदिः यह प्रथमा एकवचनान्त, तस्मात् विदेः यह पञ्चम्येकवचनान्त है। सूत्रार्थ है कि विद् धातु से विहित लट् के स्थान पर विद्यमान शतृप्रत्यय के स्थान पर वसु आदेश विकल्प से होता है। वसु का उकार इत्संज्ञक है अनुनासिक होने से। यहां सूत्र में अदादिगणीय विद्-धातु से ही गृहण होता है। वसोः अनेकालत्वात् अनेकाल्शित्सर्वस्य इस परिभाषा से सर्वादेश होता है।

उदाहरण- विदन्। विद्वान्।

सूत्रार्थ समन्वय- पूर्वोक्त प्रकार से विद् अत् होने पर प्रकृत सूत्र से (शतुः) अत् स्थान पर वसु यह सर्वादेश अनुबन्धलोप में विद्वस् समुदाय होता है। तब इस समुदाय के कृदन्त होने से कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिकसंज्ञा में सौ नुमि दीर्घे सुलोपादिकार्य में विद्वान् रूप सिद्ध होता है।

स्त्रीलिङ्ग में विद्वस् शब्द से उगितश्च इससे ङीप् में वसोः सम्प्रसारणम् से वस् के वकार के सम्प्रसारण उकार षत्व में विदुषी होता है। इससे ङ्याबन्त होने से सुविभक्तौ सोः हल्ङ्यादिलोप में विदुषी रूप होता है।

वसु आदेश भावपक्ष में शप् के लोप् होने से विदत् समुदाय के कृदन्त होने से कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिकसंज्ञा में सौ नुमि सुलोपादिकार्य में विदन् रूप सिद्ध होता है। शतृप्रत्यय के अभावपक्ष में वेत्ति से तिङन्त पद प्रयोग होता है।

अब शतृशानचोः सत्संज्ञा विधायक सूत्र प्रारम्भ करते हैं-

ध्यान दें:

28.7 तौ सत्॥ (3.2.127)

सूत्रार्थ- शतृ और शानय को सत् कहते हैं।

सूत्र व्याख्या- यह संज्ञा सूत्र पदद्वयात्मक है। इस सूत्र से सत्संज्ञा होती है। तौ (1/2) सत् (1/1) यह सूत्रगत पदों का विभक्तिनिर्देश है। लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरण में पूर्वसूत्रोक्त शतृशानचौ से स्वरूप निर्देश के लिए तौ पद इस सूत्र में उपात्त है। यद्यपि अनवृत्ति से शतृशानचौ इससे लाभ होता है परन्तु तौ का ग्रहण उपाधि रहित शुद्ध शतृशानचौ इसका ग्रहण अर्थ है। अन्यथा वर्तमानकालिक लट् आदेश से शतृ शानच की सत्संज्ञा होती है, भविष्यतकालिकडादेश से शतृशानच् की सत्संज्ञा नहीं होती है। सूत्रार्थ है कि- वे शतृ और शानय सत्संज्ञक हैं। सत्संज्ञा के प्रयोजन को पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्य समानाधि करणेन, लृटः सद्वा आदि सूत्रों से जानते हैं।

लृट् के स्थान पर भी शतृ और शानय आदेश से विधानार्थ यह सूत्र आरम्भ करते हैं-

28.8 ॥ लृटः सद्वा॥ (3.3.14)

सूत्रार्थ- लृट् स्थान पर विकल्प से सत्संज्ञक शतृ और शानच् होते हैं।

सूत्र व्याख्या- यह विधिसूत्र पदत्रयात्मक है। इस सूत्र से विकल्प से शतृ और शानच् का विधान होता हैं। लृटः (6/1) सद् (1/1) वा (अव्यय) यह सूत्रगत पदच्छेद है। लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे इस पूर्वसूत्र से वर्तमानकाल में लट् के स्थान पर शतृ और शानच् का विधान किया गया है। यहां तो भविष्यत्काल में लृट् के स्थान पर शतृ और शानच् का विधान करते हैं।

उदाहरण- करिष्यन्तम् करिष्यमाणम् वा देवदत्तम् पश्य।

सूत्रार्थ समन्वय- यहां कृधातु की कर्तृत्व विवक्षा में भविष्यत्सामान्य में लृट् शेषे च से लृटि स्यतासी लृलुटोः से स्यप्रत्यय में और उसकी आर्धधातुक संज्ञा में ऋद्धनोः स्ये से इडागम में सार्वधतुकार्धधतुकयोः सूत्र से गुण में आदेशप्रत्यययोः से षत्व में करिष्य ल् होता है। तब प्रकृत सूत्र से लृट् के स्थान पर शतृप्रत्यय के अनुबन्धलोप होने पर करिष्य अत् होने पर अतो गुणे से पररूप एकादेश में करिष्यत् समुदाय होता है। तब इस समुदाय के कृदन्त होने से कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिकसंज्ञा में द्वितीया एकवचन में अमि उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः से नुम् के नकार के अनुस्वार में अनुस्वार का परसवर्ण होने पर करिष्यन्तम् यह रूप सिद्ध होता है। कृधातु ञित्त्व होने से उभयपदी है। अतः क्रियाफल के कर्तृगामित्व में कृधातु से विहित लृट् स्थान पर शतृ नहीं होता है अपि तु आत्मनेपदसंज्ञक शानजादेश होता है। तब आने मुक् से मुक् के नकार का णत्व होने पर करिष्यमाणम् रूप भी होता है।

[सूत्रम् ऋद्धनोः स्ये (7.2.70) = ऋतः हन्तेश्च स्यस्य इट् स्यात्।]

पाठगत प्रश्न-1

1. कानच्प्रत्ययान्त का उदाहरण बताएँ?
2. क्वसुप्रत्ययान्त का उदाहरण बताएँ?
3. कानच्क्वसुप्रत्ययौ छान्दसौ न वा?
4. म्वोश्च का क्या अर्थ है?
5. लट् के स्थान पर शतृशानच्प्रत्यय विधायक सूत्रम् क्या है?

ध्यान दें:

6. पचमानम् इसमें मुगागम किससे होता है?
7. शतृप्रत्यय परस्मैपदात्मनेपदस्थलों में कहां होता है?
8. शानच्प्रत्यय परस्मैपदात्मनेपदस्थलों में कहां होता है?
9. विदे: शतुर्वसु: इसका उदाहरण क्या है?
10. सत्संज्ञक क्या है?
11. लृट के स्थान पर विकल्प से सत्संज्ञक शतृ और शानच् किससे होते हैं?
12. कर्म में शतृप्रत्यय होता है क्या
13. कर्म में शानच् प्रत्यय होता है क्या?

अब ताच्छीलिककृत्प्रत्यय विधायक सूत्र आरम्भ करते हैं-

28.9 तृन्॥ (3.2.136)

सूत्रार्थ- तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारी में कर्तृ अर्थ में धातु से तृन् प्रत्यय होता है।

सूत्र व्याख्या- यह विधिसूत्र एकपदात्मक है। इस सूत्र से तृन्प्रत्यय होता है। तृन् यह प्रथमा एकवचनान्त है। प्रत्यय: (1/1), पर: (1/1), धातो: (5/1) ये तीन अधिकृत हैं। कृत् तिङ् कर्तरि कृत् ये दोनों सूत्र ही अधिकृत है। आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु यह सूत्र अधिकृत है। इससे तच्छीलतद्धर्म तत्साधुकारी इसमें सप्तमी बहुवचनान्त पद प्राप्त है। वह (धात्वर्थ) शील=स्वभाव है जिसका वह तच्छील:। वह (धात्वर्थ) धर्म:=आचार=कुलाचार जिसका है वह धर्म। साधु (सम्यक् प्रकार से) करता है वह साधुकारी। उसका (धात्वर्थ का) साधुकारी तत्साधुकारी। तच्छील: च तद्धर्मा च तत्साधुकारी च इनमें इतरेतरयोगद्वन्द्व है तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिण: तेषु तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु। तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारी कर्तृ अर्थ में धातु से कृत्संज्ञक तृन् प्रत्यय परे होता है यह सूत्रार्थ है। इस सूत्र से विहित प्रत्यय कृत्संज्ञक होता है। तृन् का नकार हलन्त्यम् से इत्संज्ञक हैं। अत: तृ ही शेष रहता है। नकारानुबन्ध आद्युदात्तस्वरार्थ है। तृच् यहां भी तृ ही शेष रहता है। अत: तृन् तृच् इन दोनों में ही समान रूप से भी स्वर में भेद ही है।

उदाहरण- कर्ता कटान।

सूत्रार्थ समन्वय- कृधातु से तच्छीलकर्तृवाच्य में आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारी इस अधिकार में पठित तृन् योग से तृन्प्रत्यय के अनुबन्धलोप में कृ तृ होने पर आर्धधातुकं शेष: सूत्र से तृ की आर्धधातु संज्ञा से सार्वधातुकार्धधातुकयो: इस सूत्र से गुण अकार में उरण् रपर: इस सूत्र से रपरत्व में कर्तृ यह होता है। तृन् आर्धधातुक होने से आर्धधातुकस्येड्वलादे: इस सूत्र से इडागम की प्राप्ति में एकाच् उपदेशेऽनुदात्तात् से उसका निषेध है। तब कर्तृ इस समुदाय से कृदन्त होने से कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिकसंज्ञा में सुप्रत्यये ऋदुशनस्पुरुदंसोनेहसां च इससे से अनङि अप्तृन्तृच्स्व सृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृ प्रशास्तृणाम् इससे उपधादीर्घ हल्ङ्यादिलोप में न लोप: प्रातिपदिकान्तस्य इससे पदान्त नकार के लोप में कर्ता यह रूप सिद्ध होता है। तृन्नन्त कृदन्त शब्द योग से कर्तृकर्मणो: कृति इस सूत्र से प्राप्त षष्ठी न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् से निषेध में कर्मणि द्वितीया से कटशब्द से द्वितीया विभक्ति होता है।

तृजन्ततृन्नन्त का विशेष- कर्ता कटानाम् इस वाक्य में कर्तृशब्द तृजन्त हैं। कर्ता कटान् इस वाक्य में कर्तृशब्द तृन्नन्त हैं। तृजन्त सामान्यकर्तृवाचक है, तृन्नन्त तच्छीलादिकर्तृ वाचक है। तृजन्त शब्द योग से कर्म में षष्ठी है। तृन्नन्तशब्दयोग से कर्म में द्वितीया है। स्वर भेद में भी है यह उक्त ही है।

ध्यान दें:

28.10 सनाशंसभिक्ष उः॥ (3.2.168)

सूत्रार्थ- सनाशंसभिक्ष में उप्रत्यय होता है।

सूत्र व्याख्या- यह विधिसूत्र पदद्वयात्मक है। इस सूत्र से उप्रत्यय होता है। सनाशंसभिक्षः (5/1) उः (1/1) यह सूत्रगत पदच्छेद है। प्रत्ययः (1/1), परः (1/1), धातोः (5/1) ये तीन अधिकृत हैं। आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु यह अधिकार आता है। इससे तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारी में सप्तमी बहुवचनान्त पद प्राप्त होता है। सन् च आशंसश्च भिक्ष् च तेषां समाहारद्वन्द्व में सनाशंसभिक्ष्, तस्मात् सनाशंसभिक्षः। आशंस यहां अन्त्य अकार का उच्चारणार्थ है। यहां सन् इस धातु का न ग्रहण होने पर भी प्रत्यय का ग्रहण होता है। तब प्रत्यय ग्रहण में तदन्ता ग्राह्याः इस नियम से सन्प्रत्ययान्त चिकीर्ष इत्यादि धातु का ग्रहण है। आशंस् इससे आङ्पूर्व होने से शसि इच्छायाम् धातु का ग्रहण अभीष्ट है। सूत्रार्थ है कि सन्प्रत्ययान्तधातु, आङ्पूर्वकशसिधातु और भिक्ष्-धातु से तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारी में कर्तृ में कृत्संज्ञक उप्रत्यय होता है। इस सूत्र से विहित प्रत्यय कृत्संज्ञक होता है।

उदाहरण- चिकीर्षुः। आशंसुः। भिक्षुः।

सूत्रार्थ समन्वय- चिकीर्षुः- कृधातु से सन् प्रक्रिया में चिकीर्ष होने पर तच्छीलादिकर्तृवाच्य में प्रकृतसूत्र से उप्रत्यय में उकार का आर्धधातुकं शेषः से आर्धधातुकसंज्ञा में अतो लोपः से षकारोत्तरवर्तिन अकार का लोप होने पर चिकीर्षु होता है। तब इस समुदाय के कृदन्त होने से कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिक संज्ञा विभक्तिकार्य में चिकीर्षुः रूप सिद्ध होता है।

आङ्पूर्व होने से शसि इच्छायाम् धातु से इदित्त्व नुम् अपदान्तनकार के अनुस्वारादेश में आशंस् धातु से तच्छीलादि कर्तृवाच्य में प्रकृतसूत्र से उप्रत्यय में कृदन्त होने से प्रातिपदिक संज्ञा स्वादिकार्य में आशंसुः यह रूप सिद्ध होता है। इसी तरह भिक्ष भिक्षायामलाभे च धातु से प्रकृतसूत्र से उप्रत्यय में कृदन्तत्व होने से प्रातिपदिकादि कार्य में भिक्षुः रूप सिद्ध होता है।

पृच्छति तच्छीलः इति प्राट्। प्रच्छ्धातु से क्विब्बचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणं च इस वार्तिक से क्विपि धातु के अकार के दीर्घ में क्विप् के सर्वापहारलोप में प्राच्छ् होने पर प्राप्त सम्प्रसारण के ग्रहिज्यादिसूत्र से निषेध में अग्रिम सूत्र आरम्भ करते हैं-

28.11 च्छ्वोः शूडनुनासिके च॥ (6.4.19)

सूत्रार्थ- च्छ् को श् और व् को ऊठ् आदेश होते हैं, बाद में अनुनासिक, क्वि और झलादि कित् ङित् प्रत्यय हो तो।

सूत्र व्याख्या- यह विधिसूत्र पदचतुष्टयात्मक है। इस सूत्र से श् -ऊठ् इत्यादेश होते हैं। च्छ्वोः (6/2) शूड् (1/1) अनुनासिके (7/1) च (अव्यय) ये सूत्रगत पदच्छेद हैं। अङ्गस्य (6.1) यह अधिकृत है। अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति से क्विझलोः (7/2), क्ङिति (7/1) ये दो पद अनुवर्तित है। अङ्गस्य यह अधिकृत है। च्छ् च व् च् च्छ्वौ तयोः च्छ्वोः यहां इतरेतरयोग द्वन्द्व हैं। च्छ् यह तुक्+छ् का बोधक है। श् च ऊठ् च तयोः समाहारः शूड् यहां समाहारद्वन्द्व हैं। अङ्गस्य इस अधिकार बल से प्रत्यय में पद आक्षिप्त होते हैं। आक्षिप्तस्य यह प्रत्यय का विशेषण है अनुनासिक में। अतः यस्मिन विधि स्तदादावल्ग्रहणे इस परिभाषा से तदादिविधि में अनुनासिक आदि प्रत्यय में यह अर्थलाभ है। क्विश्च झल् च् क्विझलौ तयोः क्विझलोः यहां इतरेतरयोगद्वन्द्व हैं। यहां झलि इस अंश से क्ङिति इस अंश के साथ सम्बन्ध है। तब तदादिविधि से झलादौ क्ङिति यह अर्थलाभ है। अनुनासिकादि प्रत्यय के परे अथवा क्व

ध्यान दें:

के परे अथवा झलादि क्ङिति प्रत्यय से परे च्छ स्थान में श् इत्यादेश होता है। वकार के स्थान पर ऊठ् आदेश होता है यह सूत्र का सम्पूर्णार्थ है।

उदाहरण में सूत्रार्थ समन्वय- पूर्वोक्त प्रकार से प्राच्छ् यहां क्विप् प्रत्यय के सर्वापहारलोप होने पर भी प्रत्ययलक्षण से उसका लाभ होने से क्विप्प्रत्यय के परे होने पर प्रकृतसूत्र से च्छ् इस स्थान पर शकारादेश में प्राश् होता है। तब इस समुदाय के कृदन्तत्व होने से कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिकसंज्ञा में प्रथमा एकवचन के सुप्रत्यय में हल्ङ्यादि लोप में व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः से शकार के षकार में झलां जशोऽन्ते से षकार के डकार में वावसाने से विकल्प से चर्त्व टकार में प्राट्, प्राड् ये दो रूप होते हैं। यह क्वौ परतः का उदाहरण है।

विच्छ्-धातु से यज-याच-यत-विच्छ-प्रच्छ-रक्षो नङ् से नङ्प्रत्यय होता है। वह अनुनासिकादि प्रत्यय विच्छ्धातु से परे भी है। अतः च्छ के स्थान पर शकारादेश होता है। इससे विश् न होने पर कृदन्तत्व होने से प्रातिपदिकसंज्ञा में स्वादिकार्य से विश्नः रूप सिद्ध होता है। प्रश्नादि कृदन्तों का सविस्तार प्रक्रिया उत्तरकृदन्त से जानते हैं। यह अनुनासिकादि प्रत्यय से परे का उदाहरण है।

प्रच्छ्धातु से कर्म में निष्ठाक्तप्रत्यय में ग्रहिज्यादि सूत्र से सम्प्रसारण में सम्प्रसारणाच्च से पूर्वरूप एकादेश में पृच्छ् त होता है। यहां झलादिकित्प्रत्यय परे है, अतः प्रकृतसूत्र से च्छ् के स्थान पर शकारादेश में पृश् त होने पर व्रश्चभ्रस्जादि सूत्र से शकार के षकार में ष्टुना ष्टुः से तकार के टकार में पृष्ट होता है। तब इस समुदाय के कृदन्त होने से कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिकसंज्ञा में विशेष्यनिघ्न से सामान्य में नपुंसकम् इस नियम से नपुंसक में वर्तमान होने से ततः सौ सोरमि पूर्वरूप में पृष्टम् रूपं सिद्ध होता है यह झलादिकित्प्रत्यय से परे का उदाहरण है।

सिव्-धातु के बाहुलक से औणादिक नप्रत्यय में सिव् न होता है। यहां अनुनासिकादि प्रत्यय परे हैं। अतः प्रकृतसूत्र से धातु के वकार के स्थान पर ऊठ् इत्यादेश में यणि स्यू न होने पर नप्रत्यय का आर्धधातुक होने से सार्वधातुकार्धधातुकयोः से ऊकार के गुण ओकार वर्णसम्मेलन में स्योन होता है। तब इस समुदाय के कृदन्त होने से कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिकसंज्ञा में स्वादिकार्य से स्योनः यह रूप सिद्ध होता है।

28.12 दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे॥ (3.2.182)

सूत्रार्थ- इन धातुओं से करण अर्थ में ष्ट्रन् प्रत्यय होता है- दान्, नी, शस्, यु, युज्, स्तु, तुद्, सि, सिच्, मिह, पत्, दश् और नह।

सूत्र व्याख्या- यह विधिसूत्र पदद्वयात्मक है। इस सूत्र से ष्ट्रन्प्रत्यय होता है। दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः (5/1) करणे (7/1) ये सूत्रगत पदों के विभक्ति निर्देश हैं। प्रत्ययः (1/1), परः (1/1), धातोः (5/1) ये तीन अधिकृत हैं। दाप् च नीश्च शसश्च युश्च युजश्च स्तुश्च तुदश्च सिश्च सिचश्च मिहश्च पतश्च दशश्च नह् च तेषां समाहारद्वन्द्वे दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनह् तस्मात् दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः। धः कर्मणि ष्ट्रन् इससे ष्ट्रन् (1/1) की अनुवृत्ति होती है। शस्, युज्, तुद्, सिच्, मिह्, पत्, दश् इनका अकार उच्चारणार्थ है। दाप् + नी यहां पकार की जश्त्व बकार में यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा इससे अनुनासिक मकार में दाम्नी यह निर्देश होता है। दाप्, नी, शस्, यु, युज्, स्तु, तुद्, सि, सिच्, मिह्, पत्, दश्, नह् इन त्रयोदश धातुओं से परे ष्ट्रन्प्रत्यय होता है, करणार्थ में यह सूत्रार्थ है। क्रियासिद्धि में प्रकृष्टोपकारक करण होता है। इसका विवरण कारक प्रकरण के पाठों में प्राप्त होता है। इस सूत्र से विहित प्रत्यय कृदतिङ् से कृत्संज्ञक होता है। वह प्रत्यय प्रकृतसूत्र से करण में होता है। ष्ट्रन्प्रत्यय के नकार का हलन्त्यम् से

ध्यान दें:

इत्संज्ञा, षकार की षः प्रत्ययस्य से इत् होती है। निमित्त षकार के अपाय में नैमित्तिक टकार भी अपाय होता है, निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः इस परिभाषा के बल से। इस प्रकार ष्ट्रनः त्र-मात्र अवशेष रहता है। ष्ट्रन् का नकारानुबन्ध आद्युदात्त स्वरार्थ है। षकारानुबन्ध स्त्रीत्वविवक्षा में षिद्गौरादिभ्यश्च से ङीब्विधनार्थ है।

उदाहरण में सूत्रार्थ समन्वय- क्रमश उदाहरण प्रस्तुत करते हैं-

1. दान्त्यनेन इति दात्रम्। दाप् लवने (अदादि. परस्मै. अनिट्) इस धातु से करणत्ववाच्य में प्रकृत सूत्र से ष्ट्रन् अनुबन्धलोप में दा त्र होने पर इण् निषेध में दात्र होता है। तब इस समुदाय के कृदन्त होने से कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिक संज्ञा में सुविभक्ति से नपुसंकलिङ्ग सु को अमादेश होकर अमि पूर्वः से पूर्वरूप एकादेश में दात्रम् रूप सिद्ध होता है।

2. नीयते अनेन इति नेत्रम्। णीञ् प्रापणे (भ्वादि. उभय. अनिट्) इस धातु से करणत्ववाच्य में प्रकृतसूत्र से ष्ट्रन् अनुबन्धलोप में नी त्र होने पर धातु से अनुदात्त होने पर इट् नहीं होता है किन्तु त्र के सार्वधातुक होने से सार्वधातुकार्धधातुकयोः से ईकार के गुण एकार में नेत्र होता है। तब इस समुदाय के कृदन्त होने से कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिकसंज्ञा में सुविभक्ति नपुसंकलिङ्ग में सु को अमादेश होकर अमि पूर्वः से पूर्वरूप एकादेश में नेत्रम् रूप सिद्ध होता है।

3. शसति (हिनस्ति) अनेन इति शस्त्रम। शसु हिंसायाम् (भ्वादि. परस्मै. सेट्) इस धातु से करणत्व वाच्य में प्रकृतसूत्र से ष्ट्रन् के अनुबन्धलोप में शस् त्र होने पर धातु से विहित त्र के आर्धधातुक होने से आर्धधातुकस्येड्वलादेः से इट् प्राप्ति में उसके निषेधार्थ यह सूत्र आरम्भ करते हैं-

28.13 तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च॥ (7.2.9)

सूत्रार्थ- ति, तु, त्र, त, थ, सि, सु, सर, क, स, इन दश कृत्प्रत्ययों को इट् नहीं होता है।

सूत्र व्याख्या- यह विधिसूत्र पदद्वयात्मक है। इस सूत्र से इण् निषेध होता है। तितुत्रतथसिसुसरकसेषु (7/3) च (अव्यय) ये सूत्रगतपदों का विभक्ति निर्देश है। नेड्वशि कृति इससे अनुवृत्त कृति से कृत्सु इति सप्तमी बहुवचनान्त से विपरिणाम होता है। तिश्च तुश्च त्रश्च तश्च थश्च सिश्च सुश्च सश्च रश्च कश्च सश्च इनमें इतरेतरयोगद्वन्द्व में तितुत्रतथसिसुसरकसाः, तेषु तितुत्रतथसिसुसरकसेषु। सूत्रार्थ है कि, ति, तु, त्र, त, थ, सि, सु, सर, क, स इन कृत्प्रत्ययों में इडागम नहीं होता है। सेट्धातुस्थल में प्राप्त इट् के निषेधार्थ यह योग है। अनिट्धातुस्थल में प्राप्त इट् के एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् से निषेधः सिद्ध ही है। अष्टाध्यायी में तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च इससे पूर्वसूत्र है नेड्वशि कृति (7.2.8)। उसके योग से वशादि कृत्प्रत्ययों से इण् निषेध किया जाता है। इससे तो तितुत्रादि दश प्रत्ययों से इण्निषेध किया जाता है। उपरि उक्त दश प्रत्यय आर्धधातुक होने से आर्धधातुकस्येड्वलादेः से इडागम प्राप्त होता है, इससे यह निषेध होता है।

उदाहरण सूत्रार्थसमन्वय- पूर्वोक्त प्रकार से शस् त्र यहां इडागम प्राप्त होने में प्रकृत सूत्र से उसका निषेध होता है। इससे शस्त्र होता है। तब इस समुदाय के कृदन्त होने से कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिकसंज्ञा में सुविभक्ति से नपुसंकलिङ्ग मं सु को अमादेश से अमि पूर्वः से पूर्वरूप एकादेश में शस्त्रम् रूप सिद्ध होता है।

सुत्रोक्त तिशब्द से स्त्रियां क्तिन् में क्तिन् ग्रहण है। इससे सितनिगमिमसिसच्यविधाञ्क्रुशिभ्यस्तुन् से तुन् का ग्रहण है। त से उणादि-तप्रत्यय का ग्रहण है। थ से उणादि-क्थप्रत्यय का ग्रहण है। सि से-उणादि -क्सि प्रत्यय का ग्रहण है। सु इससे उणादि-क्सुप्रत्यय का ग्रहण है। सर इससे उणादि-सरन्प्रत्यय

ध्यान दें:

का ग्रहण है। क स इनसे उणादिस्थ क और स प्रत्यय का ग्रहरण है।

क्रमशः इस सूत्र के उदाहरण देते हैं-

1. ति - तन्तिः।
2. तु - सक्तुः।
3. त्र - शस्त्रम् यह ऊपर उक्त ही है।
4. त - हस्तः, लोतः, पोतः।
5. थ - काष्ठम्, कुष्ठम्।
6. सि - कुक्षिः।
7. सु - इक्षुः।
8. सर - अक्षरम्।
9. क - शल्कः (छिलका)।
10. स - वत्सः।

अब पूर्व सूत्र के अवशिष्ट उदाहरण प्रक्रिया सहयोग से आलोचित किए जाते हैं-

4. योत्रम्- युवन्ति अनेन इति योत्रम्। यु मिश्रणामिश्रणयोः (अदादि. परस्मै. सेट्) से धातु के करणत्व वाच्य में प्रकृतसूत्र से ष्ट्रन् अनुबन्धलोप में यु त्र होने पर त्र के आर्धधातुक होने से आर्धधातुकस्येड्वलादेः इससे इट् प्राप्ति में तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च इस सूत्र से उसका निषेध होता है। तब आर्धधातुकगुण में यो त्र होता है। तब इस समुदाय के कृदन्त होने से कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिकसंज्ञा में सुविभक्ति नपुसंकलिङ्ग सु को अमादेश होकर अमि पूर्वः से पूर्वरूप एकादेश में योत्रम् रूप सिद्ध होता है।
5. योक्त्रम्- युञ्जन्ति अनेन इति योक्त्रम्। युजिर् योगे (रुधादि. उभय.) इस धातु से करणत्ववाच्य में प्रकृतसूत्र से ष्ट्रन् अनुबन्धलोप में युज् त्र होने पर एकाच उपदेशेऽनुदात्त सूत्र से वलादिलक्षण के इडागम के निषेध में लघूपधागुण में चोः कुः इससे जकार के गकार में खरि च से चर्त्व से गकार के ककार में योक्त होता है। तब इस समुदाय के कृदन्त होने से कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिकसंज्ञा में सुविभक्ति नपुसंकलिङ्ग मं सु को अमादेश होकर अमि पूर्वः इससे पूर्वरूप एकादेश में योक्त्रम् रूप सिद्ध होता है।
6. स्तोत्रम्- स्तुवन्ति अनेन इति स्तोत्रम्। स्तु (ष्टुञ् स्तुतौ, अदादि. उभय. अनिट्) इस धातु से करणत्ववाच्य में प्रकृतसूत्र से ष्ट्रन् अनुबन्धलोप में स्तु त्र होने पर एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् सूत्र से वलादिलक्षण इडागम के निषेध में आर्धधातुकगुण में स्तोत्र होता है। तब इस समुदाय के कृदन्त होने से कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिकसंज्ञा में सुविभक्ति नपुसंकलिङ्ग में सु को अमादेश होकर अमि पूर्वः से पूर्वरूप एकादेश में स्तोत्रम् रूप सिद्ध होता है।
7. तुदन्ति अनेन इति तोत्त्रम्। तुद व्यथने (तनादि. उभय. अनिट्) इस धातु से करणत्ववाच्य में प्रकृतसूत्र से ष्ट्रन् अनुबन्धलोप में तुद् त्र होने पर एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् सूत्र से वलादिलक्षण के इडागम का निषेध में लघूपधागुण में दकार के चर्त्व के तकार में तोत्त्र होता है। तब इस समुदाय के कृदन्त होने से कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिकसंज्ञा में सुविभक्ति नपुसंकलिङ्ग में सु को अमादेश होकर अमि पूर्वः से पूर्वरूप एकादेश में तोत्त्रम् रूप सिद्ध होता है।

ध्यान दें:

8. सेत्रम्- सिन्वन्ति अनेन इति सेत्रम्। सि (षिञ् बन्धने, स्वादि) इस धातु से करणत्ववाच्य में प्रकृतसूत्र से ष्ट्रन् अनुबन्धलोप में सि त्र होने पर एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् सूत्र से वलादिलक्षण के इडागम के निषेध में आर्धधातुकगुण में सेत्र होता है। ततः अस्य समुदायस्य कृदन्तत्वात् कृत्तद्धितसमासाश्च इत्यनेन प्रातिपदिकसंज्ञायां सुविभक्तौ नपुसंकलिङ्गे सोरमादेशे अमि पूर्वः इति पूर्वरूप एकादेश सेक्त्रम् इति रूपं सिध्यति।

9. सेक्त्रम् - सिञ्चन्ति अनेन इति सेक्त्रम्। सिच् (षिच क्षरणे, तुदादि. उभय. अनिट्) धातु से करणत्व वाच्य में प्रकृतसूत्र से ष्ट्रन् अनुबन्धलोप में सिच् त्र होने पर एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् सूत्र से वलादिलक्षण इडागम के निषेध में लघूपधगुण में चोः कुः से चकार के कुत्व ककार में सेक्त्र होता है। तब इस समुदाय के कृदन्त होने से कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिकसंज्ञा में सुविभक्ति नपुसंकलिङ्ग सु को अमादेश होकर अमि पूर्वः पूर्वरूप एकादेश में सेक्त्रम् रूप सिद्ध होता है।

10. मेढ्रम्- मेहन्ति अनेन इति मेढ्रम्। मिह सेचने (भ्वादि. परस्मै. अनिट्) इस धातु से करणत्व वाच्य में प्रकृतसूत्र से ष्ट्रन् अनुबन्धलोप में मिह त्र होने पर एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् सूत्र से वलादिलक्षण के इडागम के निषेध में लघूपधगुण में हो ढः से हकार के ढकार में झषस्तथोर्धोऽधः से तकार के धकार में ष्टुना ष्टुः से धकार के ढकार में ढो ढे लोपः से पूर्वढकारलोप में मेढ्र होता है। तब इस समुदाय के कृदन्त होने से कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिकसंज्ञा में सुविभक्ति नपुसंकलिङ्ग में सु को अमादेश होकर अमि पूर्वः से पूर्वरूप एकादेश में मेढ्रम् रूप सिद्ध होता है।

11. पत्रम्-पतन्ति (गच्छन्ति) अनेन इति पत्त्रम्। पतृ गतौ (भ्वादि. परस्मै. सेट्) इस धातु से करणत्व वाच्य में प्रकृतसूत्र से ष्ट्रन् अनुबन्धलोप में पत् त्र होने पर तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च सूत्र से वलादिलक्षण इडागम के निषेध में पत्त्रम् होता है। तब इस समुदाय के कृदन्त होने से कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिकसंज्ञा में सुविभक्ति नपुसंकलिङ्ग सु को अमादेश होकर अमि पूर्वः पूर्वरूप एकादेश में पत्त्रम् रूप सिद्ध होता है।

12. दंष्ट्रा- दशन्ति अनया इति दंष्ट्रा। दंश दशने (भ्वादि. परस्मै. अनिट्) इस धातु से करणत्व वाच्य में प्रकृतसूत्र से ष्ट्रन् अनुबन्धलोप में दंश् त्र होने पर एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् सूत्र से वलादिलक्षण के इडागम के निषेध में लघूपधागुण में व्रश्चादिसूत्र से शकार के षकार में ष्टुना ष्टुः से ष्टुत्व तकार के टकार में दंष् ट्र होता है। तब स्त्रीत्वविवक्षा में ष्ट्रन् षित्त्व से षिद्गौरादिभ्यश्च से ङीप् प्राप्त है परन्तु अजादिगण में दंष्ट्रशब्द के पाठ से अजाद्यतष्टाप् से टाप् के अनुबन्धलोप में सवर्णदीर्घ में दंष्ट्रा होता है। तब इस समुदाय के कृदन्त होने से कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिक संज्ञा में सुविभक्ति से स् के हल्ङ्यादिलोप में दंष्ट्रा रूप सिद्ध है।

13. नद्ध्री- नह्यते अनेन इति नद्ध्री। नह् (णह बन्धने, दिवादि. उभय. अनिट्) धातु से करणत्व वाच्य में प्रकृतसूत्र से ष्ट्रन् अनुबन्धलोप में नह् त्र होने पर एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् इस सूत्र से वलादिलक्षण इडागम के निषेध में हो ढः प्राप्त ढत्व बाधित होकर नहो धः से हकार के धकार में झषस्तथोर्धोऽधः से तकार के धकारादेश में झलां जश्झशि इससे पूर्वधकार के दकार में नद्ध होने पर ष्ट्रन् का षित्त्व होने से स्त्रीत्वविवक्षा में षिद्गौरादिभ्यश्च से ङीप् के अनुबन्धलोप में नद्ध होने पर ईकार के पूर्व भसंज्ञक अकार के लोप में सुविभक्ति नद्ध्री रूप सिद्ध होता है।

पाठगत प्रश्न-2

14. तृन् का क्या अर्थ है?

15. तृन्प्रत्ययान्त का उदाहरण लिखिए?

ध्यान दें:

16. चिकीर्षुः यहां कौन-सा और किससे कृत्प्रत्यय है?
17. तृजन्त शब्द योग से कौन-सी विभक्ति है?
18. तृन्नन्त शब्द योग से कौन-सी विभक्ति है?
19. च्छ्वोः शूडनुनासिके च इसका क्या अर्थ है?
20. दाम्नी इत्यादि सूत्र को पूरा कीजिए?
21. शस्त्रम् इसमें इण् निषेध किससे है?
22. पृष्टम् यहां च्छ् के स्थान पर शकारादेश विधायक सूत्र लिखिए।
23. दाम्न्यादिसूत्र से कौन-सा प्रत्यय किस अर्थ में हैं?

पाठ सार

इस तृतीय पाठ में कानच्, क्वसु, शतृ, शानच्, तृन्, ष्ट्रन्, उ इन कृत्प्रत्ययों की आलोचना विहित है। ये क्वसु और कानच वैदिक प्रत्यय हैं। चक्राणः, जगन्वान्, पचन्तम्, पचमानम्, विद्वान्, करिष्यन्तम्, करिष्यमाणम्, कर्ता, चिकीर्षुः, प्राट्, नद्ध्री, दंष्ट्रा, पत्त्रम्, मेढ्रम्, सेक्त्रम्, सेत्रम्, तोत्त्रम्, स्तोत्रम्, योक्त्रम्, योत्रम्, शस्त्रम्, नेत्रम्, दात्रम् इन कृदन्तशब्दों की प्रक्रिया भी प्रदर्शित है। इस पाठ में सत्संज्ञक शतृ और शानच् प्रत्ययों का सविस्तर व्याख्यान विहित हैं। लट् के स्थान पर और लृट् के स्थान पर होता है। इनसे शतृप्रत्यय कर्ता में परस्मैपदस्थल में ही होता है। शानच्प्रत्यय कर्तृ और कर्म में होता है किन्तु केवल आत्मनेपदस्थल में ही।

पाठान्त प्रश्न

1. विदेः शतुर्वसुः इस सूत्र की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।
2. तृन् इस सूत्र की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।
3. लिटः कानज्वा, क्वसुश्च इन सूत्रों की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।
4. लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे इस सूत्र की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।
5. च्छ्वोः शूडनुनासिके च इस सूत्र की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।
6. दाम्नी...इत्यादि सूत्र की पूर्ति करके सोदाहरण व्याख्या कीजिए।
7. चक्राणः इसकी रूपसिद्धि कीजिए।
8. जगन्वान् इसकी रूपसिद्धि कीजिए।
9. पचन्तम्, पचमानम् इनकी रूपसिद्धि कीजिए।
10. विद्वान् इसकी रूपसिद्धि कीजिए।
11. करिष्यन्तम्, करिष्यमाणम् इनकी रूप सिद्धि कीजिए।
12. कर्ता की रूप सिद्धि कीजिए।

ध्यान दें:

13. चिकीर्षुः इसकी रूप सिद्धि कीजिए।

14. स्तोत्रम् इसकी रूप सिद्धि कीजिए।

पाठगत प्रश्नोत्तर

उत्तर-1

1. चक्राणः।
2. जगन्वान्।
3. छान्दसौ।
4. मान्तस्य धातोर्नत्वं म्वोः परतः।
5. लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे।
6. आने मुक्।
7. परस्मैपदस्थले।
8. आत्मनेपदस्थले।
9. विद्वान्।
10. शतृशानचौ।
11. लृटः सद्वा।
12. न भवति।
13. आम् भवति।

उत्तर-2

14. तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु धातोः तृन् प्रत्यय होता है।
15. कर्ता (कटान्)।
16. उप्रत्ययः सनाशंसभिक्ष उः इत्यनेन।
17. तृजन्तशब्दयोगेन कर्मणि षष्ठी।
18. तृन्नन्तशब्दयोगेन कर्मणि द्वितीया।
19. सतुक्कस्य छस्य वस्य च क्रामात् श् ऊठ् इत्यादेशौ स्तोऽनुनासिके क्वौ झलादौ च क्ङिति।
20. दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे।
21. तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च।
22. च्छ्वोः शूडनुनासिके च।
23. ष्ट्रन्प्रत्ययः करणेऽर्थे।

29

उत्तर कृदन्तम्

ध्यान दें:

इस पाठ में उत्तर कृदन्तस्थ सूत्रों का व्याख्यान करेंगे। पहले तुमुन्प्रत्यय के विषय में चर्चा करेंगे। तब भावार्थ में घञ्प्रत्यय कैसे होता है यह कहेंगें। तुमुन्नन्त शब्द अव्यय है। घञ्नन्तशब्द पुल्लिङ्ग है। तब अच्-अप्-नङ्-कि इन प्रत्ययों का प्रयोग प्रदर्शित करेंगे। तब स्त्रीत्व विशिष्ट भाव में कर्तृभिन्नकारक में क्तिन्-अ-युच् इत्यादि प्रत्ययों का प्रयोग कैसे होता है, यह कहेंगे। पहले आप कर्ता और कर्म में क्तप्रत्यय होता है यह जान चुके हैं। अब नपुंसक भाव में भी क्तप्रत्यय होता है, यह जानेंगे। अन्त में क्त्वा -ल्यप् -णमुल् इन प्रत्ययों के विषय में चर्चा भी बतायेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे-

- किस अर्थ में तुमुन्प्रत्यय का प्रयोग होता है, यह जान पाने में;
- भाव में घञ् प्रत्यय होता है यह सविस्तार से जान पाने में;
- अच्-अप्-नङ्-कि इन प्रत्ययों का प्रयोग भी जान पाने में;
- स्त्रीत्वविशिष्ट भाव और कर्तृभिन्नकारक में कौन से प्रत्यय होते हैं यह जान पाने में;
- भाव में भी क्तप्रत्यय होता है यह जान पाने में;
- क्त्वाप्रत्यय और ल्यप् प्रत्यय का प्रयोग कैसे होगा यह जान पाने में;
- आभीक्ष्ण्य में णमुल्प्रत्यय के विधान को जान पाने में;

क्रियार्था क्रिया धातु से तुमुन्प्रत्यय विधायक सूत्र प्रारम्भ करते हैं-

29.1 तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्॥ (3.3.10)

सूत्रार्थ- क्रियार्थक क्रिया पहले होने पर भविष्यत्यर्थ में धातु से तुमन् और ण्वुल् प्रत्यय होते हैं।

सूत्र व्याख्या- यह विधि सूत्र पदत्रयात्मक है। इस सूत्र से तुमुन् और ण्वुल प्रत्यय होते हैं।

ध्यान दें:

तुमुन्ण्वुलौ (1/2) क्रियायाम् (7/1) क्रियार्थायाम् (7/1) यह सूत्रगत पदच्छेद है। प्रत्ययः (1/1), परः (1/1), धातोः (5/1) ये तीन अधिकृत है। भविष्यति गम्यादयः इससे भविष्यति (7/1) की अनुवृत्ति होती है। तुमुन् च ण्वुल् च तुमुण्ण्वुलौ यहां इतरेतरयोगद्वन्द्व है। क्रिया अर्थः (प्रयोजनम्) यस्याः सा क्रियार्था, तस्याम् क्रियार्थायाम् यहां बहुव्रीहि समास है। जिस क्रिया की सिद्धि जब अपर क्रिया से करते हैं तब वह क्रिया पूर्वक्रिया की कियार्था क्रिया कही जाती है। जैसे भोक्तुम् व्रजति यहां भोजनक्रिया और गमन क्रिया ये दो क्रिया हैं। यहां भोजन क्रिया के लिए गमनक्रिया की जाती है। अतः गमनक्रिया भोजन क्रिया की क्रियार्था क्रिया है गमन क्रिया क्रियार्था क्रिया कही जाती है। सूत्रार्थ है कि- क्रियार्था क्रिया के उपपद में होने पर अर्थात् समीप में उच्चारित सत्य धातु से परे तुमुन् और ण्वुल् प्रत्यय होता है भविष्यत्कालवृत्तित्वविवक्षा में। तुमुन का नकार इत्संज्ञक है, मकारोत्तरवर्ती और उकार भी इत है यह उच्चारणार्थ है। तुम्- यह शेष रहता है। ण्वुल् का लकार हलन्त्यम् से इत्संज्ञक है, और णकार चुटू से इत् है। तब वुमात्र अवशेष रहता है। इस सूत्र से विहित प्रत्यय कृत्संज्ञक होता है, कृत् तिङ् इस अधिकार पाठ में। वह ण्वुल्प्रत्यय कर्ता अर्थ होता है। अव्ययकृतो भावे इस भाष्यवचन से तुमुन्प्रत्यय भाव में होता है।

उदाहरण- कृष्णं दर्शको याति।

सूत्रार्थसमन्वय- तुमुन्प्रत्यय का उदाहरण- कृष्णं द्रष्टुं याति यहां दर्शनक्रिया के लिए गमनक्रिया की जाती है। अतः गमनक्रिया दर्शनक्रिया की क्रियार्था क्रिया है। वह क्रियार्था क्रिया समीप में होती है इस प्रकृतसूत्र से दृशिरप्रेक्षणे (भ्वादि. परस्मै. अनिट्) धातु से भविष्यत्काल के भाववाच्य में तुमुन्प्रत्यय अनुबन्धलोप में धातु से इर् के लोप में दृश् तुम् होने पर आर्धधातुकं शेषः से तुम् के आर्धधातुकसंज्ञा में आर्धधातुकस्येड्वलादेः से इडागम की प्राप्ति में धातु के अनुदात्त होने से एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् से इण्निषेध है। तब तुमुन्प्रत्यय झलादि अकित् होता है, अतः उस तुमुन् से परे सृजिदृशोर्झल्यमकिति से दृश् से अमागम अनुबन्धलोप होता है। वह मित्त्व होने से मिदचोऽन्त्यात्परः से अन्त्यादच से परे होता है। तब दृ अ श् तुम् होने पर इको यणचि से ऋकार के स्थान पर रेफादेश में द्रश् तुम् होने पर व्रश्चभ्रस्जादिसूत्र से शकार के षकार में ष्टुना ष्टुः सूत्र से ष्टुत्व में तकार के टकार में द्रष्टुम् होता है। तब भाववाचक होने से औत्सर्गिक प्रथमा एकवचन में सुप्रत्यय में कृन्मेजन्तः से मान्त कृदन्त शब्द होने से अव्ययसंज्ञा में अव्ययादाप्सुपः से स् के लोप होने पर द्रष्टुम् इति रूप सिद्ध होता है। तब इस वाक्य से कृष्णकर्मक -भाविदर्शन क्रियार्थ गमनक्रिया के समान कर्ता का बोध होता है।

[सूत्रम् सृजिदृशोर्झल्यमकिति (6.1.58) = सृजिदृशोरमागमः स्याज्झलादावकिति।]

यहां विशेष- भट्टोजिदीक्षित आदि कहते है कि समानकर्तृकत्व सत्य में ही तुमुन्प्रत्यय का प्रयोग होता है। अर्थात् तुमुन्नन्तधातु से कर्ता, क्रियार्थक्रिया के कर्ता के समान होता है तब तुमुन्प्रत्यय होता है। अत एव कृष्णं द्रष्टुं याति यहां दर्शनक्रिया और गमनक्रिया में कर्ता समान है, इस हेतु से तुमुन्प्रत्यय होता है। अनुजानीहि मां गन्तुम् यहां गमनकिया का कर्ता अस्मद्, अनुजानीहि का कर्ता युष्मद् यहां कर्तृभेद स्पष्ट ही है। इससे अनुजानीहि मां गमनाय से ही होता है न कि अनुजानीहि मां गन्तुम्।

ण्वुल्प्रत्यय का उदाहरण-

कृष्णं दर्शको याति यहां भविष्यत्कालिक दर्शन क्रिया से गमनक्रिया करते हैं। अतः गमनक्रिया दर्शनक्रिया की क्रियार्था क्रिया है। वह क्रियार्था क्रिया समीप में होती है इस प्रकृतसूत्र से दृशिर् प्रेक्षणे (भ्वादि. परस्मै. अनिट्) धातु से भविष्यत्काल में कर्तृत्ववाच्य में ण्वुल्प्रत्यय के अनुबन्धलोप में धातु के इण् के लोप में दृश् वु होने पर युवोरनाकौ से वु के स्थान पर अक् आदेश में दृश् अक् होने पर

ध्यान दें:

आर्धधातुकं शेषः से ण्वुल् आर्धधातुकसंज्ञा में पुगन्तलघूपधास्य च से लघूपधगुण में दर्शक होता है। तब इस समुदाय के कृदन्त होने से कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिकसंज्ञा में प्रथमा एकवचन में सुप्रत्यय से दर्शकः रूप सिद्ध होता है। इस वाक्य से कृष्णकर्मक-भाविदर्शन क्रियार्थ गमनक्रिया के समान कर्ता का बोध है। कृद्योग में कर्तृकर्मणोः कृति से अनुक्त कर्म में कृष्ण में षष्ठी प्राप्त थी। परन्तु अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः से उसका निषेध है। तब कर्मणि द्वितीया से द्वितीयविभक्ति है। ण्वुल्तृचौ इस सूत्रस्थ ण्वुल्प्रत्यय में कृष्णस्य दर्शकः कर्म में षष्ठी है। तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् से ण्वुल्प्रत्यय में कर्म में द्वितीया यथा कृष्णं दर्शकः। इन दोनों में ण्वुल्प्रत्यय विशेष है।

कालार्थ उप पदों में धातु से तुमुन्प्रत्यय विधायक सूत्र प्रारम्भ करते हैं-

29.2 कालसमयवेलासु तुमुन्॥ (3.3.167)

सूत्रार्थ- कालवाचक प्रत्यय पहले होने पर धातु से तुमुन् प्रत्यय होता है।

सूत्रव्याख्या- यह विधिसूत्र पदद्वयात्मक है। इस सूत्र से तुमुन्प्रत्यय होता है। कालसमयवेलासु (7/3) तुमुन् (1/1) यह सूत्रगत पदों का विभक्तिनिर्देश है। प्रत्ययः (1/1), परः (1/1), धातोः (5/1) ये तीन अधिकृत हैं। कालश्च समयश्च वेला च कालसमयवेलाः यहां इतरेतरयोगद्वन्द्व है, तासु कालसमयवेलासु। कालः, समयः, वेला इन पर्यायवाची शब्दग्रहण कालवाची शब्दों का उपलक्षणार्थ है। इनसे अवसरादि कालवाची शब्दों का भी ग्रहण होता है। सूत्रार्थ है कि काल -समय -वेलादि कालवाचक शब्दों से उपपद धातु से तुमुन्प्रत्यय परे होता है। तुमुन्प्रत्यय पूर्ववत् अव्ययकृतो भावे इस वचनानुसार भावार्थ में होता है। भाव अद्रव्य होता है अतः तुमुन्नन्त केवल औत्सर्गिक एकवचन में ही होता है। तब कृन्मेजन्तः से अव्ययसंज्ञायाम् अव्ययादाप्सुपः से स् का लोप होता है। इस सूत्र से विहित प्रत्यय कृत् तिङ् से कृत्संज्ञक होता है।

उदाहरण- कालः समयो वेला वा भोक्तुम्।

सूत्रार्थ समन्वय- प्रस्तुत उदाहरण में- कालसमयवेला उपपदे शब्दों से भुज पालनाभ्यवहारयोः (रुधादि. परस्मै. अनिट्) इस धातु से प्रकृतसूत्र से भाव में तुमुन् अनुबन्धलोप में तुमुन् आर्धधातुक होने से आर्धधातुकस्येड्वलादेः से इडागम प्राप्ति में एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् से उसके निषेध में लघूपधागुण से चोः कुः से जकार के गकार में खरि च से गकार के ककार में भोक्तुम् होता है। तब इस समुदाय के कृदन्तत्व होने से कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिकसंज्ञा के प्रथमा एकवचन सुप्रत्यय में कृन्मेजन्तः से अव्ययसंज्ञायाम् अव्ययादाप्सुपः से स् के लोप में भोक्तुम् रूप सिद्ध होता है। यहां न तो भविष्यत्कालार्थ है और न ही क्रियार्था क्रिया। अतः तुमुण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् इस पूर्वयोग से तुमुन्प्रत्यय अप्राप्त है। अतः यह सूत्रारम्भ है। इस अवसर पर यह उदाहरणान्तर है।

अक्रियार्थोपपदार्थ में अग्रिम सूत्र आरम्भ करते हैं-

29.3 समानकर्तृकेषु तुमुन्॥ (3.3.158)

सूत्रार्थ- इच्छार्थे एककर्तृक उपपद शब्दों में धातु से तुमुन् होता है।

सूत्रव्याख्या- यह विधिसूत्र पदद्वयात्मक है। इस सूत्र से तुमुन्प्रत्यय होता है। समानकर्तृकेषु (7/3) तुमुन् (1/1) यह सूत्रगत पदों का विभक्तिनिर्देश है। प्रत्ययः (1/1), परः (1/1), धातोः (5/1) ये तीन अधिकृत है। इच्छार्थेषु लिङ्लोटौ से इच्छार्थेषु (7/3)पद अनुवर्तित है। समानः कर्ता येषां ते समानकर्तृकास्तेषु

ध्यान दें:

समानकर्तृकेषु यहां बहुव्रीहि समास है। समानकर्तृक शब्द का एक कर्ता यह अर्थ है। सूत्रार्थ है कि- इच्छार्थक समानकर्तृक उप पद धातु से तुमुन्प्रत्यय परे होता है। इस सूत्र से विहित प्रत्यय कृत् तिङ् से कृत्संज्ञक होता है। तुमुण्ण्वुलौ क्रियायाम् क्रियार्थायाम् इस पूर्वसूत्र से क्रियार्था क्रिया के उप पद में तुमुन्प्रत्यय होता है, इससे तो नहीं, अपितु इच्छार्थक क्रिया मात्र उपपद है, यहीं तुमुन्प्रत्यय होता है।

उदाहरण- इच्छति भोक्तुम्। वष्टि भोक्तुम्। वाञ्छति भोक्तुम्।

सूत्रार्थ समन्वय- इच्छति भोक्तुम् यहां इच्छार्थक इष्धातु उप पद है। किन्तु इष्धातु का कर्ता और भुज्धातु का कर्ता समान ही है। अतः समानकर्तृकेषु तुमुन् इस प्रकृतसूत्र से तुमुन् में भोक्तुम् रूपं सिद्ध होता है। प्रक्रिया तो पूर्वसूत्र में उक्त है।

शक्नोत्यादि उपपद धातु से तुमुन्प्रत्यय विधायक सूत्र आरम्भ करते हैं-

29.4 शक-धृष-ज्ञा-ग्ला-घट-रभ-लभ-क्रम-सहार्हास्त्यर्थेषु तुमुन् (3.4.65)

सूत्रार्थ- शक-धृष-ज्ञा-ग्ला-घट-रभ-लभ-क्रम-सहार्ह-अर्थ में उपपद शब्दों से धातु से तुमुन् होता है।

सूत्र व्याख्या- यह विधिसूत्र पदद्वयात्मक है। इस सूत्र से तुमुन्प्रत्यय होता है। शकधृषज्ञाग्लाघटरभ-लभक्रमसहार्हास्त्यर्थेषु (7/3) तुमुन् (1/1 यह सूत्रगतपदों का विभक्ति निर्देश है। प्रत्ययः (1/1), परः (1/1), धातोः (5/1) ये तीन अधिकृत है। अस्तीति अर्थो येषां ते अस्त्यर्थाः, बहुव्रीहिः। शकश्च धृषश्च ज्ञाश्च ग्लाश्च घटश्च रभश्च लभश्च क्रमश्च सहश्च अर्हश्च, अस्त्यर्थाश्च तेषाम् इतरेतरयोगद्वन्द्वे, शकधृषज्ञाग्लाघटरभलभक्रमसहार्हास्त्यर्थाः तेषु शकधृषज्ञाग्लाघटरभलभक्रमसहार्हास्त्यर्थेषु। सूत्र में कृत अर्थग्रहण का सम्बन्ध अस्तिना के साथ है। अतः आदि बहुव्रीहिसमास, उसके बाद द्वन्द्वसमास है। सूत्रार्थ है कि शक्-धृष्-ज्ञा-ग्लै-घट्-रभ्-लभ्-क्रम्-सह्-अर्ह्- अस्त्यर्थक उपपद धातुओं के धातुमात्र होने से तुमुन्प्रत्यय होता है। इस सूत्र से विहित प्रत्यय कृत्संज्ञक होता है।

उदाहरण में सूत्रार्थसमन्वय है-

तालिका से इस सूत्र का उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है-

उप पद	तुमुन्नन्त शब्द
शक्-शक्नोति	भोक्तुम्
धृष्-धृष्णोति	भोक्तुम्
ज्ञा-जानाति	भोक्तुम्
ग्लै-ग्लायति	भोक्तुम्
घट्-घटते	भोक्तुम्
आ-रभ्-आरभते	भोक्तुम्

ध्यान दें:

लभ्-लभते	भोक्तुम्
प्र-क्रम्-प्रक्रमते	भोक्तुम्
सह्-सहते	भोक्तुम्
अर्ह्-अर्हति	भोक्तुम्
अस्त्यर्थ धातु	
अस्-अस्ति	भोक्तुम्
भू-भवति	भोक्तुम्
विद्-विद्यते	भोक्तुम्

यहां शक्नोत्यादि उपपदे भुज्धातु से तुमुन्प्रत्यय इस सूत्र से विहित है। भोक्तुम् इसमें तुमुन्नन्त की प्रक्रिया पूर्व सूत्र में दी गयी है।

29.5 पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु॥ (3.4.66)

सूत्रार्थ- पर्याप्ति पूर्णता है। उसके वाची सामर्थ्यवचन उपपद शब्दों से तुमुन् होता है।

सूत्र व्याख्या- यह विधि सूत्र पदद्वयात्मक है। इस सूत्र से तुमुन्प्रत्यय का विधान होता है। पर्याप्ति वचनेषु अलमर्थेषु ये सूत्रगत पदच्छेद है। प्रत्ययः (1/1), परः (1/1), धातोः (5/1) इति ये तीन अधिकृत है। शकधृषज्ञाग्लाघटरभलभक्रमसहार्हास्त्यर्थेषु तुमुन् इस सूत्र से तुमुन् (1/1) पद की अनुवृत्ति होती है। पर्याप्तिः उच्यते यैः ते पर्याप्तिवचनाः तेषु पर्याप्तिवचनेषु। अलम् अर्थो येषां ते अलमर्थाः तेषु अलमर्थेषु यहां बहुव्रीहिसमास है। सूत्रार्थ है कि पूर्णतावाची सामर्थ्यवचनों से अलमादि उपपद शब्दों की धातु से तुमुन्प्रत्यय परे होता है। प्रतिषेधार्थक अलम् शब्दयोग से तुमुन्प्रत्यय नहीं होता है किन्तु क्वचित् कवीनाम् तथा प्रयोगो दृश्यते। यथा कुछ कवियों ने वैसा प्रयोग किया है। जैसे- अलमात्मानं खेदयितुम् (वेणी 2.3)। अलं सुप्तजनं प्रबोधयितुम् (मृच्छकटिकम् 3)। अनेन सूत्रेण विहितः प्रत्ययः कृत्संज्ञकः भवति।इस सूत्र से विहित प्रत्यय कृत्संज्ञक होता है। पर्याप्तः, प्रवीणः, कुशलः, पटुः इत्यादयः पर्याप्तिवचनाः सामर्थ्यवचनाः उपपदशब्दाः।इत्यादि पर्याप्तिवचन सामर्थ्यवचन उपपदशब्द है।

उदाहरण में सूत्रार्थ समन्वय- पर्याप्तो भोक्तुम्, प्रवीणः, कुशलः, पटुः इत्यादि। यहां पर्याप्तः, प्रवीणः, कुशलः, पटुः यें शब्द पूर्णतावाची और सामर्थ्यवाची शब्द हैं। अतः उन उपपद सत् भुज्धातु से प्रकृतसूत्र से तुमुन्प्रत्यय के अनुबन्धलोप में धातु के लघूपधागुण में जकार के कुत्व गकार के चर्त्व में ककार होने पर भोक्तुम् होता है। तब कृदन्त होने से प्रातिपदिकसंज्ञा है। तुमुन्प्रत्यय अव्ययकृतो भावे इस वचनानुसार भावार्थ में होता है। भाव अद्रव्य होता है। अतः तुमुन्नन्त होने से केवल औत्सर्गिक एकवचन में ही होता है। तब कृन्मेजन्तः से अव्ययसंज्ञा में अव्ययादाप्सुपः से स् के लोप में भोक्तुम् रूप सिद्ध होता है।

पाठ-29

उत्तर कृदन्तम्

ध्यान दें:

पाठगत प्रश्न-1

1. तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् इसका क्या अर्थ है।
2. कालसमयवेलासु तुमुन् इसका क्या अर्थ है।
3. समानकर्तृकेषु तुमुन् इसका क्या अर्थ है।
4. पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु इसका क्या अर्थ है?
5. क्रियार्था क्रिया क्या है?
6. तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् इत्यस्य किम् उदाहरणम् इसका उदाहरण क्या है?
7. कालसमयवेलासु तुमुन् इत्यस्य किम् उदाहरणम् इसका उदाहरण क्या है?
8. समानकर्तृकेषु तुमुन् इत्यस्य किम् उदाहरणम् इसका उदाहरण क्या है?
9. पर्याप्तिः का। क्या है?
10. कौन से पर्याप्तिवचन सामर्थ्यवचन उप पद शब्द हैं?

यहां आदि में भाव में घञ्विधायक सूत्र प्रस्तुत करते हैं-

29.6 भावेघ् (3.3.18)

सूत्रार्थ- भाव अर्थ में धातु से घञ् प्रत्यय होता है।

सूत्रव्याख्या- यह विधि सूत्र एकपदात्मक है। इस सूत्र से घञ्प्रत्यय होता है। भावे यह सप्तमी एकवचनान्त है। प्रत्ययः (1/1), परः (1/1), धातोः (5/1) ये तीन अधिकृत हैं। पदरुजविशस्पृशो घञ् इससे घञ् (1/1) पद अनुवर्तित है। सामान्यतया भाव, क्रिया ये समानार्थक है। किन्तु यहां सूत्र में भाव शब्द का सिद्धावस्थापन्ना क्रिया अर्थ है। धात्वर्थ क्रिया दो प्रकार की होती है- सिद्धावस्थापन्नक्रिया और साध्यावस्थापन्नक्रियास्। जहां क्रिया से क्रियान्ताराकाङ्क्षा होती है वह सिद्धावस्थापन्ना क्रिया है। जैसे- पाकः, त्यागः, भागः इत्यादि कृदन्त के धात्वर्थ सिद्धावस्थापन्ना क्रिया है। जहां क्रिया से क्रियान्ताराकाङ्क्षा नहीं होती है, वह साध्यावस्थापन्ना क्रिया है। जैसे- पचति, त्यजति, भजति, इत्यादि तिङन्त में साध्यावस्थापन्ना क्रिया है। सूत्रार्थ है कि- जब धात्वर्थ सिद्धावस्थापन्ना क्रिया होती है तब धातु से कृत्संज्ञक घञ्प्रत्यय होता है। जब धात्वर्थ सिद्धावस्थापन्ना क्रिया होती है तब वह द्रव्यवत् होती है (कृदभिहितो भावो द्रव्यवत् प्रकाशते) अत एव लिङ्गसंख्यायोग में होती है। घञ् का ञकार हलन्त्यम् से इत्संज्ञक, घकार लशक्वतद्धिते से इत् है। अतः अकारमात्र शेष रहता है। घकारानुबन्ध चजोः कु घिण्ण्यतोः इत्यादि से घित्कार्यार्थ है। ञकारानुबन्ध अत उपधायाः से वृद्ध्यर्थ है। इस सूत्र से विहित प्रत्यय कृत्संज्ञक होता है।

उदाहरण- पाकः।

सूत्रार्थ समन्वय- डुपचष् पाके (भ्वादि. उभय. अनिट्) इस धातु से सिद्धावस्थापन्नभाववाच्ये प्रकृत सूत्र से घञ् के अनुबन्धलोप में पच् अ होने पर ञित् होने से अत उपधायाः से उपधावृद्धि में पाच् अ होता है। तब घित् होने से चजोः कु घिण्ण्यतोः से धातु के चकार के कुत्व ककार में पाक होता है।

ध्यान दें:

तब इस समुदाय के कृदन्त होने से कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिकसंज्ञा में सुविभक्ति के सकार के रुत्व रेफ का विसर्ग में पाकः रूप सिद्ध होता है। लिङ्गानुशासन से घञन्त शब्द पुल्लिङ्ग में प्रयुक्त होता है। पाकः -पाकौ -पाकाः। इसी तरह अन्य।

अब घञ्प्रत्यय विधायक अपर सूत्र आरम्भ करते हैं-

29.7 अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् (3.3.19)

सूत्रार्थ- कर्ता से भिन्न कारक में धातु से घञ् प्रत्यय होता है।

सूत्र व्याख्या- यह विधि सूत्र पदचतुष्टयात्मक है। इस सूत्र से घञ्प्रत्यय होता है। अकर्तरि (7/1) च (अव्ययम्) कारके (7/1) संज्ञायाम् (7/1) ये सूत्रगत पदों का विभक्ति निर्देश है। प्रत्ययः (1/1), परः (1/1), धातोः (5/1) ये तीन अधिकृत है। पदरुजविशस्पृशो घञ् से घञ् (1/1) पद अनुवर्तित है। न कर्तरि अकर्तरि यहां नञ्तत्पुरुष है। सूत्रार्थ है कि कर्तृभिन्न कर्मकरणादिकारक के वाच्य में धातु से परे घञ्प्रत्यय होता है संज्ञा विषय में। सूत्रस्थ संज्ञाशब्द का रूढ़शब्द अर्थ है। इस सूत्र से विहित प्रत्यय कृत् तिङ् से कृत्संज्ञक होता है।

उदाहरण- रागः।

सूत्रार्थ समन्वय- रज्यते अनेन इति रागः (रञ्जनद्रव्यम्)। यहां करण कारक विवक्षा में रञ्ज रागे (भ्वादि. उभय. अनिट्/ दिवादि. उभय. अनिट्) इस धातु से घञ् के अनुबन्धलोप में धातु के नकारलोप में विधातु में अग्रिम सूत्र आरम्भ करते हैं-

29.8 घञि च भावकरणयोः॥ (6.4.27)

सूत्रार्थ- रञ्ज धातु से न् का लोप होता है, बाद में भाव और करण अर्थ में हुआ घञ् हो तो।

सूत्र व्याख्या- यह विधि सूत्र पदत्रयात्मक है। इस सूत्र से नलोप होता है। घञि (7/1) च (अव्यय) भावकर्मणोः (7/2) ये सूत्रगत पदों का विभक्ति निर्देश है। प्रत्ययः (1/1), परः (1/1), धातोः (5/1) ये तीन अधिकृत है। रञ्जेश्च इत्यतः रञ्जेः (6/1) यह पद अनुवर्तित है। श्नान्नलोपः इत्यतः नलोपः (1/1) यह पद भी अनुवर्तित है। भावश्च करणञ्च भावकरणे तयोः भावकरणयोः यहां इतरेतरयोगद्वन्द्व है। नस्य लोपः नलोपः यहां षष्ठी तत्पुरुष समास है। सूत्रार्थ है कि- भावार्थ और करणार्थ में विहित घञ् प्रत्यय से परे रञ्ज धातु से नकार का लोप होता है। रञ्ज धातु से वस्तुतः नकार ही है उसका ही लोप इस सूत्र से विधित है। रञ्ज् यहां दृश्यमानः ञकार तो नश्चापदान्तस्य झलि से परसवर्ण होता है।

उदाहरण में सूत्रार्थ समन्वय- पूर्वोक्त प्रकार से रञ्ज धातु में जो घञ् विहित है वह करणार्थ में है हेतु से रन् ज् के नकार का लोप होने पर रज् अ होता है। तब घञ् ञित् होने से अत उपधायाः से उपधावृद्धि में चजोः कु घिण्ण्यतोः से जकार के कुत्व गकार में राग् अ होता है। तब इस समुदाय के कृदन्त होने से कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिक संज्ञा में सुविभक्ति से रागः रूप सिद्ध होता है। इस अर्थ में आचार्य प्रयोग है- तेन रक्तं रागात् । इस ही प्रक्रिया से भाव में योग से भावार्थ में भी रञ्ज धातु से घञ्प्रत्यय में राग शब्द की निष्पत्ति होती है। उदाहरण- रञ्जनं रागः। भावार्थ और करणार्थ से ही रञ्ज धातु के नकार का लोप होता है न कि अन्य अर्थ में। जैसे- रज्यति अस्मिन् इति रङ्गः। यहां अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् इस योग से अधिकरण कारक में घञ्प्रत्यय है। अतः न का लोप नहीं होता है।

अब घञ् का अपवादप्रत्यय का विधान किया जाता है-

ध्यान दें:

29.9 एरच्॥ (3.3.56)

सूत्रार्थ- इवर्णान्त धातु से भाव अर्थ में अच् प्रत्यय होता है।

सूत्रव्याख्या- यह विधिसूत्र द्विपदात्मक है। इस सूत्र स अच्प्रत्यय होता है। एः (5/1) अच् (1/1) ये सूत्रगत पदच्छेद है। प्रत्ययः (1/1), परः (1/1), धातोः (5/1) ये तीन अधिकृत है। भावे, अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् ये दोनों सूत्र भी अनवर्तित है। इकार का षष्ठ्येकवचनान्त रूप एः है । एः यह धातु का विशेषण है। अतः तदन्तविधि में इवर्णान्त धातु से यह अर्थ प्राप्त है। सूत्रार्थ है कि- इवर्णान्त धातु से घञ्प्रत्यय परे होता है, भाव और अकर्तृ कारक में संज्ञा शब्दों में। भाव और अकर्तृ कारक में संज्ञा शब्दों से यह अपवाद सूत्र है। इस सूत्र से विहित प्रत्यय कृदतिङ् से कृत्संज्ञक होता है। अच् के चकार का हलन्त्यम् से इत्संज्ञा होती है। अतः अ-मात्र शेष रहता है।

उदाहरण- चयः। क्षयः।

सूत्रार्थ समन्वय- चयनं चयः। यहां चिञ् चयने (स्वादि. उभय. अनिट्) इस धातु में इवर्णान्त है। भावार्थ भाव में इस सूत्र से घञ् प्राप्ति में तम् अपवादत्व से प्रबाध्य प्रकृत सूत्र से अच्प्रत्यय के अनुबन्ध लोप अकार में अचः तिङ्शिद्भिन्नत्वात् आर्धधातुकसंज्ञायाम् सार्वधातुकार्धधातुकयोः से इकार का गुण एकार में एचोऽयवायावः से एकार के स्थान पर अयादेश में चय होता है। तब इस समुदाय के कृदन्त होने से कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिकसंज्ञा में सुविभक्ति में चयः यह रूप सिद्ध होता है। अच्प्रत्ययान्त शब्द पुल्लिङ्गक होता है। इसी तरह से जिधातु से भावार्थ में जयः रूप होता है यह ही भाव में उदाहरण है।

अब कर्तृभिन्न कारकार्थ में उदाहरण आलोचित करते हैं। क्षियति निवसति अस्मिन्निति क्षयः। अत्र क्षि निवासगत्योः (तुदादि. उभय. अनिट्) इस धातु से अधिकरण कारकार्थ में प्रकृतसूत्र से अच्प्रत्यय होता है। जयति अनेन संसारम् इति जयः (महाभारतम्) यहां जि जये (भ्वादि. परस्मै. अनिट्) इस धातु से करणकारक में प्रकृतसूत्र से अच्प्रत्यय में जयः रूप होता है।

घञ्प्रत्यय अपवाद प्रत्यय विधायक है, दूसरा सूत्र आरम्भ करते हैं-

29.10 ऋदोरप्॥ (3.3.57)

सूत्रार्थ- ऋवर्णान्त होने से उवर्णान्त से अप् प्रत्यय होता है।

सूत्रव्याख्या- यह विधिसूत्र पदद्वयात्मक है। इस सूत्र से अप्प्रत्यय होता है। ऋदोः (5/1) अप् (1/1) यह सूत्रगत पदच्छेद है। प्रत्ययः (1/1), परः (1/1), धातोः (5/1) ये तीन अधिकृत है। भावे, अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् ये दोनों सूत्र भी अनुवर्तित है। ऋच्च उश्च ऋदुः, तस्मात् ऋदोः यहां समाहारद्वन्द्व में भी पुंस्त्व है। ऋदोः यहां तपर नहीं है किन्तु उच्चारणार्थ व मुखसुखार्थ तकार होता है। अतः तात् परः = तपरः इसके अनुसार उ से केवल उदन्त का ग्रहण ही नहीं होता है किन्तु उवर्णान्त का ग्रहण भी होता है। ऋत् और उ दोनों ही धातु के विशेषण है। अतः तदन्तविधि ऋदन्त और उवर्णान्त होने से, यह अर्थ लाभ है। सूत्रार्थ है कि- ऋदन्त और उवर्णान्त धातु से परे अप्प्रत्यय होता है भाव और अकर्तृ कारक में संज्ञा से। अप् का पकार हलन्त्यम् से इत्संज्ञक होता है। तब अ यह ही शेष होता है। घञबन्तः (लिङ्गानुशासनम् - 2.3) इस अनुसार अप्प्रत्ययान्त शब्द पुल्लिङ्गक होता है। पकारानुबन्ध अनुदात्त सुप् अनुदात्तस्वरार्थ है। इस सूत्र से विहित प्रत्यय कृत् तिङ् से कृत्संज्ञक होता है।

ध्यान दें:

उदाहरण- करः। गरः। यवः। लवः।

सूत्रार्थ समन्वय- करणं करः यहां कृ विक्षेपे (तुदादि. परस्मै. अनिट्) यह धातु ऋदन्त है। अतः प्रकृतसूत्र से भावार्थ के भाव में इस सूत्र से घञ् प्राप्त होने में तम् अपवाद से प्रबाध्य प्रकृतसूत्र से भी अनुबन्धलोप के अकार में अपः तिङ्शिद्भिन्नत्वात् आर्धधातुकसंज्ञायाम् सार्वधातुकार्धधातुकयोः इससे ऋकार के गुण अकार में उरण् रपरः इससे रपरत्व में अरि क् अर् अ होने पर वर्णसम्मेलन में कर होता है। तब इस समुदाय के कृदन्त होने से कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिकसंज्ञा में सुविभक्ति से करः यह रूप सिद्ध होता है। कीर्यते अनेन इत्यर्थे करः यहां करणार्थ में घञ्प्रत्यय होता है। गरणं गरः इससे करणार्थकस्थल में, और गीर्यते इति गिरः (विषम्) इससे कर्मार्थकस्थल में गृ निगरणे धातु से प्रकृतसूत्र से अप्प्रत्यय है।

उदन्त का उदाहरण- यवनं यवः। यहां यु मिश्रणामिश्रणयोः (अदादि.परस्मै.) से धातु उवर्णान्त है। भावार्थे भावे सूत्र से घञ् प्राप्ति में तम् अपवाद से प्रबाध्य प्रकृतसूत्र से अप्प्रत्यय में अनुबन्धलोप में अकार में अपः तिङ्शिद्भिन्न होने से आर्धधातुकसंज्ञा में सार्वधातुकार्धधातुकयोः से उकार के गुण ओकार में एचोऽयवायावः से ओकार के स्थान पर अवादेश में यव होता है। तब इस समुदाय के कृदन्त होने से कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिकसंज्ञा में सुविभक्ति से यवः यह रूप सिद्ध होता है। यूयते पृथक्क्रियते तुषेभ्य इति यवः यहां कर्म में अप्प्रत्यय ह्रस्व उकार का उदाहरण है।

लवनं लवः। यहां लूञ् छेदने (क्र्यादि.उभय.) यह धातु ऊवर्णान्त है। भावार्थे भावे इस सूत्र से घञ् प्राप्ति में वह अपवाद होने से प्रबाध्य प्रकृतसूत्र से अप्प्रत्यय के अनुबन्धलोप अकार में अप् तिङ्शिद्भिन्न होने से आर्धधातुकसंज्ञा में सार्वधातुकार्धधातुकयोः इससे ऊकार के गुण ओकार में एचोऽयवायावः से ओकार के स्थान पर अवादेश में लव होता है। तब इस समुदाय के कृदन्त होने से कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिकसंज्ञा में सुविभक्ति से लव रूप सिद्ध होता है। लूयते छिद्यते समुदायाद् इति लवः यहां कर्म से अप्प्रत्यय दीर्घ ऊकार का उदाहरण है।

अब नङ्प्रत्यय विधायक सूत्र आरम्भ करते हैं-

29.11 यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्॥ (3.3.90)

सूत्रार्थ- इन धातुओं से भाव अर्थ में नङ् प्रत्यय होता है- यज् याच् यत् विच्छ् प्रच्छ् रक्ष् संज्ञाविषयक कर्तृभिन्न कारक में।

सूत्र व्याख्या- यह विधि सूत्र है। इस सूत्र से नङ्प्रत्यय होता है। यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षः (5/1) नङ् (1/1) इति सूत्रगतपदच्छेदः।ये सूत्रगत पदच्छेद है। प्रत्ययः (1/1), परः (1/1), धातोः (5/1 ये तीन अधिकृत है। भाव और अकर्त कारक में संज्ञा से ये दोनों सूत्र अनवर्तित है। यजश्च याचश्च यतश्च विच्छश्च प्रच्छश्च रक्ष् चेति समाहारद्वन्द्वे यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्ष् तस्मात् यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षः। यजादि में अकार यह उच्चारणार्थ है। सूत्रार्थ है कि यज् याच् यत् विच्छ् प्रच्छ् रक्ष् धातुओं से परे नङ्प्रत्यय होता है। भाव और अकर्तृ कारक में संज्ञा से। नङ के ङकार की इत्संज्ञा हलन्त्यम् से है। ङकारानुबन्धः च्छ्वोः शूडननुनासिके च इत्यादि कार्यार्थ है, तथा च विश्नः यहां लघूपधागुणनिषेधार्थ है। याच्ञाशब्द को छोङकर सूत्र में प्रयुक्त अन्य नङन्त शब्द पुल्लिङ्गक होते हैं, नङन्तः (लिङ्गानुशासनम् - 39) से। याच्ञा स्त्रियाम् (लिङ्गानुशासनम्-40) इसके अनुसार याच्ञाशब्द स्त्रीलिङ्गक होता है। इस सूत्र से विहित प्रत्यय कृदतिङ् से कृत्संज्ञक होता है।

ध्यान दें:

उदाहरण- यज्ञः। याच्ञा। यत्नः। विश्नः। प्रश्नः। रक्ष्णः।

सूत्रार्थसमन्वय- यजनम् यज्ञः यहां यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु (भ्वादि. उभय.) धातु से प्रकृतसूत्र से भाव मे नङ्प्रत्यय यज् न होता है। धातु अनिट् होने से नेट्। तब स्तोः श्चुना श्चुः स श्चुत्व में नकार का ञकार होने पर यज्ञ होता है। तब इस समुदाय के कृदन्त होने से कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिकसंज्ञा में सुविभक्ति से यज्ञः रूप सिद्ध होता है। इज्यते इति यज्ञः यहां कर्म में नङ्प्रत्यय है। प्रक्रिया तो पूर्ववत् है।

याचनम् याच्ञा यहां टुयाचृ याच्ञायाम् (भ्वादि. उभय.) धातु से पूर्ववत् भाव में नङ् श्चुत्व में याच् ञ होकर स्त्रीत्वविवक्षा में अजाद्यतष्टाप् से टाप् अनुबन्धलोप में सवर्णदीर्घ में याच्ञा होता है। तब इस आबन्त समुदाय से सुविभक्ति में हल्ङ्याब्भो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल् से सोः लुकि याच्ञा रूप सिद्ध होता है। याच्धातु में सेट् है। अतः याच्धातु से विहित नङ् इडागम प्राप्ति में नेड्वशि कृति से उसका निषेध होता है। यतनम् यत्नः यहां यती प्रयत्ने (भ्वादि. आत्मने.) इस धातु से प्रकृतसूत्र से भाव में नङ् विभक्तिकार्य में यत्नः रूप है।

विच्छनम् विश्नः यहां विच्छ गतौ (तुदादि.परस्मै.) इस धातु से प्रकृतसूत्र से नङ् में विच्छ् न होकर विच्छ्धातु सेट् है, ऐसा करके इडागम प्राप्ति में नेड्वशि कृति से उसका निषेध है। तब नङ् इति झलादि ङित् अस्ति इस हेतु से उसमें नङ् परे होने पर च्छ्वोः शूडननुनासिके च से तुक के छकार के स्थान पर अर्थात् च्छ् के स्थान पर शकारादेश में विश् न होता है। तब नङ आर्धधातुक होने से पुगन्तलघूपध स्य च से प्राप्त लघूपधागुण का क्ङिति च से निषेध है। तथा स्तोः श्चुना श्चुः से प्राप्त श्चुत्वस्य शात् इस सूत्र से निषेध है। तब इस समुदाय के कृदन्त होने से कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिकसंज्ञा में सुविभक्ति में विश्नः रूप सिद्ध होता है।

[सूत्रम् शात् (8.4.44)=शात्परस्य तवर्गस्य चुत्व न स्यात्।]

प्रच्छनम् प्रश्नः यहां प्रच्छ ज्ञीप्सायाम् (तुदादि.परस्मै.) इस धातु से प्रकृतसूत्र से नङ् प्रच्छ् न होने पर प्रच्छ्धातु से अनिट् होने से नेट् है। तब नङ् झलादि ङित् है इस हेतु से उसमें नङि परे च्छ्वोः शूडननुनासिके च से च्छ् के स्थान पर शकारादेश में प्रश् न होता है। तब नङः ङित्त्वात् ग्रहिज्यादि सूत्र से प्राप्त सम्प्रसारण के प्रश्न चासन्नकाल में इत्यद्याचार्य निर्देश से निषेध है। ततः स्तोः श्चुना श्चुः से प्राप्त श्चुत्वस्य शात् इस सूत्र से निषेध है। तब प्रश्न समुदाय के कृदन्त होने से कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिकसंज्ञा में सुविभक्ति में प्रश्नः रूप सिद्ध होता है।

रक्षणम् रक्ष्णः यहां रक्ष पालने (भ्वादि.परस्मै.) इस धातु से प्रकृतसूत्र से नङि रक्ष् न होने पर रक्ष् -धातु से अनिट् होने पर नेट् है। तब नकार के रषाभ्यां नो णः समानपद में णत्व विभक्तिकार्य में रक्ष्णः रूप सिद्ध होता है।

29.12 उपसर्गे घोः किः॥ (3.3.92)

सूत्रार्थ- उपसर्ग उपपद होने पर घुसंज्ञकधातु से किप्रत्यय हो भाव में संज्ञा विषयक व कर्तृभिन्नकारक में।

सूत्र व्याख्या- यह विधिसूत्र पदत्रयात्मक है। इस सूत्र से किप्रत्यय होता है। उपसर्गे (7/1) घोः (5/1) किः (1/1) यह सूत्रगतपदों का विभक्तिनिर्देश है। प्रत्ययः (1/1), परः (1/1), धातोः (5/1) इन तीनों का अधिकार यहां आता है। भावे, अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् इन दोनों सूत्रों का अनुवर्तन यहां होता है। उपसर्गे यह सप्तम्यन्त पद है अतः तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् इससे उपपद होता है। दाधाघ्वदाप् इससे

ध्यान दें:

दाधातु व धाधातु की घुसंज्ञा होती है। सूत्रार्थ होगा- भावार्थ में संज्ञाविषयक कर्तृभिन्नकारकार्थ में व उपसर्ग उपपद होने पर घुसंज्ञक दा व धा धातु से किप्रत्यय होता है। कि के ककार की लशक्वतद्धिते इससे इत्संज्ञा होती है। उससे इकारमात्र बचता है। ककारानुबन्ध आतो लोप इटि च इससे धातु के आकार का लोप होता है।

उदाहरण - उपाधिः।

सूत्रार्थसमन्वय- उपाधीयते अनेन इति उपाधिः। यहां उप - आङ् इन दो उपसर्गों से युक्त डुधाञ धारणपोषणयोः (जुहोत्यादि. उभय. अनिट्) यह धातु है। इस धातु से करणकारक की विवक्षा में प्रकृतसूत्र से किप्रत्यय करने व अनुबन्धलोप करने पर 'उप आ धा इ' ऐसा बनता है आतो लोप इटि च इससे धातु के आकार का लोप करने पर 'उप आ ध् इ' हो जाने पर उपपदमतिङ् इससे उपपदसमास होने से कृत्तद्धितसमासाश्च इससे प्रातिपदिकसंज्ञा करने पर सुप्रत्यय होने पर उपाधिः यह रूप सिद्ध होता है। क्यन्तो घुः (लिङ्गानुशासनम् - 41) इसके अनुसार किप्रत्ययान्तशब्द पुंलिङ्गवाचक होता है।

विधानम् विधिः यहां भाव में वि -उपसर्गपूर्वक धाधातु से किप्रत्यय है। विधीयते विधिः यहां कर्म में किप्रत्यय है। विधत्ते विधिः यहां यद्यपि कर्ता में निषेध है तथापि बहुलग्रहण से कर्ता में किप्रत्यय होता है।

सन्धानम् सन्धिः यहां सम्पूर्वक धा धातु से किप्रत्यय भाव में होता है।

पाठगत प्रश्न-2

11. भाव क्या है?
12. भाव में व कर्तृ भिन्न कारक में कौन-सा कृत्प्रत्यय होता है?
13. घञि च भावकरणयोः इस सूत्र से क्या होता है?
14. चयः यहां कौन-सा कृत्प्रत्यय व किस सूत्र से है?
15. ऋदोरप् इसका क्या अर्थ है?
16. प्रश्नः यहां कौन-सा कृत्प्रत्यय व किस सूत्र से है?
17. उपसर्गे घोः किः इसका क्या अर्थ है?
18. उपसर्गे घोः किः इसका उदाहरण क्या है?

इसके बाद स्त्रियाम् इसके अधिकार में पठित कृत्प्रत्ययों की आलोचना आरम्भ होती है और वहां क्तिन् यह मुख्य प्रत्यय है अतः आदि में प्रारम्भ किया जाता है-

29.13 स्त्रियां क्तिन्॥ (3.3.94)

सूत्रार्थ- स्त्रीलिङ्ग में भाव में क्तिन् होवे।

सूत्रव्याख्या- यह विधिसूत्र पदद्वयात्मक है। इस सूत्र से क्तिन्प्रत्यय होता है। स्त्रियाम् (7/1) क्तिन् (1/1) यह सूत्रगतपदच्छेद है। प्रत्ययः (1/1), परः (1/1), धातोः (5/1) इन तीन का अधिकार यहां आता है। भावे, अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् इन दोनों सूत्रों का अनुवर्तन यहां होता है। सूत्रार्थ होगा-

ध्यान दें:

स्त्रीत्वविशिष्ट भावार्थ में संज्ञाविषयक कर्तृभिन्नकारकार्थ में धातु से परे कृत्संज्ञक क्तिन् प्रत्यय होता है। क्तिन का ककार और नकार इत है। उससे तिमात्र बचता है। नकारानुबन्ध स्वार्थ के लिये है। ककारानुबन्ध गुणनिषेध के लिये, अनुनासिकलोप, व सम्प्रसारण इत्यादि कार्यों के लिये है। इस सूत्र से विहित प्रत्यय कृदतिङ् इससे कृत्संज्ञक होता है। भावे यह सूत्र सामान्यत: भावार्थ में घञ्प्रत्यय का विधान करता है परन्तु स्त्रीत्वविशिष्ट भाव में प्रत्यय विधान इससे किया जाता है इस तरह यह क्तिन्प्रत्यय घञ् का अपवाद होता है। यद्यपि एरच् व ऋदोरप् इन दोनों से विधीयमान प्रत्यय विशेषधातुओं से विहित होने के कारण घञ् के अपवाद होते हैं तथापि विप्रतिषेध न्याय से उन दोनों को बाधित करता है यह प्रत्यय।

उदाहरण- कृति:। स्तुति:

सूत्रार्थसमन्वय- करणम् कृति: यहां डुकृञ् करणे (तनादि. उभय) इस धातु से प्रकृतसूत्र से क्तिन्प्रत्यय करने व अनुबन्धलोप करने पर कृ ति ऐसा होने पर कृधातु के अनिट्त्व होने के कारण इट् नहीं होता है। क्तिनक आर्धधातुक होने के कारण सार्वधातुकार्धधातुकयो: इससे प्राप्त गुण का क्तिन के कित्त्व के कारण क्ङिति च इससे निषेध होता है। उससे कृति इस समुदाय के कृदन्तत्व होने से कृत्तद्धितसमासाश्च इससे प्रातिपदिकसंज्ञा होने पर सुविभक्ति होने पर मतिशब्दरूप की तरह प्रक्रिया से कृति: यह रूप सिद्ध होता है। क्तिन्नन्तशब्द: क्तिन्नन्त: (लिङ्गानुशासनम्-9) इससे स्त्रीलिङ्ग होता है। ष्टुञ् स्तुतौ (अदादि. उभय) इस धातु से क्तिन्प्रत्यय होने पर स्तुति: यह रूप बनता है। प्रक्रिया तो पूर्ववत् जाननी चाहिये। इस तरह अन्यत्र भी समझना चाहिये। सेट्धातुओं से विहित क्तिन से इडागम नहीं होता है तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च इससे निषेध होने के कारण। यथा दीप्धातु से क्तिन होने पर दीप्ति: यह रूप बनता है।

अब अप्रत्ययविधायक सूत्र आरम्भ किया जाता है -

29.14 अ प्रत्ययात्॥ (3.3.102)

सूत्रार्थ- प्रत्ययान्त धातुओं से स्त्रीलिङ्ग में अ प्रत्यय होता है।

सूत्र व्याख्या- यह विधि सूत्र है। इस सूत्र से अ -प्रत्यय विहित होता है। अ: (1/1) प्रत्ययात् (5/1) यह सूत्रगतपदच्छेद है। अ यहां लुप्तविभक्तिक निर्देश है। स्त्रियां क्तिन् यहां से स्त्रियाम् (7/1) इस पद की अनुवृत्ति आति है। प्रत्यय: (1/1), पर: (1/1), धातो: (5/1) इन तीन का अधिकार यहां आता है। भावे, अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् इन दोनों सूत्रों का अनुवर्तन यहां होता है। प्रत्ययात् यह धातु का विशेषण है तदन्तविधि में प्रत्ययान्त धातु का यह अर्थलाभ है। सूत्रार्थ होता है- प्रत्ययान्त धातुओं से स्त्रीलिङ्ग में अ प्रत्यय होता है भावार्थ में संज्ञा विषयक कर्तृभिन्न कारकार्थ में। जब किसी धातु से सन् -यङादिप्रत्यय होता है अथवा किसी प्रातिपदिक से काम्यजादिप्रत्यय होता है तब सनाद्यन्ता धातव: इससे धातुसंज्ञा होती है। तत: उस धातु से स्त्रीत्वविशिष्ट भावार्थ में संज्ञाविषयक कर्तृभिन्नकारकार्थ में प्रकृतसूत्र से अप्रत्यय होता है। यह प्रत्यय: क्तिन्प्रत्यय का अपवाद है। इस सूत्र से विहित प्रत्यय कृत् तिङ् इससे कृत्संज्ञक होता है।

उदाहरण-चिकीर्षा।

सूत्रार्थ समन्वय- कर्तुमिच्छा चिकीर्षा यहां डुकृञ् करणे (तनादि. उभय) इस धातु से सन् होने पर प्रक्रिया से चिकीर्ष यह होने पर इस समुदाय की सनाद्यन्ता धातव: इससे धातुसंज्ञा होती है। तत: सन्प्रत्ययान्त चिकीर्ष इस धातु से स्त्री त्वविशिष्टा भावार्थ में प्रकृतसूत्र से चिकीर्ष अ ऐसा होने पर अप्रत्यय की आर्धधातुकं शेष: इससे आर्धधातुकसंज्ञा होने पर अतो लोप: इससे सन् के अकारलोप करने पर चिकीर्ष्

ध्यान दें:

अ यह हो जाता है। पुनः स्त्रीत्व की विवक्षा में अजाद्यतष्टाप् से टाप् करने, अनुबन्धलोप व सवर्णदीर्घ करने पर चिकीर्षा इस आबन्तशब्द से ङ्याप्प्रातिपदिकात् इस अधिकार सूत्र के सहयोग से प्रथमा एककवचन में सुप्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप होने पर अपृक्तसकार का हल्ङ्यादिसूत्र से लोप करने पर चिकीर्षा यह रूप सिद्ध होता है। इसी तरह पठितुम् इच्छा पिपठिषा इत्यादिरूप सिद्ध होते हैं।

[सूत्रम् अतो लोपः (6.4.48) = आर्धधातुकोपदेश में जो अदन्त है उस आकार का लोप आर्धधातुक परे होने पर होता है।]

अप्रत्यय विधायक दूसरा सूत्र प्रारम्भ होता है-

29.15 गुरोश्च हलः॥ (3.3.103)

सूत्रार्थ- गुरुमामन् हलन्तात् स्त्रीलिङ्ग में अ प्रत्यय होता है।

सूत्र व्याख्या- यह विधिसूत्र पदत्रयात्मक है। इस सूत्र से अप्रत्यय होता है। गुरोः (5/1) च (अव्यय) हलः (5/1) यह सूत्रगतपदच्छेद है। प्रत्ययः (1/1), परः (1/1), धातोः (5/1) इन तीनों का अधिकार यहां आता है। स्त्रियाम्, भावे, अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् ये तीन सूत्र भी अधिकृत हैं। अ प्रत्ययात् इससे अ (1/1) यह पद अनुवर्तित है। हलः यह धातु का विशेषण है। अतः तदन्तविधि में हलन्त धातु से यह अर्थलाभ है। गुरोः यह धातु का विशेषण है। परन्तु तदन्तविधि नहीं होती है क्योंकि हलन्तधातु कभी भी गुरुमान नहीं होता है। अतः गुरुमान यह मत्वर्थीय की तरह प्रयोग है। गुरु अस्य अस्तीति गुरुमान्। संयोगे गुरु, दीर्घञ्च इन सूत्रों से गुरुसंज्ञा होती है। गुरुसंज्ञक वर्ण जिस धातु में होता है वह धातु गुरुमान् होती है। सूत्रार्थ होता है- हलन्त गुरुसंज्ञकवर्णयुक्त धातु से परे अप्रत्यय होता है स्त्रीत्वविशिष्ट भावार्थ में संज्ञाविषयक कर्तृभिन्नकारकार्थ में। इस सूत्र से विहित प्रत्यय कृत्संज्ञक होता है। यह योग क्तिन्प्रत्यय का अपवाद है।

उदाहरण-ईहा।

सूत्रार्थ समन्वय- ईह् चेष्टायाम् यह धातु गुरुमान् है और हलन्त भी है। अतः स्त्रीत्वविशिष्टभावार्थ में प्रकृत सूत्र से अप्रत्यय होने पर ईह् अ यह कृदन्तसमुदाय हो गया। पुनः स्त्रीत्वविवक्षा में अजाद्यतष्टाप् इससे टाप करने पर अनुबन्धलोप व सवर्णदीर्घ होने पर ईहा इस आबन्तशब्द से प्रथमा एकवचन में सुप्रत्यय व अनुबन्धलोप करने पर अपृक्तसकार की हल्ङ्यादिसूत्र से लोप होने पर ईहा यह रूप सिद्ध होता है।

डुकृञ् करणे (तनादि. उभय. अनिट्) इस धातु से हेतुमति च इस से हेतुमान णिच् करने पर अनुबन्धलोप व वृद्धि में रपरत्व में कारि ऐसा होने पर सनाद्यन्ता धातवः इससे धातुसंज्ञा करने पर प्रत्ययान्त होने से स्त्रीत्वविशिष्टभावार्थ में अ प्रत्ययात् इससे अप्रत्यय प्राप्त होने पर यह सूत्र आरम्भ होता है-

29.16 ण्यासश्रन्थो युच्॥ (3.3.107)

सूत्रार्थ- ण्यन्त धातु से आस्धातु से और श्रन्थ्धातु से युच् -प्रत्यय होवे स्त्रीत्वविशिष्ट भावार्थ में संज्ञाविषयक कर्तृभिन्नकारकार्थ में।

सूत्र व्याख्या- यह विधिसूत्र पदद्वयात्मक है। इस सूत्र से युच्प्रत्यय होता है। ण्यासश्रन्थः (5/1) युच् (1/1) यह सूत्रगतपदच्छेद है। प्रत्ययः (1/1), परः (1/1), धातोः (5/1) इन तीनों का अधिकार यहां आता है। स्त्रियाम्, भावे, अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् ये तीन सूत्र भी अधिकृत हैं। अ प्रत्ययात् इससे अ (1/1) यह पद अनुवर्तित है। ण्यासश्रन्थः यह धातु का विशेषण है। णि (णिच् णिङ्) यह प्रत्यय है।

ध्यान दें:

अत: तदन्तविधि में ण्यन्त धातु से यह अर्थलाभ है। आस्, श्रन्थ् ये दो धातुएं हैं। सूत्रार्थ होता है - हलन्त गुरुसंज्ञकवर्णयुक्त धातु से परे युचप्रत्यय होता है स्त्रीत्वविशिष्ट भावार्थ में संज्ञाविषयक कर्तृभिन्नकारकार्थ में। इस सूत्र से विहित प्रत्यय कृत्संज्ञक होता है। युच के चकार की इत्संज्ञा हलन्त्यम् से हुई। चकार का अनुबन्ध चित: इस सूत्र से अन्तोदात्तस्वरार्थ है। यहां स्वार्थिक णिच व हेतुमान णिच होता है। यह अ प्रत्यय का बाधक है।

उदाहरण- कारणा। हारणा।

सूत्रार्थ समन्वय- पूर्वोक्त प्रकार से कारि इस धातु से अप्रत्यय प्राप्त होने पर उसका अपवादत्वेन प्रकृतसूत्र से बाध होकर युच के अनुबन्धलोप होने पर युवोरनाकौ इससे यु के स्थान पर अनादेश होने पर कारि अन ऐसा होने पर णेरनिटि इससे णि का लोप होने पर कार् अन ऐसा होने पर 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' इससे नकार के णकारादेश होने पर अजाद्यतष्टाप् इससे टाप् अनुबन्धलोप व सवर्णदीर्घ करने पर कारणा यह बनता है। तत: इस समुदाय का आबन्त से सुप्रत्यय होने पर हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल् इससे सु का लुक होने पर कारणा यह रूप बनता है। इसी तरह हृधातु से प्रक्रिया से हारणा यह रूप सिद्ध होता है।

अब भावार्थकक्तप्रत्यय निरूपित किया जाता है -

29.17 नपुंसके भावे क्त:॥ (3.3.114)

सूत्रार्थ:- क्लीबत्वविशिष्ट भाव में कालसामान्य में क्त होवे।

सूत्र व्याख्या- यह विधिसूत्र पदत्रयात्मक है। इस सूत्र से क्तप्रत्यय होता नपुंसके (7/1) भावे (7/1) क्त: (1/1) इति सूत्रगतपदों का विभक्तिनिर्देश है। प्रत्यय: (1/1), पर: (1/1), धातो: (5/1) इन तीनों का अधिकार यहां आता है। भावे इससे भावसामान्य में घञ् का विधान है। स्त्रियां क्तिन् इससे स्त्रीत्वविशिष्टभाव में क्तिन का विधान होता है। अत: पारिशेष्य से पुंस्त्वविशिष्टभाव में घञ् का विधान है। इससे पूर्व निष्ठाप्रत्ययविधायकस्थल पर भावार्थ में क्तप्रत्यय का विधान किया गया है। किन्तु वह भूतकालविशिष्टभाव में विहित है। यहां कालसामान्य में क्तप्रत्यय का विधान किया गया है। यह यहां विशेष है। सूत्रार्थ होता है- नपुंसकत्वविशिष्ट भावार्थ में कालसामान्य में धातु से परे क्तप्रत्यय होता है। इस सूत्र से विहित प्रत्यय कृत् तिङ् इससे कृत्संज्ञक भी होता है। क्तप्रत्यय के ककार की इत्संज्ञा लशक्वतद्धिते इससे होती है।

उदाहरण- हसितम्।

सूत्रार्थसमन्वय- हसितम् यहां हस हसने (भ्वादि. परस्मै. सेट्) इस धातु से नपुंसकत्वविशिष्ट भावर्थ में प्रकृतसूत्र से क्तप्रत्यय व अनुबन्धलोप करने पर 'आर्धधातुकं शेष:' इससे क्तप्रत्यय की आर्धधातुक संज्ञा होने पर आर्धधातुकस्येड्वलादे: इससे इडागम होने पर हसित यह बनता है। तत: इस समुदाय की कृदन्त होने से 'कृत्तद्धितसमासाश्च' इससे प्रातिपदिक संज्ञा होने व सुविभक्ति को नपुसंकलिङ्ग में सु को अमादेश होने पर अमि पूर्व: इस से पूर्वरूपैकादेश करने पर हसितम् यह रूपं सिद्ध होता है। ऐसा अन्यत्र भी समझना चाहिये।

नपुंसकत्वविशिष्ट में भावार्थ में ल्युट्प्रत्यय के विधान के लिये यह सूत्र प्रारम्भ होता है -

29.18 ल्युट् च॥ (3.3.115)

ध्यान दें:

सूत्रार्थः- क्लीबत्वविशिष्ट भाव में ल्युट् होवे।

सूत्र व्याख्या- यह विधिसूत्र द्विपदात्मक है। इस सूत्र से ल्युट्प्रत्यय होता है। ल्युट् (1/1) च (अव्ययम्) यह सूत्रगतपदों का विभक्ति निर्देश है। प्रत्ययः (1/1), परः (1/1), धातोः (5/1) इन तीनों यहां अधिकृत है। नपुसंके भावे क्तः इस सूत्र से नपुंसके (7/1) भावे (7/1) इन दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। सूत्रार्थ होता है - नपुंसकत्व विशिष्ट भावार्थ में धातु से परे ल्युट्प्रत्यय होवे। इस सूत्र से विहित प्रत्यय कृत् तिङ् इससे कृत्संज्ञक भी होता है। ल्युट्प्रत्यय के लकार की इत्संज्ञा लशक्वतद्धिते इससे, और टकार की हलन्त्यम् इससे होती है। उससे यु-मात्र बचता है। ल्युट के टकारानुबन्ध होने से टिड्ढाणञादिसूत्र से ङीब्विधान के लिये, लकारानुबन्ध और लिति इससे आद्युदात्तस्वरार्थ है।

उदाहरण-हसनम्।

सूत्रार्थसमन्वय- हसनम् यहां हस हसने (भ्वादि. परस्मै. सेट्) इस धातु से नपुसंकभाव में प्रकृतसूत्र से ल्युट्प्रत्यय व अनुबन्धलोप होने पर हस् यु ऐसा बनता है। ततः यु इसके स्थान पर युवोरनाकौ इससे अन् आदेश होने पर हस् अन् ऐसा होता है। और इस समुदाय की कृदन्त होने के कारण कृत्तद्धितसमासाश्च इससे प्रातिपदिक संज्ञा हुई। ततः भावे ल्युडन्तः (लिङ्गानुशासनम् - 119) इस वचन से भावार्थ में विहित ल्युडन्त शब्द नपुंसकलिङ्ग में प्रयुक्त होता है। उससे नपुसंकलिङ्ग में सुविभक्ति के सु को अमादेश होकार अमि पूर्वः इससे पूर्वरूप एकादेश होने पर हसनम् यह रूप सिद्ध होता है। ऐसा अन्यत्र भी समझना चाहिये।

29.19 हलश्च॥ (3.3.121)

सूत्रार्थ- हलन्त धातु से घञ्प्रत्यय होता है।

सूत्रव्याख्या- यह विधिसूत्र पदद्वयात्मक है। इस सूत्र से घञ्प्रत्यय होता है। हलः (5/1) च (अव्ययम्) यह सूत्रगतपदच्छेद है। करणाधिकरणयोश्च यहां से करणाधिकरणयोः (7/2) इस पद की अनुवृत्ति आती है। अवे स्तृस्त्रोर्घञ् यहां से घञ् (1/1) इस पद की अनुवृत्ति आती है। पुंसि (7/1) संज्ञायाम् (7/1) घः (1/1) प्रायेण (3/1) इसकी अनुवृत्ति आती है। प्रत्ययः (1/1), परः (1/1), धातोः (5/1) इन तीनों पदों का अधिकार आता है। भावे, अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् इन दोनों सूत्रों की अनुवृत्ति आती है। हलः यह धातु का विशेषण है। उससे तदन्तविधि में हलन्त धातु से यह अर्थलाभ है। सूत्रार्थ होता है- करणकारक व अधिकरणकारक में हलन्त धातु से घञ्प्रत्यय होता है पुंस्त्वविशिष्टसंज्ञा गम्यमान होने पर। पुंसि संज्ञायाम् घः प्रायेण इस सूत्र से प्राप्त घप्रत्यय का अपवाद है यह घप्रत्यय। इससे विहित प्रत्यय कृदतिङ् इससे कृत्संज्ञक प्रत्यय होता है।

उदाहरण - रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति रामः (दशरथनामधेय) अथवा रमते लोकोऽस्मिन्निति रामः दशरथनन्दनः।

सूत्रार्थ समन्वय- राम यहां रमु क्रीडायाम् इस हलन्तधातु से (भ्वादि. आत्मने. अनिट्) प्रकृत सूत्र से अधिकरणकारक में घञ् के अनुबन्धलोप होने पर अतः उपधायाः इससे धातु की उपधावृद्धि होने पर राम यह पद बनता है। ततः इस समुदाय का कृदन्तत्व होने से कृत्तद्धितसमासाश्च इससे प्रातिपदिक संज्ञा में सुविभक्ति होने पर रामः यह रूप सिद्ध होता है।

ध्यान दें:

पाठगत प्रश्न-3

19. स्त्रीलिङ्ग में भाव में कौन-सा प्रत्यय होता है?
20. स्त्रियां क्तिन् इसका उदाहरण क्या है?
21. अ प्रत्ययात् इसका क्या अर्थ है
22. गुरोश्च हलः इसका क्या अर्थ है?
23. ण्यासश्रन्थो युच् इसका क्या अर्थ है?
24. नपुंसके भावे क्तः इसका क्या अर्थ है?
25. ल्युट् च इसका क्या अर्थ है?
26. हलन्त धातु से घञ् प्रत्यय विधायक सूत्र कौन-सा है?
27. चिकीर्षा यहां कौन-सा कृत्प्रत्यय है?
28. कारणा, हारणा इत्यादि में कौन-सा कृत्प्रत्यय है?
29. हसितम् यहां कौन-सा कृत्प्रत्यय है और किस से?
30. हसनम् यहां कौन-सा कृत्प्रत्यय है और किस से?
31. हलश्च इसका क्या उदाहरण है?

अब अत्यन्त प्रसिद्ध क्त्वा -प्रत्यय का निरूपण किया जाता है -

29.20 अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा॥ (3.4.18)

सूत्रार्थ- प्रतिषेधार्थक अलं और खलु के उपपद रहते क्त्वा प्रत्यय होता है।

सूत्र व्याख्या- यह विधिसूत्र पदचतुष्टयात्मक है। इस सूत्र से क्त्वाप्रत्यय होता है। अलंखल्वोः (7/2) प्रतिषेधयोः (7/2) प्राचां (6/1) क्त्वा (1/1) यह सूत्रगतपदच्छेद है। प्रत्ययः (1/1), परः (1/1), धातोः (5/1) इन तीनों का अधिकार यहां आता है। अलं च खलु च अलंखलू, तयोः अलंखल्वोः इति इतरेतरयोगद्वन्द्व समास है। अलंखल्वोः यह सप्तम्यन्त पद है। अतः तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् इसके अनुसार उपपद है। सूत्रार्थ- प्रतिषेधार्थ में वर्तमान अलंखलु के उपपद रहते धातु से परे क्त्वाप्रत्यय होवे। और यह अर्थ प्राचीन आचार्यों के द्वारा आविष्कृत है, उनका समाम्नाय सूत्र में आचार्य पाणिनि ने प्राचां ग्रहण किया है। क्त्वा यहां ककार की इत्संज्ञा लशक्वतद्धिते इस सूत्र से होती है। उससे त्वा यही शेष बचता है। ककारानुबन्ध गुणवृद्धिनिषेध सम्प्रसारणादिकार्य के लिये है। क्तवातोसुन्क्वसुनः इससे क्तवान्त की अव्यय संज्ञा, क्त्वाप्रत्यय की कृत् तिङ् इससे कृत्संज्ञक भी है। अव्ययकृत भावे इससे यह प्रत्यय भाव में होता है।

उदाहरण- अलं दत्त्वा। पीत्वा खलु।

सूत्रार्थ समन्वयः- अलं दत्त्वा इस उदाहरण में अलम् यह निषेधार्थक अव्यय उपपद है। अतः डुदाञ् दाने (जुहोत्यादि. उभय. अनिट्) इस धातु से प्रकृतसूत्र से भाव में क्त्वाप्रत्यय व अनुबन्धलोप होने पर धातु के अनुदात्त होने के कारण इट्निषेध होने पर दो दद्घोः इससे दा इसके स्थान पर दद यह सर्वादेश

ध्यान दें:

होने पर खरि च इससे चर्त्व होने पर अलम् दत्त्वा यह प्रयोग बनता है। ततः इस समुदाय की कृदन्त होने के कारण कृत्तद्धितसमासाश्च इससे प्रातिपदिकसंज्ञा होने पर औत्सर्गिक प्रथमैकवचन में सुविभक्ति होती है। क्त्वातोसुन्क्वसुनः इससे क्त्वान्त की अव्ययसंज्ञा होने पर अव्ययादाप्सुपः इससे सु का लुक् और अव्यय होने के कारण अलम् इसके पदान्तमकार को मोऽनुस्वारः इससे अनुस्वार होने पर अलं दत्त्वा यह प्रयोग बनता है।

पीत्वा खलु इस उदाहरण में अलम् यह निषेधार्थक अव्यय है व उपपद है। अतः पा पाने (भ्वादि. परस्मै. अनिट्) इस धातु से प्रकृतसूत्र से भाव में क्त्वाप्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप करने पर धातु के अनुदात्त होने से इट्निषेध होता है। ततः हलादि कित् आर्धधातुक क्त्वाप्रत्यय परे है ऐसा करके घुमास्थागापाजहातिसां हलि इस सूत्र से पा इसके आकार के स्थान पर ईकारादेश होने पर पूर्ववत् विभक्तिकार्य होने पर पीत्वा खलु यह प्रयोग सिद्ध होता है।

अब क्त्वाप्रत्ययविधायक अतीव प्रसिद्ध सूत्र आरम्भ होता है -

29.21 समानकर्तृकयोः पूर्वकाले॥ (3.4.21)

सूत्रार्थ- समान कर्ता वाले धातु से पूर्वकाल में विद्यमान धातु से क्त्वा प्रत्यय होता है।

सूत्र व्याख्या- यह विधिसूत्र पदद्वयात्मक है। इस सूत्र से क्त्वाप्रत्यय होता है। समानकर्तृकयोः (6/2 -निर्धारणे षष्ठी/सप्तमी) पूर्वकाले (7/1) यह सूत्रगत पदों का विभक्तिनिर्देश है। अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा यहां से क्त्वा (1/1) इसकी अनुवृत्ति आती है। प्रत्ययः (1/1), परः (1/1), धातोः (5/1) इन तीनों का अधिकार यहां आता है। भावे, अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् इन दोनों सूत्रों का अनुवर्तन यहां होता है। समानः कर्ता ययोः तौ समानकर्तृकौ तयोः समानकर्तृकयोः इति बहुव्रीहि समासः। पूर्वश्चासौ कालः पूर्वकालः। सूत्र में अधिकृत धातोः इसका धात्वर्थ यह अर्थ है। ततः धात्वर्थक साथ समानकर्तृकयोः, पूर्वकाले इन दोनों का सम्बन्ध होता है। सूत्रार्थ होगा- समानकर्ता वाले धात्वर्थ का जो धात्वर्थ है पूर्वकाल में वर्तमान तद्वाचक धातु से क्त्वाप्रत्यय होवे। इस सूत्र से विहित प्रत्यय कृत् तिङ् इससे कृत्संज्ञक होता है।

उदाहरण- भुक्त्वा व्रजति।

सूत्रार्थ समन्वय- भुक्त्वा व्रजति यहां भोजनक्रिया और गमनक्रिया ये दो क्रियाएं है। और वहां भोजनक्रिया पूर्वकालिक है क्योंकि कर्ता आदि और उस क्रिया को करता है। अतः पूर्वकालिक भोजनक्रियावाचक भुज् धातु का (भुज पालनालव्यवहारयोः रुधादि. परस्मै. अनिट्) प्रकृतसूत्र से क्त्वाप्रत्यय व अनुबन्धलोप होने पर चोः कुः इससे जकार को गकार होने पर खरि च इससे गकार को ककार होने पर भुक्तवा यह बनता है। ततः भुक्तवा इस समुदाय का कृदन्त होने से कृत्तद्धितसमासाश्च इससे प्रातिपदिक संज्ञा होने पर औत्सर्गिक प्रथमा एकवचन में और उसका लुक होने पर भुक्तवा यह रूप सिद्ध होता है। क्त्वाप्रत्यय वलादि आर्धधातुक प्रत्यय है। अतः इडागम और लघूपधगुण प्राप्त है। वहां इट का एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् इस से निषेध होता है। क्त्वा कित होने के कारण क्ङिति च इससे गुणनिषेध होता है। जहां अनेक धात्वर्थ हैं। वहां भी जो पूर्वकालिक धात्वर्थ है तद्वाचक धातुओं से क्त्वाप्रत्यय होता है। उससे भुक्तवा पीत्वा व्रजति इत्यादि प्रयोग सिद्ध होते हैं।

समास में क्त्वा के स्थान पर ल्यबादेश करने के लिये यह सूत्र आरम्भ होता है -

ध्यान दें:

29.22 समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्॥ (7.1.37)

सूत्रार्थ- अव्यय पूर्व पद होने पर अनञ्समास में क्त्वा को ल्यबादेश होता है।

सूत्र व्याख्या- यह विधि सूत्र पदचतुष्टयात्मक है। इस सूत्र से ल्यप् आदेश होता है। समासे (7/1) अनञ्पूर्वे (7/1) क्त्वः (6/1) ल्यप् (1/1) इति सूत्रगतपदच्छेदः। न नञ् अनञ् इति नञ्तत्पुरुषसमासः। अनञ् पूर्वम् (पूर्वपदम्) यस्मिन् सः अनञ्पूर्वः। तस्मिन् अनञ्पूर्वे इति बहुव्रीहि समास है। अनञ्पूर्व यह समास का विशेषण है। अनञ् यह पर्युदासप्रतिषेध है। पर्युदास सदृशग्राही है। अतः नञ् इससे तद् भिन्न तत्सदृश का ही ग्रहण है। नञ् यह अव्यय है। सूत्रार्थ होगा- जिस समास में नञ् भिन्न नञ्सदृश वा भिन्न कोई अव्यय पूर्वपद होता है तो उस समास में उत्तरपदस्थ क्त्वा के स्थान पर ल्यप् यह आदेश होता है। क्त्वा आर्धधातुक कित्प्रत्यय है। अतः उसके स्थान पर विधीयमान ल्यबादेश भी स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ इससे प्रत्यय, कित्, और आर्धधातुक है। क्त्वातोसुन्क्वसुनः इससे क्त्वान्त की अव्ययसंज्ञा है अतः ल्यबन्त की अव्ययसंज्ञा है। ल्यप के प्रत्ययसंज्ञक होने के कारण लशक्वतद्धिते इससे लकार की इत्संज्ञा व पकार की हलन्त्यम् इससे इत्संज्ञा हुई। उससे य -मात्र शेष रहता है। ल्यप् के अनेकाल होने के कारण अनेकाल्शित्सर्वस्य इससे सर्वादेश हुआ है। पकारानुबन्ध पित्कार्यार्थ है। लकारानुबन्ध लिति इस से आद्युदात्तस्वरार्थ है।

उदाहरण - प्रकृत्य।

सूत्रार्थ समन्वय- (प्रकर्षेण कृत्वा) प्रकृत्य यहां डुकृञ् करणे (तनादि. उभय. अनिट्) इस धातु से पूर्वकाल में समानकर्तृकयोः पूर्वकाले इससे क्त्वाप्रत्यय के अनुबन्धलोप होने पर क्त्वा के आर्धधातुक होने के कारण आर्धधातुकस्येड्वलादेः इससे इडागम प्राप्त होने पर एकाच उपदेशऽनुदात्तात् इससे तन् निषेध में कित्त्व होने के कारण आर्धधातुकगुण का निषेध कृ त्वा यह बनता है। ततः प्र इस अव्यय के साथ कृत्वा इसका कुगतिप्रादयः इससे प्रादिसमास है। समास में प्र कृत्वा यहां प्र यह अव्यय है। और यह नञ से भिन्न है। अतः उत्तरदस्थ क्त्वा के स्थान पर ल्यबादेश व अनुबन्धलोप करने पर प्र कृ य ऐसा होने पर ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् इससे तुगागम व अनुबन्धलोप होने पर कित्त्व होने से आद्यन्तौ टकितौ इस परिभाषा से अन्त्यावयव में प्र कृ त् य यह बनता है। और इस समुदाय का समासत्व होने के कारण कृत्तद्धितसमासाश्च इससे प्रातिपदिकसंज्ञा होने पर औत्सर्गिक प्रथमा एकवचन में सुविभक्ति में ल्यबन्त की अव्ययसंज्ञा होने से अव्ययादाप्सुपः इससे सु के लुक होने पर प्रकृत्य यह रूप सिद्ध होता है।

यहां विशेष है- धातु के साथ जब उपसर्गयोग होता है तब ल्यप्प्रत्यय होता है। केवल धातु से तो क्त्वाप्रत्यय यह विशेष है यहां।

णमुल्प्रत्ययविधायक अग्रिम सूत्र प्रारम्भ होता है -

29.23 आभीक्ष्ण्ये णमुल् च॥ (3.4.22)

सूत्रार्थ- आभीक्ष्ण्य गम्यमान होने पर पूर्वविषय में णमुल् और क्त्वा प्रत्यय होते हैं।

सूत्र व्याख्या- यह विधिसूत्र पदत्रयात्मक है। इस सूत्र से णमुल्प्रत्यय होता है। आभीक्ष्ण्ये (7/1) णमुल् (1/1) च (अव्ययम्) इति सूत्रगत पदों का विभक्तिनिर्देश है। प्रत्ययः (1/1), परः (1/1), धातोः (5/1) इनका अधिकार यहां अता है। समानकर्तृकयोः (7/2) पूर्वकाले (7/1) इन दोनों सूत्रों का अनुवर्तन है। अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा यहां से क्त्वा (1/1) इस पद की अनुवृत्ति आती है। इस सूत्र से विहित प्रत्यय कृत्संज्ञक होता है। अभीक्ष्णम् अर्थात पुनः पुनः। पौनःपुन्य गम्यमान होने पर

ध्यान दें:

समानकर्तृक धात्वर्थ का जो धात्वर्थ पूर्वकाल में वर्तमान होता है तद्वाचक धातु से परे णमुल्प्रत्यय और क्त्वाप्रत्यय होवे। णमुल के लकार की हलन्त्यम् से इत्संज्ञा और, णकार की चुटू इससे। उकार उच्चारणार्थ है। तेन अम्-मात्र शेष रहता है। णकारानुबन्ध वृद्धियुगागम के लिये। लकारानुबन्धः लिति इस उदात्तस्वरार्थ है।

उदाहरण- स्मारम् स्मारम् नमति शिवम्। यहां स्मृ चिन्तायाम् (भ्वादि. परस्मै. अनिट्) यह धातु, नम् (णम प्रह्वत्वे शब्दे च, भ्वादि. परस्मै. अनिट्)और यह धातु दोनों ही अपि समानकर्तृक हैं। यहां स्मृधात्वर्थ स्मरण का पूर्वकालिक है और स्मृधात्वर्थ का पौनःपुन्य गम्यमान है। अतः प्रकृतसूत्र से स्मृधातु से पर्याय से णमुल् और क्त्वा प्रत्यय होते हैं। णमुल्पक्ष में अनुबन्धलोप होने पर स्मृ अम् ऐसा होने पर णमुल् के णित् होने के कारण अचो ञ्णिति इससे अजन्ताङ्ग को वृद्धि होकर स्मारम् यह बनता है। इस समुदाय का समासत्व होने के कारण कृत्तद्धितसमासाश्च इससे प्रातिपदिकसंज्ञा होने पर कृन्मेजन्तः इससे अव्ययसंज्ञा होने पर औत्सर्गिक प्रथमा एकवचन में सुविभक्ति में अव्ययादाप्सुपः इससे सु के लुक होने पर स्मारम् यह रूप सिद्ध होता है। ततः इस कृदन्त के द्वित्वार्थ के लिये अग्रिमसूत्र आरम्भ होता है -

29.24 नित्यवीप्सयोः॥ (8.1.4)

सूत्रार्थ- आभीक्ष्ण्ये वीप्सायां च द्योत्ये पदस्य द्वित्वं स्यात्।

सूत्र व्याख्या- यह विधिसूत्र एकपदात्मक है। इस सूत्र से द्वित्व होता है। नित्यवीप्सयोः यह सप्तमीद्विवचनान्त पद है। पदस्य (6/1)यह अधिकारसूत्र है। सर्वस्य (6/1) द्वे (1/2) इन दोनों का अधिकार यहां अता है। नित्यं च वीप्सा च नित्यवीप्से तयोः नित्यवीप्सयोः इति इतरेतरयोगद्वन्द्व समास। यहां नित्यशब्द का पौनःपुन्य यह अर्थ है। व्याप्तुम् इच्छा वीप्सा। किसी गुण से अथवा क्रिया से अनेक अर्थों को व्याप्त कर विवक्षा है तो वीप्सा कहलाता है। नित्यवीप्सयोः अर्थ में द्योतित सम्पूर्ण पद के स्थान पर दो शब्दरूप में आदेश होते हैं यह सूत्रार्थ है। इससे उस कृदन्तपद की दो बार आवृत्ति होती है।

उदाहरण- आभीक्ष्ण्य तिङन्तों में अव्ययसंज्ञकों में व कृदन्तों में ही संभव होता है। पचति पचति। पठति पठति। ये तिङन्त के उदाहरण है। अव्ययसंज्ञककृदन्त का उदाहरण - स्मारं स्मारं नमति शिवम्। स्मृत्वा स्मृत्वा। इति।

सूत्रार्थ समन्वयः- पूर्वोक्त प्रकार से स्मारम् इसका अव्ययसंज्ञककृदन्त होने के कारण स्थानिवद्भाव से पदसंज्ञक होने के कारण नित्यवीप्सयोः यह स्मारम् द्वित्व करने में मोऽनुस्वार स्मारं स्मारं नमति शिवम् यह प्रयोग होता है।

आभीक्ष्ण्ये णमुल् च इसके योग से णमुल् के साथ क्त्वाप्रत्यय का भी विधान किया गया है। अतः क्त्वाप्रत्यय में स्मृत्वा इस अव्ययसंज्ञकपद होने से प्रकृतसूत्र से द्वित्व होने पर स्मृत्वा स्मृत्वा नमति शिवम् यह प्रयोग भी बनता है। इसी तरह अन्यत्र भी समझना चाहिये।

पाठगत प्रश्न-4

32. अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा इस सूत्र से कौन सा कृत्प्रत्यय होता है?

33. अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा इस सूत्र में प्राचांग्रहणम् विकल्पार्थ है अथवा पूज्यार्थ?

34. समानकर्तृकयोः पूर्वकाले इसका क्या अर्थ है?

35. क्त्वा-प्रत्यय के स्थान पर ल्यबादेशविधायक सूत्र कौन-सा है?

पाठ-29

उत्तर कृदन्तम्

ध्यान दें:

36. आभीक्ष्ण्ये णमुल् च इसका क्या अर्थ है?

37. नित्यवीप्सयोः इस सूत्र से क्या विहित होता है?

38. आभीक्ष्ण्ये णमुल् च इसका क्या उदाहरण है?

पाठ सार

इस पाठ में तुमुन्प्रत्यय किस अर्थ में होता है इससे सम्बन्धित चर्चा आदि में ही की गई है। तुमुन्प्रत्ययविषय में पांच सूत्र सोदाहरण बताये गये हैं। ततः भावार्थ में घञ्प्रत्यय कैसे होता है यह बताया गया है। इसके अनन्तर अच् -अप् -नङ् -कि ये प्रत्यय ससूत्र व्याख्यायित हैं। तदनु स्त्रीत्वविशिष्ट भा में कर्तृभिन्नकारक में क्तिन् -अ -युच् इत्यादि प्रत्ययों के प्रयोग कैसे होते हैं यह सविस्तर चर्चित है। भाव में भी क्तप्रत्य होता है ऐसा कहा गया है। ततः प्रकृत्य इस उदाहरणपुरस्सर क्तवाल्यप्प्रत्ययविषयक चर्चा की गई है। और अन्त में स्मारम् स्मारम् नमति शिवम् यहां णमुल्प्रत्यय कैसे होता है यह प्रदर्शित किया गया है।

पाठान्त प्रश्न

1. तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् इस सूत्र को सोदाहरण बताइए।
2. शकधृषज्ञाग्लाघटरभलभक्रमसहार्हास्त्यर्थेषु तुमुन् इस सूत्र को सोदाहरण बताइए।
3. तुमन्प्रत्ययविषय में लघुप्रबन्ध लिखिए।
4. भाव में घञ्प्रत्ययविषयक लघुप्रबन्ध लिखिए।
5. उपसर्गे घोः किः इस सूत्र की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।
6. अ प्रत्ययात् इस सूत्र को सोदाहरण बताइए।
7. स्त्रियां क्तिन् इस सूत्र की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।
8. ण्यासश्रन्थो युच् इस सूत्र की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।
9. अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा इस सूत्र की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।
10. समानकर्तृकयोः पूर्वकाले इस सूत्र की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।
11. समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् इस सूत्र की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।
12. आभीक्ष्ण्ये णमुल् च इस सूत्र की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।
13. कृष्णं द्रष्टुं याति। भोक्तुम् कालः। भोक्तुम् इच्छति। भोक्तुम् शक्नोति। भोक्तुम् पटुः। इन वाक्यों में तुमुन्नन्त का प्रयोग कैसे हुआ है।
14. पाकः, रागः, करः इनकी रूपसिद्धि कीजिए।
15. उपाधिः इसकी रूपसिद्धि कीजिए।

16. प्रश्नः इसकी रूपसिद्धि कीजिए।

17. चिकीर्षा इसकी रूपसिद्धि कीजिए।

18. कारणा इसकी रूपसिद्धि कीजिए।

19. हसितम्, हसनम् इनकी रूपसिद्धि कीजिए।

20. भुक्त्वा व्रजति यहां क्त्वाप्रत्यय कैसे है।

21. प्रकृत्य इसकी रूपसिद्धि कीजिए।

22. स्मारम् स्मारम् नमति शिवम् यहां स्मारम् स्मारम् यह प्रयोग कैसे बना है।

पाठगत प्रश्नोत्तर

उत्तर-1

1. क्रियार्था क्रिया के उपपद रहते भविष्यति अर्थ में धातु से तुमुन्ण्वुल् प्रत्यय होते हैं।

2. कालार्थ उपपद रहते तुमुन्प्रत्यय होता है।

3. इच्छार्थेष्वेककर्तृक उपपद रहते धातु से तुमुन होवे।

4. पर्याप्तिः पूर्णता। तद्वाचि सामर्थ्यवचन के उपपद रहते तुमुन् प्रत्यय होवे।

5. किसी क्रिया की सिद्धि में जब अपरा क्रिया की जाती है तब वह क्रिया पूर्वक्रिया की कियार्था क्रिया कहलाती है।

6. कृष्णं द्रष्टुं याति। कृष्णं दर्शको याति।

7. कालः समयो वेला वा भोक्तुम्।

8. इच्छति भोक्तुम्। वष्टि भोक्तुम्। वाञ्छति भोक्तुम्।

9. पूर्णता।

10. पर्याप्तः, प्रवीणः, कुशलः, पटुः इत्यादि पर्याप्तिवचन सामर्थ्यवचन उपपदशब्द है।

उत्तर-2

11. सिद्धावस्थापन्ना क्रिया भाव है।

12. घञ्।

13. नलोप।

14. एरच् इससे अच्प्रत्यय होता है।

15. घ्वर्णान्त व उवर्णान्त से अप् प्रत्यय।

16. यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ् इससे नङ्प्रत्यय होता है।

17. उपसर्ग उपपद रहते घुसंज्ञकधातु से किप्रत्यय होवे भाव में संज्ञाविषयककर्तृभिन्नकारक में।

ध्यान दें:

ध्यान दें:

18. उपाधिः, विधिः, सन्धिः इत्यादि।

उत्तर-3

19. क्तिन्।
20. कृतिः, स्तुतिः।
21. प्रत्ययान्त धातुओं से स्त्रिलिंङ्ग में अ प्रत्यय होता है।
22. गुरुमान हलन्त से स्त्रिलिंङ्ग में अकार प्रत्यय होता है।
23. ण्यन्त धातु से आस्थातु से और श्रन्थ्धातु से युच् प्रत्यय होवे स्त्रीत्वविशिष्ट भावार्थ में संज्ञाविषयककर्तृभिन्नकारकार्थ में।
24. क्लीबत्वविशिष्ट भाव में कालसामान्य में क्त होता है।
25. क्लीबत्वविशिष्ट भाव में ल्युट् होता है।
26. हलश्च।
27. अ -प्रत्यय।
28. युच्।
29. नपुंसके भावे क्तः इससे क्तप्रत्यय।
30. ल्युट् च इससे ल्युट्प्रत्यय।
31. रामः।

उत्तर-4

32. क्त्वा।
33. पूज्यार्थ।
34. समानकर्तृक धात्वर्थ में पूर्वकाल में विद्यमान धातु से क्त्वा प्रत्यय होता है।
35. समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्।
36. पौनःपुन्य गम्यमान होने पर समानकर्तृक धात्वर्थ के रहते जो धात्वर्थ पूर्वकाल में वर्तमान होता है तद्वाचक धातु से परे णमुल्प्रत्यय व क्त्वाप्रत्यय होता है।
37. पद को द्वित्व।
38. स्मारम् स्मारम् नमति शिवम्।

राष्ट्रिय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

माध्यमिक कक्षा हेतु पाठ्यक्रम

संस्कृत व्याकरण (246)

औचित्य

भावों का आदान-प्रदान ही भाषा कहलाती है। भाषा की उन्नति समाज की उन्नति का संकेत करती है। समाज अपने उन्नत विविध भावों को प्रकट करने के लिए भाषा का व्यवहार करता है। यदि भाषा में त्रुटि हो तो भाव के प्रकट होने में कठिनता होती है। तब भाषा विद्वान और भाषा व्यवहार कर्ता भाषा में परिवर्तन करते हैं। भाषा की उपयोगिता को बढ़ाते हैं। क्रमशः भाषा के परिवर्तन के नियम उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार भाषा के नियमों का संकलन ही व्याकरण कहलाता है। सभी देशों में अलग-अलग भाषाएं हैं। सभी राज्यों में भी अलग-अलग भाषाएं हैं। इसलिए अन्य के साथ सभी भावों को आदान-प्रदान करना दुष्कर होता है। एक भाषा में विद्यमान उत्तम वांग्मय आदि अन्य भाषाओं को बोलने वाले लोगों के लिए वंचित रहती है। यही सबसे बड़ा अंतर है। इसीलिए किसी महान और पवित्र भाषा का ग्रहण करना चाहिए जिसकी सभी भाषाएं संतति के रूप में विद्यमान हों। संस्कृत ही वह भाषा है। यही भाषा समस्या की एक मेव समाधान है। संस्कृत भाषा का व्याकरण सुदृढ़ हैं। नए शबदों के निर्माण का सामर्थ्य भी है। यदि हम संस्कृत जानते हैं तो 10000 वर्ष पुराने ग्रंथों को हम सब आज भी पढ़ने और समझने में सक्षम हो सकते हैं। यदि हम सभी संस्कृत में लेखन कार्य करें तो हमारे द्वारा निर्मित साहित्य हजारों वर्षों के बाद भी लोग पढ़ सकते हैं। इसलिए इस संसार में संस्कृत ही सर्वश्रेष्ठ भाषा है। संस्कृत शिक्षा से और संस्कृत शब्दों के उच्चारण मात्र से मानव जाति गौरवान्वित और शक्तिभृत होती है। भारत में जो भी संस्कृत जानता है उसके वक्तव्य के समय उसे रोककर कोई भी नहीं बोल सकता। धर्म रहस्य, काव्य रहस्य और दर्शन रहस्य इस भाषा से निबद्ध है। जो भाषा को जानता है उसके समक्ष ज्ञान का भंडार खुला रखा रहता है। इतना ही नहीं स्वामी विवेकानंद ने कहा है- **''मैं निम्न जातियों से कहता हूं आपकी अवस्था की उन्नति का साधन एकमात्र संस्कृत भाषा का ज्ञान ही है''।** समाज में जाति भेद का नाश भी सांस्कृत अध्ययन से ही होगा। न केवल उच्च जातियों के लिए अपितु सभी के लिए संस्कृत अत्यंत उपकारक है।

जगत में प्रायः सभी भाषाएं संस्कृत भाषा से ही उत्पन्न हुई हैं। सभी की मूल भाषा यही भाषा है। भारत के प्राचीन इतिहास का अध्ययन भी भारतीय और विदेशी विद्वान करना चाहते हैं। परंतु संस्कृत भाषा के ज्ञान के बिना वे पंगुवत हैं।

भाषा राज्य निर्माण काल में राज्य भेदों का कारण बनी। देश में विभाजन का कारण प्रादेशिक भाषाएं की थी। परंतु संस्कृत भाषा राष्ट्र को एक करने का कारण है। बौद्धों, जैनियों और हिन्दुओं के मूल ग्रंथ अनेक दार्शनिक ग्रंथ और काव्य इसी भाषा में लिखित हैं। इसलिए इस भाषा को केवल किसी एक धर्म की भाषा बोलना यह अज्ञानता को दर्शाता है।

''काणादं पाणिनीयं च सर्वशास्त्रोपकारकम्'' यह प्राचीन उठती है अर्थात् आन्वीक्षकी विद्या (न्याय शास्त्र), पाणिनीय व्याकरण अन्य सभी शास्त्रों का उप कारक है। अतः संस्कृत में जिस किसी भी शाखा को पढ़ने की इच्छा हो उसके लिए न्याय और व्याकरण का थोड़ा बहुत ज्ञान आवश्यक है। इसलिए संस्कृत जिज्ञासुओं के लिए व्याकरण की अत्यंत उपयोगिता को देखते हुए, यह व्याकरण पाठ्य विषय के रूप में निर्धारित किया गया है।

महर्षि पतंजलि कहते हैं की **''संस्कृत व्याकरण के ज्ञान के साथ यदि संस्कृत भाषा का प्रयोग किया जाता है तो प्रयोग करता पुण्य प्राप्त करता है''।** यह भी व्याकरण अध्ययन का लाभ है। अतः व्याकरण का अध्ययन करना चाहिए।

भाषा के द्वारा भावों के आदान-प्रदान के समय कुछ भी त्रुटि होती है तो विघ्न या समस्या उत्पन्न हो सकती है। शत्रु मित्र बन सकते हैं और मित्र शत्रु बन सकते हैं। इसलिए भाषा साधारण रूप से हमारे लिए गुरुत्व के समान हैं। इसलिए कहा गया है-

यद्यपि बहुनाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम्।

स्वजनः श्वजनो माभूत् सकलं शकलं सकृत् शकृत्॥

अर्थात्- पुत्र, यद्यपि तुम बहुत ना पढ़ो, तथापि व्याकरण पढ़ो इसलिए कि स्वजन (अपने लोग) का श्वजन (कुत्ते) ना हो, सकल (सब) का शकल (टुकड़े) ना हो और सकृत् (एक बार) का शकृत् (मल) ना हो। इसहलए भी व्याकरण का अध्ययन करें।

अधिकारी

यह पाठ्य विषय संपूर्ण रूप से संस्कृत एवं हिन्दी भाषा में लिखा हुआ है। परीक्षा भी संस्कृत एवं हिन्दी माध्यम से ही होगी। इसलिए इस पाठ का अधिकारी कौन होगा यह प्रश्न निश्चित रूप से उत्पन्न होता है।

यहां पर वह छात्र अधिकारी है जो-

- काव्य कोषों को पढ़ चुका हो और व्याकरण शास्त्र को जानना चाहता हो।
- सरल संस्कृत, संस्कृत साहित्य के सरल गद्यांश को और पद्यांश को पढ़ और समझ सके।
- सरल संस्कृत को समझ सके।
- अपने भावों को संस्कृत भाषा में लिखकर प्रकट कर सके।
- संस्कृत व्याकरण का जिज्ञासु है।

प्रयोजन (सामान्य)

माध्यमिक स्तर पर पाणिनीय व्याकरण का पाठ्य रूप से योजना के कुछ उद्देश्य यहां नीचे दिए जाते हैं-

- न्याय शास्त्र और व्याकरण शास्त्र सभी शास्त्रों के अध्ययन में अति उप कारक है। अतः व्याकरण ज्ञान छात्र को हो यह हमारा उद्देश्य है।
- जगत में प्रसिद्ध पाणिनीय व्याकरण का सामान्य ज्ञान छात्र को हो ।
- संस्कृत व्याकरण के अध्ययन में समर्थ छात्र अन्य भाषाओं के भी तुलनात्मक अध्ययन में प्रवर्तित हो सके।
- संस्कृत भाषा के जिज्ञासुओं की जिज्ञासा को शांत करने में अध्येता समर्थ हो ।
- छात्र संस्कृत और संस्कृति की रक्षा के लिए व्याकरण ज्ञान से समर्थ होने पर प्रयत्नशील और श्रद्धा शील हो ।
- राष्ट्र के स्तर पर प्राकृतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक, मानविक, मानसिक, आध्यात्मिक चेतना जागे।
- शुद्ध भाषा के प्रयोग से आत्मविश्वास की दृढ़ता का संपादन हो सके।
- उचित भाषा के प्रयोग से भावों के आदान-प्रदान से व्यक्तित्व का विकास हो ।
- छात्र भारत की अति प्राचीन भारतीय ज्ञान में संपदा, वैज्ञानिकता और सर्वजन उपकार की महिमा को गर्व के साथ संसार में प्रसारित करें।
- संस्कृत व्याकरण के सामान्य ज्ञान में वृद्धि होगी जिससे दार्शनिक ग्रंथों के सरल अंशों को पढ़कर छात्र उन अंशों का अर्थ ज्ञात कर पाने में सक्षम होंगे वे स्वयं ही मौखिक और लिखित अभिव्यक्ति करने में समर्थ होंगे।
- संस्कृत व्याकरण को पढ़कर छात्र महाविद्यालय स्तर पर और विश्वविद्यालय स्तर पर चल रहे पाठ्यक्रम में अध्ययन के लिए अवसर को प्राप्त करने में समर्थ होंगे।

- भाषा शास्त्र के चिंतन में शक्त बनेंगे।

प्रयोजन (विशिष्ट)

व्याकरण में प्रवेश के लिए सामर्थ्य-

- छात्र महर्षि पाणिनि द्वारा रचित सुविख्यात ग्रंथ अष्टाध्यायी के अध्ययन में समर्थ होंगे।
- व्याकरण 12 वर्षों तक पढ़ते हैं। यह अति विशाल और विस्तृत है। इस विषय को पढ़कर पाणिनीय व्याकरण में प्रवेश करें।
- व्याकरण का अध्ययन सोपान क्रम से होता है। जब तक यह पाठ्य विषय पढ़ेंगे तब तक अन्यत्र व्याकरण नहीं पढ़ सकते हैं अत: यह विषय अनिवार्य है।
- सूत्रों की रचना कैसे की गई है इसका स्पष्ट् ज्ञान हो ।
- पढ़े गए सामग्री पर आश्रित प्रश्नों का उत्तर देने में योग्य होंगे।

सूत्र व्याख्या में सामर्थ्य

- संज्ञा परिभाषा इत्यादि विविध सूत्रों को जाने।
- व्याकरण के बहुत से पारिभाषिक शब्दों को जानें।
- अधिकार और अनुवृत्ति पद योजना कैसे होती है इसको जानेंगे।
- सूत्रों के अर्थ करने में अन्य सूत्रों की उपयोगिता को समझें।
- सूत्र में विद्यमान पदों का परस्पर अन्वय करने में सक्षम हों।
- सूत्र की व्याख्या करने में समर्थ हों।

सूत्र प्रयोग में सामर्थ्य

- सूत्र लक्षण कहलाता है। सूत्र जिसका संस्कार करता है वह लक्ष्य कहलाते हैं। कौन-सा सूत्र किस लक्षण का संस्कार करता है इसे जानकर छात्र लक्ष्य संस्कार करने में सक्षम होंगे।
- लक्ष्य संस्कार के समय में सूत्रों के परस्पर विरोध के समाधान में समर्थ होंगे।
- सभी साधु रूप और साधु वाक्य सूत्र प्रयोग के अनुसार निष्पादित करने में सक्षम होंगे।

साधु शब्द प्रयोग का सामर्थ्य

- सूत्रों के व्यवहार से साधु शब्द के निष्पादन व्यवहार को नि:संकोच करने में योग्य होगा।
- स्वयं संस्कृत भाषा के प्रयोग काल में अपने भाषा दोषों को जानकर व्याकरण की सहायता से दोष को दूर करके शुद्ध भाषा प्रयोग में समर्थ होगा।
- अन्य प्रयुक्त अन्य भाषा का संशोधन करने में समर्थ होगा।

पाठ्य सामग्री

पाठ्यक्रम के साथ निम्नलिखित सामग्री समायोजित होगी-

- तीन मुद्रित पुस्तकें ।
- एक शिक्षक अंकित -मूल्यांकन प्रपत्र दिया जायेगा। इसके साथ छात्रों के द्वारा एक परियोजना कार्य भी (प्रोजेक्ट) करना है।
- दर्शन का शिक्षण प्रायोगिक रूप से भी होगा। परन्तु प्रायोगिक परीक्षा कोई भी नहीं है।
- पाठ निर्माण करने में संपर्क कक्षाओं में अध्यापन काल में छात्रों के जीवन कौशल का अच्छी प्रकार से विकास हो ऐसा ध्यान होना चाहिए। इससे उनमें अपने आप युक्ति समन्वित चिन्तन शक्ति का विकास होगा।
- मुक्त विद्यालय में प्रवेश के बाद इस पाठ्यक्रम को विद्यार्थी एक वर्ष से प्रारंभ कर अधिक से अधिक पांच वर्षों में पूर्ण कर सकते हैं।

अङ्क मूल्यांकन विधि और परीक्षा योजना

- पत्र के (100) सौ अंक हैं। परीक्षा का समय तीन घंटे होगा। इस पत्र का स्वरूप लिखित ही है (Theory)। प्रायोगिक रूप से (Practical) कुछ भी नहीं है। रचनात्मक (Formative) योगात्मक (Summative) दो प्रकार से मूल्यांकन होगा।
- रचनात्मक मूल्याकन - बीस अंकों (20) का शिक्षक अंकित कार्य का (TMA) एक पत्र है। इसका मूल्यांकन अध्ययन केन्द्र (Study Centre) में हो। इस कार्य के अंक अंकपत्रिका (Marks Sheet) में अलग से उल्लेख होगा।
- योगात्मक मूल्याकन- वर्ष में दो बार (मार्च मास में और अक्टूबर मास में) बाह्यपरीक्षा होगी।वहाँ परीक्षा में समुचित मूल्यांकन होगा।
- प्रश्न पत्र में ज्ञान (Knowledge) अवगम (Understanding) अभिव्यक्ति (Application skill) और अवलम्ब युक्त अनुपात से प्रश्न पूछे जायेंगे।
- परीक्षाओं में अतिलघुत्तरात्मक-लघुत्तरात्मक निबन्धात्मक-प्रश्नों का भी समावेश होगा।
- दर्शन प्रस्थान परिचय, नास्तिक दर्शन, आस्तिक दर्शन, अद्वैत वेदांत इत्यादि ये मुख्य विषय होंगे। अन्य स्थानों पर प्रसक्त अनुप्रसक्त भी कुछ विषय को जानना चाहिए।
- उत्तीर्णता का परिमाप (Condition)- तैतीस प्रतिशत (33%) अंक उत्तीर्णता के लिए (मानदंड) है।
- संस्थान की परीक्षा में उत्तर लेखन भाषा-संस्कृत (अनिवार्य) या हिन्दी

अध्ययन योजना

- निर्देश भाषा (Medium of instruction)-संस्कृत एवं हिन्दी
- स्वाध्याय काल अवधि (Self Study Hours) 240 घंटे
- कम से कम तीस (30) संपर्क कक्षा (Personal Contact Programme & PCP) अध्ययन केंद्र में होगी।
- भारांश - सैद्धांतिक (Theory) शत प्रतिशत। प्रायोगिक (Practical) - नहीं है।

अंक विभाजन

आगे की सारणी में देखना चाहिए।

पाठ्य विषय का उद्देश्य (पाठ्य विषय के बिंदु)

माध्यमिक कक्षा हेतु संस्कृत व्याकरण की पुस्तक में निम्न विषय सम्मिलित हैं। जिनका विवरण नीचे दिया गया है।

संपूर्ण पाठ्य विषय के तीन भाग किए गए हैं प्रत्येक भाग में कुछ पाठ, स्वाध्याय के लिए कितने घंटे, सैद्धांतिक परीक्षा में कितने अंश, प्रायोगिक परीक्षा में कितने अंश, और प्रत्येक अध्याय में अंक विभाजन विषय यहां दिए गए हैं।

अध्याय-1 संज्ञा परिभाषा

अध्याय का औचित्य

सुदृढ़ संस्कृत व्याकरण अत: सुदृढ़ संस्कृत भाषा। वहां पर पाणिनीय व्याकरण अन्य व्याकरणों में भी बढ़कर है। उस व्याकरण के प्रवेश का कुछ विशिष्ट क्रम है। अत: व्याकरण प्रवेश उसके लिए अपेक्षित संज्ञा और परिभाषा के सूत्र यहां क्रमश: दिखेंगे, उदाहरण दिखेंगे, यह विभाग जो कि व्याकरण का आधारभूत स्वरूप है यहां उद्धृत है।

अध्याय-2 संधि

अध्याय का औचित्य

दो वर्णों के मेल से वर्ण परिवर्तन होता है। इसीलिए यह विषय शब्द निर्माण प्रक्रिया में अत्यंत उपकारक है। यहां कुछ अति उपकारक सूत्रों की उदाहरण पूर्वक व्याख्या प्रस्तुत है। छात्र इसके अध्ययन से आगे सूत्र अध्ययन करने में अति सरलता का अनुभव करेगा।

अध्याय-3 सुबन्त प्रकरण

अध्याय का औचित्य

साधु शब्द निर्माण और व्यवहार व्याकरण का मुख्य लक्ष्य है। सुबन्त और तिङन्त भेद से पद दो प्रकार के होते हैं। सुबन्त भी अजन्त और हलन्त भेद से दो प्रकार के हैं। इस विभाग में अजन्त पद साधन और हलन्त पद साधन की प्रक्रिया सूत्र व्याख्या के अनुसार प्रदर्शित है। वहां अजन्त पुल्लिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग के कुछ रूप सूत्रानुसार सिद्ध किए गए हैं।

वहां हलन्त पुल्लिंग, नपुंसकलिंग के कुछ रूप सूत्रानुसार सिद्ध किए गए हैं। शब्द निर्माण की व्याकरणात्मक प्रक्रिया यहां प्रमुख विषय है। संस्कृत में शब्दों के सृष्टि कैसे होती है यह आकर्षक विषय यहां पर वर्णित है।

अध्याय-4 विभक्त्यर्थ

अध्याय का औचित्य

व्याकरण की प्रक्रिया से निर्मित शब्दों का वाक्य व्यवहार काल के समय किसी अर्थ को प्रकट करने के लिए उसके किस रूप का प्रयोग करना चाहिए यह प्रायोगिक विषय इस अध्याय में वर्णित है। शब्द के बाद विभक्तियों के प्रयोग से विभिन्न अर्थ विभिन्न प्रसंगों में होते हैं। पदों में कब क्या अर्थ होता है इस विषय के ज्ञान के हेतु यह प्रकरण एक ही है। इसलिए सिद्ध शब्द प्रयोग का कौशल सूत्र सहित इस विभाग में वर्णित है।

अध्याय-5 कृदन्त

अध्याय का औचित्य

सुबन्त पद की प्रकृति में दूसरा कृदन्त शब्द होता है और वह धातु से कृत् प्रत्यय जोड़ने पर बनता है। कृत प्रत्यय विविध प्रकार के हैं। इसलिए विभाग अनुसार उसके ज्ञान के लिए यह विभाग सहायता करता है। पूर्व उत्तर कृदन्त भेद से दो मुख्य विभाग यहां हैं।

पाठ्य विषय का उद्देश्य (पाठ्य विषय बिन्दु)

माध्यमिक कक्षा हेतु संस्कृत व्याकरण की पुस्तक में निम्न विषय सम्मिलित है-

पाठ्य विषय के उद्देश्य पाठ्य विषय बिन्दुएं

माध्यमिक कक्षा के संस्कृत व्याकरण की पुस्तक में निम्नलिखित विषय है।

क्र. सं.		मुख्य बिन्दु	स्वाध्याय के काल	भारांश अंक
1	**अध्याय-1**	**संज्ञा परिभाषा**	**46**	**25**
	पाठ-1	व्याकरण- व्याकरण पदाचार्य ग्रंथ परम्परा परिचय कार्य सूत्र वार्तिक लक्षणम्		
	पाठ-2	संज्ञा- माहेश्वरसूत्र, इत्, लोप, ह्रस्वादि, उदात्तादि		
	पाठ-3	संज्ञा- सवर्ण, ग्रहक, येन विधि, तपर इत्यादि संज्ञा		
	पाठ-4	संज्ञा- गुण, वृद्धि, धातु, उपधा इत्यादि संज्ञा		
	पाठ-5	परिभाषा- षष्ठी स्थानेयोगा, इको गुण वृद्धि, तस्मिन्निति, तस्मादिति इत्यादि परिभाषा		
2	**अध्याय-2**	**सन्धि प्रकरण**	**36**	**14**
	पाठ-6	संहिता- अच् सन्धि- यण्, जश्त्व, अय		
	पाठ-7	संहिता- अच् सन्धि- गुण वृद्धि, सवर्णदीर्घ, प्रकृतिभाव		
	पाठ-8	संहिता- हल् सन्धि- रुत्व, विसर्ग, श्चुत्व, ष्टुत्व		
	पाठ-9	संहिता- विसर्ग सन्धि- अनुस्वार, विसर्ग, रो रि		
3	**अध्याय-3**	**सुबन्त प्रकरण**	**81**	**27**
	पाठ-10	सुबन्त अजन्त पुल्लिंग- प्रातिपदिकम्, राम शब्दस्य समान इति रूपं		
		यावत् रूपाणि		
	पाठ-11	सुबन्त अजन्त पुल्लिंग- राम शब्द के रामेण से रामेषु तक		
		रूप और सर्वनाम		
	पाठ-12	सुबन्त अजन्त पुल्लिंग- हरि विश्व पागोप्रधी शब्दों के रूप		
	पाठ-13	सुबन्त अजन्त पुल्लिंग- रमा नदी शब्दों के रूप		
	पाठ-14	सुबन्त अजन्त पुल्लिंग- ज्ञान श्री पा वारि दधि शब्दों के रूप		
	पाठ-15	सुबन्त हलन्त पुल्लिंग- लिह्-दृह् इत्यादि शब्दों के रूप		
	पाठ-16	सुबन्त हलन्त पुल्लिंग- इदम् राजन् अष्टन् इत्यादि शब्दों के रूप		
	पाठ-17	सुबन्त हलन्त पुल्लिंग- तत्, युष्मद्, अस्मद् शब्दों के रूप		
	पाठ-18	सुबन्त हलन्त पुल्लिंग- महत् विद्वत् भवत् इत्यादि शब्दों के रूप		

4	**अध्याय-4**	**विभक्त्यर्थ प्रकरण**	**49**	**22**
	पाठ-19	कारक विभक्ति प्रकरण- कारक सामान्य परिचय प्रथमा विभक्ति		
	पाठ-20	कारक विभक्ति प्रकरण- द्वितीया - कर्तुरीप्सिततमं कर्म		
	पाठ-21	कारक विभक्ति प्रकरण- द्वितीया - अकथितं च		
	पाठ-22	कारक विभक्ति प्रकरण- तृतीया, चतुर्थी		
	पाठ-23	कारक विभक्ति प्रकरण- पंचमी, षष्ठी, सप्तमी		
	पाठ-24	उपपद विभक्ति प्रकरण- द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी		
	पाठः-25	उपपद विभक्ति प्रकरण- षष्ठी, सप्तमी		
5	**अध्याय-5**	**कृदन्त प्रकरण**	**28**	**12**
	पाठ-26	कृदन्त प्रकरण- कृत्य		
	पाठ-27	कृदन्त प्रकरण- पूर्व कृदन्त-1		
	पाठ-28	कृदन्त प्रकरण- पूर्व कृदन्त-2		
	पाठ-29	कृदन्त प्रकरण- उत्तर कृदन्त		

प्रश्न पत्र का प्रारूप (Question Paper Format)

विषय-संस्कृत व्याकरण (246) (Sanskrit Vyakaran) स्तर:-माध्यमिक कक्षा

परीक्षा काल अवधि (Time): तीन घंटे (3 Hrs.) पूर्णांक: (Full Marks)-100

लक्ष्य के अनुसार अंक विभाजन

विषय:	अंक:	प्रतिशत योग
ज्ञान (Knowledge)	25	25%
अवबोध (Understanding)	45	45%
अनुप्रयोग कौशल (Application Skill)	30	30%
महायोग **100**		

प्रश्न प्रकार से अंकों का विभाजन

प्रश्न प्रकार	प्रश्न संख्या	अंक	योग
दीर्घ उत्तर प्रश्न (LA)	5	6	30
लघुत्तर प्रश्न (SA)	10	4	40
सुलघुत्तर प्रश्न (VSA)	10	2	20
बहुविकल्प के प्रश्न एक अंक के प्रश्न स्तम्भ मिलान और रिक्त स्थान पूर्ति	10	1	10
महायोग	**35**		**100**

पाठ्य विषय विभाग के अनुसार भारांश

विषय घटक	अंक	स्वाध्याय के घंटे
1. संज्ञा परिभाषा	25	46
2. संधि प्रकरण	14	36
3. सुबन्त प्रकरण	27	81
4. विभक्त्यर्थ प्रकरण	22	49
5. कृदन्त प्रकरण	22	28
महायोग	**100**	**240**

प्रश्न पत्र का कठिनता स्तर

प्रश्न स्तर	अंक
कठिन (Difficult)	25
मध्यम (Medium)	50
सरल (Easy)	25

प्रश्न पत्र प्रतिमा

(Sample Question Paper)

इस प्रश्न पत्र में ..... प्रश्न है।..... और मुद्रित है।

Roll No.												
अनुक्रमांक	4	5	0	1	5	9	1	8	3	0	0	1

Code No.	
कू संख्या	55/SS/A/S
SET	
स्तबक	A

संस्कृत व्याकरण

Sanskrit Vyakaran

(246)

Day and Date of Examination .....
परीक्षा दिन और दिनांक:

Signature of two Invigilators 1. .....

निरीक्षक के हस्ताक्षर 2. .....

सामान्य निर्देश

1. अनुक्रमांक प्रश्न पत्र के प्रथम पृष्ठ पर अवश्य लिखें।
2. निरीक्षण करें की प्रश्न पत्र की क्रम संख्या प्रश्नों की संख्या, प्रथम पृष्ठ के प्रारम्भ में दी हुई संख्या के समान है या नहीं। प्रश्न क्रम सही है अथवा नहीं।
3. वस्तु निष्ठ प्रश्नों के (क), (ख), (ग), (घ) इन विकल्पों में से युक्त उत्तर को चुनकर उत्तर पत्र पर लिखें।
4. सभी प्रश्नों के उत्तर निर्धारित समय में ही लिखें।
5. उत्तर पत्र में आत्म परिचयात्मक लेखन अथवा निर्दिष्ट स्थान को छोड़कर अन्य कहीं पर भी अनुक्रमांक लिखना मना है।
6. अपने उत्तर पत्र में प्रश्न पत्र की कूट संख्या अवश्य लिखें।
7. सभी प्रश्नों के उत्तर संस्कृत या हिन्दी भाषा में ही लिखें।

संस्कृत साहित्य
(Sanskrit Sahitya)
(248)

परीक्षा समय अवधि (Time) तीन घंटे (3Hrs) पूर्णांक (Full Marks)-100

निर्देश

(A) इस प्रश्न पत्र में (A)भाग 10, (B) भाग 10, (C) भाग 10, (D) भाग 5 इस प्रकार 35 प्रश्न हैं।

(B) प्रश्न पत्र के दाहिनी तरफ संख्याओं में (अंक x प्रश्न = पूर्णांक) इस प्रकार अंकों का निर्देश किया है।

(C) सभी प्रश्न अनिवार्य हैं।

दसों के युक्त विकल्प चुनो।

1. पाणिनी के गुरु कौन थे?

   (i) पतंजलि (ii) महेश्वर (iii) इन्द्र (iv) उपवर्ष

2. जश् प्रत्याहार में यह नहीं है?

   (i) ग (ii) झ (iii) ब (iv) ड

3. संबंध के अर्थ में षष्ठी है किंतु संबंध का अनुयोगी नहीं है तो वह-

   (i) स्थान षष्ठी (ii) अवयव षष्ठी (iii) अभेद षष्ठी (iv) कारक षष्ठी

4. ''जनावस्ति'' इस संधि में किस के स्थान पर आदेश हुआ है?

   (i) पूर्व के (ii) पर के

   (iii) पूर्व और पर के (iv) पर रूप

5. ''वणिज् छात्रः'' इस स्थिति में पहले कौन-सा सूत्र प्रवर्तित होगा?

   (i) चोः कुः (ii) खरि च

   (iii) झलां जशोऽन्ते (iv) वा पदांतस्य

6. ''रामेषु'' इस रूप में किस सूत्र से मूर्धन्य आदेश होता है?

   (i) इण्कोः (ii) आदेशप्रत्यययोः

   (iii) ष्टुना ष्टुः (iv) षः प्रत्ययस्य

7. ''खगः नगे उपविशति'' इस वाक्य में नग किसका कारक है?

   (i) कर्तृ (ii) कर्म (iii) करण (iv) अधिकरण

8. ''अजां ग्रामं नयति'' इस वाक्य में प्रधान कर्म क्या है?

   (i) अजा (ii) ग्राम

   (iii) अजा और ग्राम (iv) एक भी नहीं

9. यह उपपद विभक्ति विधायक सूत्र है।

(i) कर्मणि द्वितीया (ii) आधारोऽधिकरणम्

(iii) षष्ठी शेषे (iv) चतुर्थी सम्प्रदाने

10. यह कारक नहीं है?

(i) कर्तृ (ii) कर्म (iii) सम्बन्ध (iv) अधिकरण

(B) दसों का यथा निर्देश उत्तर लिखें-

- ''ङिच्च'' यह परिभाषा कब परिवर्तित होती है यह किसका अपवाद है?
- अंग संज्ञा विधायक सूत्र कौन-सा है, ''अंगस्य'' यह अधिकार कहां तक जाता है?
- ''ष्टुना टुः'' इस सूत्र का अर्थ लिखें, एवं एक अपवाद सूत्र भी लिखें।
- ''अष्टाभ्य औश्'' इस सूत्र का अर्थ लिखें एवं उसका उदाहरण दीजिए।
- ''अदसोऽसेर्दादु दो मः'' इस सूत्र का अर्थ लिखें एवं उसका उदाहरण दीजिए।
- ''शष्यनोर्नित्यम्'' इस सूत्र का अर्थ लिखें एवं उसका उदाहरण दीजिए।
- ''पात्रं हस्तात् पतति'' इस वाक्य में हस्तात् यह कौन-सा कारक है एवं किस सूत्र से होता है?
- ''मासं गुडधानाः भवन्ति'' इस वाक्य में द्वितीया किस सूत्र से होती है एवं सूत्र का अर्थ क्या है?
- ''नन्दनः'' इस उदाहरण में क्या कृत प्रत्यय है एवं किस सूत्र से होता है?
- ''वासरूपोऽस्त्रियाम्'' यह कैसा सूत्र है, यह सूत्र क्यों नहीं प्रवर्तित होता है।

(C) दस का कुछ विस्तार से उत्तर के द्वारा समाधान करो-

- ''अलोऽन्त्यस्य'' या ''अनेकाल्शित् सर्वस्य'' सूत्र की व्याख्या करें।
- ''परः सन्निकर्षः संहिता'' या ''सुप्तिङन्तं पदम्'' सूत्र की व्याख्या करें।
- ''तपरस्तत्कालस्य'' सूत्र की व्याख्या करें।

अथवा

मिलान करें -

(क) नदी (i) रामान् इत्यत्र आन्

(ख) घि (ii) वधू

(ग) टि (iii) पठ् अति इत्यत्र पठ् अ समुदायः

(घ) अङ्गम् (iv) कवि

- ''एङि पररूपम्'' या ''वृद्धिरेचि'' सूत्र की व्याख्या करें।
- ''औतोऽम्शसोः'' सूत्र की व्याख्या करें।
- अस्मत् अथवा त्वम् दोनों में से कोई एक रूप सिद्ध करें।
- ''गोपः गां पयः दोग्धि'' यह अथवा ''मेघात् जलं पतति'' दोनों में से कोई एक प्रयोग सिद्ध करें।
- ''कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्'' सूत्र की व्याख्या करें।
- ''तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्'' सूत्र की व्याख्या करें।
- ''लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे'' यह अथवा ''ण्वुल्तृचौ'' सूत्र की व्याख्या करें।

(D) पांचों प्रश्नों का बहुविस्तृत से उत्तर के द्वारा समाधान करें

- बह्वयत्न का परिचय देकर किसका कौन बह्वत्न है यह विस्तार से लिखें।
- ''इको यणचि'' अथवा ''आदिरन्त्येन सहेता'' सूत्र की व्याख्या करें।
- ''अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्'' सूत्र की व्याख्या करें अथवा कृत प्रत्ययों का विस्तृत परिचय लिखें।
- रामः और मत्याम् में से कोई एक सूत्र सहित रूप सिद्ध करें।
- ''कर्तुरीप्सिततमं कर्म'' यह अथवा ''ध्रुवमपायेऽपादानम्'' सूत्र की व्याख्या करें।

प्रश्न पत्र प्रतिमा की उत्तरमाला

(A) दसों प्रश्नों का युक्त विकल्प-

1 (iv)	2 (ii)	3 (i)	4 (i)	5 (i)
6 (ii)	7 (iv)	8 (i)	9 (iii)	10 (iii)

(B) दसों प्रश्नों का यथा निर्देश उत्तर-

1) अल्समुदायबोधकात् पदात् स्थानषष्ठी अस्ति चेत, आदेश: च अनेकाल् किञ्चडित् स्यात् चेत् ङिचच इति परिभाषा प्रवर्तते। इयम् अनेकाल्शित सर्वस्य इति परिभाषाया: अपवाद:।

2) यस्मात् प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम्। ईच गण: (7.4.97) इति सप्तमाध्यायस्य अन्तिमसूत्रं यावत् पञ्चसु पादेषु व्याप्नोति।

3) ष्टुना टु: इति सूत्रस्यार्थस्तावत् सकारतवर्गयो: षकारटवर्गाभ्यां योगे षकारटवर्गौ स्त:। अस्य अपवादो हि तो : षि इति सूत्रम्।

4) अष्टाभ्य औश् इति सूत्रस्यार्थ:- कृताकारात् अष्टन: जश्शसो : औश् इति सूत्रार्थ:। उदाहरणं तावद् अष्टौ इति।

5) अदसोऽसेर्दादु दो म: इति सूत्रस्यार्थ:- अदस: असान्तस्य दात्परस्य उदूतौ स्त: दस्य म: च इति। तस्य उदाहरणं हि-अमू इति।।

6) शष्श्वनोर्नित्यम् इति सूत्रस्यार्थो हि शाश्यनो: आत्परो य: शतु: अवयव: तदन्तस्य नित्यं नुम् स्यात् शीनद्यो: इति। तस्य उदाहरणं च भवति पचन्ती इति।

7) पात्रं हस्तात् पतति इति वाक्ये हस्तात् इति अपादानकारकम् ध्रुवमपायेऽपादानम् सूत्रेण।

8) मासं गुडधाना: भवन्ति इति वाक्ये द्वितीया कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे सूत्रेण तत्सूत्रार्थश्च भवति कालस्य अध्वन: वा द्रव्येण गुणेन क्रियया च सह अत्यन्तसंयोगे सति कालवाचकाल अध्यवाचकात् च शब्दात् द्वितीया विभक्ति: भवति।

9) नन्दन: इत्युदाहरणे ल्यु: कृत् प्रत्यय:। नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यच: इति सूत्रेण विधीयते।

10) वासरूपोऽस्वियाम इति परिभाषासूत्रम् इदं सूत्रं स्त्र्यधिकारे न प्रवर्तत।

(C) दसों प्रश्नों के कुछ विस्तार के साथ उत्तर के द्वारा समाधान

1. बिन्दु- 5.4 / 5.6 देखें
2. बिन्दु- 4.6 / 4.12 देखें
3. बिन्दु- 3.3 देखें

अथवा

तृतीय पाठ देखें (उत्तर दिया गया है)

(क) (ii) (ख) (iv) (ग) (i) (घ) (iii)

4. बिन्दु- 7.7 / 7.4 देखें

5. बिन्दु- 12.15 देखें

6. बिन्दु- 17.16 / 17.4 देखें

7. बिन्दु- 21.1 / 23.1 देखें

8. बिन्दु- 22.4 देखें

9. बिन्दु- 29.1 देखें

10. बिन्दु- 28.4 / 27.1 देखें

(D) पांचों प्रश्नों का बहुत ही विस्तार के साथ समाधान-

1. बिन्दु- 3.1 देखें

2. बिन्दु- 6.2 / 2.1 देखें

3. बिन्दु- 10.1 देखें

4. बिन्दु- 10.8 / 13.12 देखें

5. बिन्दु- 20.1 / 23.1 देखें